प्रेमचन्दोत्तर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शैल्पिक अध्ययन

(जैनेन्द्र कुमार इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय के विशेष संदर्भ में)

PREMCHANDOTTAR MANOVAIGYANIK UPANYASOM KA SAILPIK ADHYAYAN

(SPECIAL REF. TO JAINENDRAKUMAR, ELACHANDRA JOSHI AND AJNEY)

THESIS
SUBMITTED TO

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

BY

अजिता सी.

AJITHA C.

Dr. K.R. MURALEEDHARAN NAIR
Professor & Head of the Department

Prof. (Dr.) N. MOHANAN
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

2001

CERTIFICATE

This is to certify that this ***Thesis*** *is a bonafide record of work carried out by* ***Smt. Ajitha. C.,*** *under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.*

DR. N. MOHANAN
(Supervising Teacher)
Professor
Dept. of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi - 682 022

Kochi - 682 022
23-11-2001.

DECLARATION

I here by declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of ***Dr. N. Mohanan****, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin – 682 022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any University.*

Smt. Ajitha C.

Department of Hindi,
Cochin University of Science and Technology
Cochin – 682 022

पुरोवाक्

रचना आत्मनिष्ठ है या वस्तुनिष्ठ ? यह एक बहुचर्चित विषय है । दरअसल रचना एक आत्मनिष्ठ प्रतिक्रिया है । रचनाकार अपने जीवन से अपने समय से प्रतिक्रिया करता है । यह प्रतिक्रिया बिलकुल आत्मनिष्ठ है । चाहे वह सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया साहित्य हो या बिलकुल वैयक्तिक लेकिन उस प्रतिक्रिया की तह में आत्मनिष्ठता ही वर्तमान है । आधुनिक हिन्दी साहित्य इस के लिए सही दस्तावेज है । द्विवेदी युगीन कविता का विषय वस्तुवादी है । पर दृष्टिकोण में वैयक्तिकता है । याने कि कवि उन स्थूल समस्याओं के प्रति अपनी वैयक्तिक प्रतिक्रिया प्रकट करता है जिनसे स्वयं वह तथा उसका समय जूझ रहा है । उस के उपरांत का छायावाद बिलकुल आत्मनिष्ठ काव्य है तो प्रगतिवाद वस्तुवादी दर्शन पर अवस्थित साहित्य है । यद्यपि उस का अपना अलग दार्शनिक धरातल तो है तथापि प्रतिक्रिया रचनाकार की वैयक्तिकता पर निर्भर है । प्रयोगवाद फिर से घोर आत्मनिष्ठता का ही परिचय देता है ।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद युगीन रचना वस्तुवादी तो है लेकिन उस के प्रति प्रेमचंद की प्रतिक्रिया ही अभिव्यक्त हुई है । प्रेमचंद के उपरांत की औपन्यासिक धारा है मनोवैज्ञानिक उपन्यास ।

इस के पीछे एक दार्शनिक ठोस धरातल तो है पर दृष्टिकोण आत्मनिष्ठ है । व्यक्ति को उस की समग्रता में विश्लेषित करनेवाली पद्धति है मनोविज्ञान । उस से प्रभावित रचनात्मकता है मनोवैज्ञानिक साहित्य । हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यह धारा प्रबल रही है । व्यक्ति के अन्तरतम की समस्याएं ही इस का विषय है इसलिए नितांत आत्मनिष्ठ भी । इस आत्मनिष्ठ कथ्य के प्रस्तुतीकरण के लिए प्रयुक्त साधन ज़रूर भिन्न है । क्योंकि पूर्ववर्ती वस्तुवादी साहित्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त साधनों से इसकी अभिव्यक्ति संभव भी नहीं थी । इसलिए इस आत्मनिष्ठ याने व्यक्ति केन्द्रित कथ्य को संप्रेषित करने केलिए प्रयुक्त साधन भी अपने आप में निराले अवश्य होते हैं । इस अभिव्यक्ति प्रक्रिया के साधनों के निरालेपन को पकड़ पाना तथा उस की विशेषताओं को प्रकाशित करना ही इस शोध कार्य का लक्ष्य रहा है । अत: इस अध्ययन का विषय रखा है "प्रेमचंदोत्तर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शैल्पिक अध्ययन" ।

इस के पाँच अध्याय हैं । पहला अध्याय है "मनोवैज्ञानिक उपन्यास और औपन्यासिक शिल्पविधि" । इस अध्याय में हिन्दी उपन्यास की प्रारंभिक दशा से लेकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास तक के शिल्पगत परिवर्तनों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । "कथा शिल्प - स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर" इस का दूसरा अध्याय है । इस में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय के उपन्यासों के कथा-शिल्प का विस्तृत विस्तृत विश्लेषण है । प्रस्तुत शोध प्रबंध का तीसरा अध्याय है "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र-चित्रण" । इस में जैनेन्द्र, जोशी तथा अज्ञेय के औपन्यासिक पात्रों तथा उनके चरित्र-चित्रण की विशेषताओं का स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है । "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा" शीर्षक चौथे अध्याय में जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय की भाषापरक विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ।

पाँचवाँ अध्याय है "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शैली" । इस अध्याय में जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न अभिव्यक्ति प्रणालियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है । कथा-वस्तु को अधिक वास्तविक बनाने के लिए इन्होंने विभिन्न शैलियाँ अपनाई हैं । उन शैलियों पर प्रकाश डालने का कार्य इस अध्याय में हुआ है । अंत में उपसंहार है । इस में अब तक के अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोचिन के हिन्दी विभाग के प्रो॰डॉ॰एन॰मोहननजी के निदेशन में संपन्न हुआ । उन के बहुमूल्य सलाहों एवं सुझावों से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है । इस मंजिल तक पहँचने के लिए वे सदैव मुझे प्रेरणा देते रहे हैं । उन के प्रति मैं सदैव आभारी हूँ ।

विभाग का अध्यक्ष डॉ॰के॰आर॰मुरलीधरन नायर के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ कि वे निरंतर मुझे प्रेरणा देते रहे हैं ।

हिन्दी विभाग के प्रो॰डॉ॰ए॰अरविन्दाक्षनजी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । उन्होंने समय समय पर मुझे अपने बहुमूल्य सुझावें दे कर इस अध्ययन को सार्थक बनाने में काफ़ी मदद की है ।

मेरे अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ । उन की प्रेरणाओं ने ही आखिर मुझे इस के काबिल बनाया था ।

हिन्दी विभाग के कार्यालय तथा पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ कि वे सब मेरे इस प्रयत्न में प्रेरणा देते रहे हैं ।

आखिर मैं अपने प्रिय मित्रों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ कि वे इस शोध कार्य के ऊबड-खाबड रास्ते में मुझे निरंतर हिम्मत देते रहे हैं ।

यह शोध प्रबंध बडी विनम्रता के साथ विद्वानों के सामने समर्पित कर रही हूँ । इस की कमियों एवं गलतियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ।

हिन्दी विभाग,
विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय कोचिन,
कोचिन, पिन 682022
तारीख : ,नवंबर 2001

सविनय,

अजिता· सी·

विषय प्रवेश

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय ... ... 1 - 38

मनोवैज्ञानिक उपन्यास और औपन्यासिक शिल्पविधि

शिल्पविधि: स्वरूप - शिल्पविधि की अनिवार्यता साहित्य में शिल्प - उपन्यास और शिल्प - हिन्दी उपन्यास की प्रारंभिक दशा - पूर्व प्रेमचंदयुगीन उपन्यास और शिल्प - प्रेमचंदयुगीन उपन्यास का शिल्प - मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रवेश - मनोवैज्ञानिक उपन्यास की सामान्य विशेषताएं - विषय का सीमा निर्धारण - गहराई - वैयक्तिकता - सीमित और अंतर्मुखी पात्र - अन्तर्द्वंदों का उपन्यास - नये मूल्यों की स्थापना - पलायनवाद ।

दूसरा अध्याय ... ... 39 - 116

कथा-शिल्प - स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर

मनोवैज्ञानिक उपन्यास और शिल्प - कथा का अन्यपुरुष प्रतिपादन - परख - सुनीता - प्रेत और छाया - सुबह के भूले - त्रिवर्त - दशार्क - मुक्तिपथ - निर्वासित - ऋतुचक्र -

पृष्ठ-संख्या

भूत का भविष्य - गौण पात्रों द्वारा प्रस्तुत
कथा-शिल्प - कल्याणी - जयवर्धन - आत्म
कथात्मक कथा-शिल्प - त्यागपत्र - सुखदा
व्यतीत - मुक्तिबोध - अनंतर - अनामस्वामी
लज्जा - सन्यासी - जहाज का पंछी -
जिप्सी - कवि की प्रेयसी - शेखर : एक
जीवनी - दृष्टिकेन्द्र शिल्प विधि - पर्दे
की रानी - तपोभूमि - नदी के द्वीप -
अपने अपने अजनबी ।

तीसरा अध्याय ... ... 117 - 179

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र-चित्रण

उपन्यास में पात्र एवं चरित्र-चित्रण -
हिन्दी उपन्यास में पात्र - मनोवैज्ञानिक
उपन्यासों के पात्र - उपन्यासों में चरित्र
चित्रण - जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के
औपन्यासिक पात्र - बहिर्मुखी पात्र - अंतर्मुखी
पात्र - अहंग्रस्त पात्र - हीनताग्रस्त पात्र -
कुंठाग्रस्त पात्र - वासना परिचालित पात्र -
जटिल पात्र - आत्मपीड़क साधिका - पत्नीत्व
और प्रेयसीत्व - मनोरोगग्रस्त पात्र - चरित्र-
चित्रण - बहिरंग चरित्र चित्रण - पात्रों का
नामकरण - प्रथम परिचय - अनुभाव चित्रण -

पृष्ठ-संख्या

आकृति या वेश-भूषा चित्रण - अंतरंग चित्रण -
अन्तर्द्वन्द्व - स्वप्न विश्लेषण - हैल्यूसिनेशन -
मुक्त आसंग प्रणाली - शब्द सहस्मृति
परीक्षण - सम्मोह विश्लेषण - बाधकता
विश्लेषण - केस हिस्टरी मैथेड ।

चौथा अध्याय ... ... 180 - 209

मनोवैज्ञानिक उपन्यास की भाषा

उपन्यास और भाषा - मनोवैज्ञानिक उपन्यास
की भाषा - काव्यात्मक भाषा - प्रतीकात्मक
भाषा - सादृश्य विधान - छोटे-अधूरे वाक्य -
मुहावरे और लोकोक्ति - भाषा प्रयोग और
जैनेन्द्र - इलाचन्द्रजोशी की भाषा - भाषा का
बादशाह अज्ञेय ।

पांचवां अध्याय ... ... 210 - 240

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शैली

शैली - जैनेन्द्र, जोशी तथा अज्ञेय के उपन्यासों
की शैली - आत्मकथात्मक शैली - फ्लेशबाक या
पूर्वदीप्ति शैली - डायरी शैली - पत्रात्मक शैली -
चेतनाप्रवाह शैली - विश्लेषणात्मक शैली ।

उपसंहार ... ... 241 - 244

संदर्भ ग्रंथ सूची ... ... 245 - 255

❁❁❁❁❁❁❁❁❁❁

पहला अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यास और औपन्यासिक शिल्पविधि

पहला अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यास और औपन्यासिक शिल्पविधि

शिल्पविधि : स्वरूप

"शिल्प" शब्द की व्युत्पत्ति सन्दिग्धता अब भी मौजूद है । फिर भी "उणादिकोश" के अनुसार "शिल्प" शब्द "शील" समाधौ धातु से "प" प्रत्यय और "शील" को ह्रस्व करने से बनता है । श्री· वी·एस· आण्टे के अनुसार "शिल्प" शब्द की व्युत्पत्ति "शिल + पक" है ।

वात्स्यायन ने "शिल्प" के अन्तर्गत चौंसठ कलाओं का उल्लेख किया है । "मनुस्मृति" में इस शब्द का प्रयोग कला-कौशल के अर्थ में हुआ है । भरतमुनि ने "नाट्यशास्त्र" में कलाओं तथा शिल्प को काव्य का अंगांगी मात्र कहा है । अधिकांश विद्वानों ने "शिल्प" शब्द को रचना, क्रिया-कौशल या कला-कौशल के अर्थ में ही स्वीकार किया है । बृहद् हिन्दी कोश में शिल्प की व्याख्या इस प्रकार की गई है.

"शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है ।"[1]

1· बृहद् हिन्दी कोश - ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, पृ·1231

"शिल्पविधि" शब्द के लिए उक्त अंग्रेज़ी शब्द के चुनाव में भी विद्वानों में मतभेद है । डॉ॰ सत्यपालचुघ के अनुसार "शिल्प-विधि अंग्रेज़ी के टेकनीक का हीन्दी रूप है, इस का तात्पर्य रचना पद्धति से है ।" "टेकनीक" से शिल्प नियम या शिल्प-विज्ञान का बोध ही होता है ।

शिल्प-विधान के लिए अंग्रेज़ी का "स्ट्रक्चर" और "फार्म" शब्द अधिक उपयुक्त है । क्योंकि इन शब्दों में रचना की संपूर्ण आंतरिक सर्जना को समेटने की क्षमता है । प्रसिद्ध अंग्रेज़ी उपन्यासकार एडविनम्यूर शिल्प को "स्ट्रक्चर"[1] कहते हैं तो ई॰एम॰फोस्टर "पैटेर्न"[2] कहते हैं । संक्षेप में शिल्प से तात्पर्य रचना में निहित संपूर्ण रचना वैभव से है । किस प्रकार एक कथा उपन्यास या अन्य साहित्यिक विधा का रूप ले लेती है उस के लिए जिन जिन तत्वों का उपयोग जाने अनजाने किए जाते हैं, वे सब शिल्प के अन्तर्गत आते हैं ।

शिल्प-विधि की अनिवार्यता

कथाकार के लिए शिल्प अपने अनुभवों के साथक संप्रेषण का सशक्त माध्यम है । शिल्प केवल साधन है । कथाकार उसे अपने विषय एवं अभिप्रेत को प्रस्तुत करने का माध्यम बनाता है । उचित शिल्प-विधि के माध्यम से ही साहित्यकार आत्माभिव्यक्ति कर सकता है, "शिल्प अनावश्यक नहीं है । कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज़ नहीं समझा जा सकता । लेकिन उससे किनारे बनते हैं । नदी का पानी नहीं बनता ।"[3] जैनेन्द्र यहाँ

---

1. द स्ट्रक्चर आफ द नॉवल - एडविन म्यूर, पृ॰10
2. आस्पक्ट्स आफ द नॉवल - ई॰एम॰फोस्टर, पृ॰12
3. साहित्य का श्रेय और प्रेय - जैनेन्द्र कुमार, पृ॰355

शिल्प को आवश्यक मानते हैं पर अनिवार्य नहीं । पर सच तो यह है कि विषय चाहे जितना भी श्रेष्ठ एवं सुन्दर क्यों न हो उचित शिल्प चयन के बिना प्रभावी बन नहीं पाता । इसलिए उचित शिल्प चयन रचना की गरिमा को बढाता अवश्य है ।

कुछ अंग्रेज़ी आलोचक तकनीक को साहित्य का सब कुछ मानते हैं । प्रसिद्ध आलोचक मार्क शोर के मत में तकनीक पर चर्चा का मतलब लगभग सब कुछ की चर्चा है ।"[1] हेनरी जैम्स फार्म के बिना विषयवस्तु का अस्तित्व ही नहीं मानता है ।

लेकिन कुछ ऐसे आलोचक भी है जो फार्म को बाह्याकार मानते हुए भी विषय से अन्तरावलंबित मानते हैं । लबक तथा बीच ने तकनीक को साधन मानते हुए उद्देश्य या आशय के संदर्भ में ही तकनीक का निर्णीत होना आवश्यक माना है ।"[2]

पहले वर्ग के आलोचक तकनीक को सब कुछ मानते हैं तो दूसरे वर्ग तकनीक को लेखक की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं । किसी ने भी तकनीक की उपेक्षा नहीं की है । इसलिए साहित्य में तकनीक या शिल्प-विधि का महत्व स्वयं स्पष्ट हो जाता है ।

---

1. 'When we speak of technique, then we speak of nearly every thing'.
   Mark Shore - Forms of modern Fiction - p.9

2. 'The form of the book depends on it (the intention of the novelists) and until it is known there is nothing to be said of form'.
   Percy Lubbock - The Craft of Fiction - p.12
   '..... technique is the means by which he does realize them (intentions)
   Beach - The twentieth Century Novel. p.2

साहित्य में शिल्प

साहित्य अथवा कला के संदर्भ में शिल्प-विधि का अर्थ है कृति अथवा कलात्मक वस्तु के रचने का तरीका या ढंग । साहित्यकार जिन जिन तरीकों से अपने मनोभावों को रूपायित करता है, वे ही उस की शिल्प-विधि है ।

डा॰ओमशुक्ल साहित्य में शिल्प-विधि की व्याख्या इस प्रकार देता है, "साहित्यकार अपनी रचना के सृजन की प्रारंभिक अवस्था से लेकर इसे कलात्मक रूप प्रदान करने की अंतिम अवस्था तक जिन नाना प्रकार की विधियों, रीतियों एवं प्रक्रियाओं को काम में लाता है, वह सभी विधियाँ और रीतियाँ शिल्पविधि के नाम से पुकारी जाती है ।"[1]

शिल्प के माध्यम से ही हम प्रबंध काव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, गीत, नाटक एकांकी, कहानी और उपन्यास के अन्तर को समझ पाते हैं । अत: साहित्य के प्रकारों का निर्धारण शिल्प के माध्यम से ही होने के कारण पाठकों के लिए इस की अनिवार्यता ज़्यादा बढ़ जाती है । महाकाव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि हर एक साहित्यिक विधा का अपना अपना शिल्प विधान है ।

महाकाव्य की कथावस्तु पद्य में होती है और सर्गबद्ध भी । उपन्यासकार जीवन के समानांतर चलता है तो कवि कल्पना का आश्रय अधिक ग्रहण कर लेता है । काव्य की शिल्पविधि अन्य साहित्यिक विधाओं से ज़्यादा व्यापक है । काव्यशिल्प के अन्तर्गत प्रतीक, बिंब, शब्द, छंद, अलंकार आदि भी आते हैं ।

---

1. हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास -
डा॰ ओमशुक्ल, पृ॰26-27

नाटक दृश्यकाव्य है । इसलिए नाटक की शिल्पविधि में पर्याप्त भेद है । नाटक में काव्य, कहानी आदि की अपेक्षा सुसंगठित कथावस्तु अधिक आवश्यक है । नाटक और उपन्यास की शिल्पविधि की तुलना करते हुए डॉ॰ सत्यपाल चुंघ का कहना है, "उपन्यासकार जीवन की विविधता, व्यापकता तथा जटिलता का जैसा निर्वाह कर सकता है, व्याख्या विवरण आदि के बल पर जैसे रहस्यों को खोल सकता है वैसा नाटक के लिए संभव नहीं । इस रूप में सही है कि उपन्यास दार्शनिक धंधा है और उद्देश्य प्रधान है । वह रस न भी सके तब भी उस की शिल्पविधि रस निष्पत्ति के अधिक अनुकूल है ।"[1] नाटक में कथा के साथ रंगमंच की टेकनीक एवं प्रकाश व्यवस्था, दृश्यांकन की व्यवस्था आदि का ध्यान रखना पड़ता है । नाटक की कथावस्तु संक्षिप्त होना चाहिए । क्योंकि इसे कम समय में सरलता के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत करना है ।

नाटक की कथावस्तु के संबंध में डॉ॰ माखनलाल शर्मा का कथन है, "कहानी (कथा) नाटक और उपन्यास दोनों का तत्व है । कथा में मनोरंजकता होनी चाहिए । इस का भी जितना अच्छा निर्वाह उपन्यास में हो सकता है - नाटक में नहीं ।"[2] पात्रों की संख्या में कहानीकार या उपन्यासकार की स्वतंत्रता नाटककार को नहीं मिलता है । उसे मुख्य घटना को एक या दो पात्रों में केन्द्रीभूत करना पड़ता है । चरित्र चित्रण की विविध विधियों के प्रयोग में भी नाटककार उपन्यासकार की अपेक्षा कम स्वतंत्र है । नाटककार केवल पात्रों की वेष-भूषा, स्वर-गति, संवाद, स्वगत कथन, क्रिया-व्यापार आदि से पात्रों का चरित्र व्यक्त करता है । नाट्य-शिल्प

---

1. प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - डॉ॰सत्यपाल चुंघ, पृ॰42
2. हिन्दी उपन्यास-सिद्धांत और समीक्षा - डॉ॰माखनलाल शर्मा, पृ॰13

का प्रमुख अंग संवाद है । नाटक की रचना के लिए संवाद ही नाटककार का एकमात्र साधन है । इसलिए नाटक में संवाद की अन्य साधनों की अपेक्षा प्रमुख स्थान है । काव्य, कहानी आदि में वातावरण निर्माता स्वयं लेखक ही है । लेकिन नाटक में वातावरण की सफलता रंगमंच की स्थिति, प्रकाश प्रबंधक आदि पर निर्भर है । भाषा के प्रयोग में नाटककार को सतर्क रहना चाहिए । अभिनेता को ठीक प्रकार से उच्चारण कर सकने की तरह नाटककार की भाषा सरल होनी चाहिए । शैली पक्ष में भी नाटककार को सिर्फ संवाद शैली से संतुष्ट होना चाहिए । नाटककार का प्रधान उद्देश्य ऐसे दृश्यांकन योजना का होना चाहिए जिस से दर्शक देखते ही उछल पडे, लेकिन उपन्यासकार पाठकों की चेतना को थपथपाना चाहता है, जिस से वे उपन्यास की मूल समस्या पर मनन चिंतन कर अपने व्यक्तिगत निष्कर्षों की खोज कर सकें ।

कहानी की भी अपनी निजी शैल्पिक विशेषताएं हैं । डॉ॰ त्रिभुवनसिंह कहानी और उपन्यास की शिल्पविधि की तुलना कर के कहता है, "वस्तुत: कहानी और उपन्यास में मौलिक भेद है । यह भेद इन के वस्तु-विन्यास चरित्र चित्रण और शैली तीनों दृष्टियों से है ।"[1] कहानी में घटना प्रसंग, दृश्य, पात्र और चरित्र-चित्रण अत्यंत न्यून सूक्ष्म और संक्षिप्त होता है । उपन्यासकार की तरह प्रमुख कथा के साथ विविध प्रासंगिक कथाएं जोडने का अवसर कहानीकार को नहीं मिलता है । कहानी अपने छोटे कलेवर के कारण जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत करने में असमर्थ है । नाटक या उपन्यास की तरह कहानी में पात्रों के चरित्र का क्रमिक विकास संभव नहीं है । कहानीकार अपने पात्रों के चरित्र की कुछ एक विशेषताओं को ध्यान में रखकर परिस्थिति विशेष में व्यंजित उन के व्यक्तित्व को

---

1. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डॉ॰त्रिभुवनसिंह, पृ॰94

प्रस्तुत करता है । कहानी में संवादों का प्रयोग अनिवार्य नहीं है । कहानी में व्यापक देश-काल चित्रण भी संभव नहीं है । भाषा-शैली के प्रयोग में नाटककार की अपेक्षा कहानीकार कम स्वतंत्र है । कहानी में कम शब्दों में अधिक बात कहने का प्रयास है । एक भी अनावश्यक शब्द या वाक्य कहानी को क्षीण कर सकता है । लेकिन उपन्यासकार को इस दायरे के अंदर रहने की आवश्यकता नहीं है । इस के अतिरिक्त कहानी में आरंभ, अंत तथा शीर्षक का भी विशेष महत्व है ।

उपन्यास में महाकाव्य, नाटक आदि के समान विषय-सामग्री एवं शिल्पविधि के नियमों की रूढिबद्धता नहीं है । उपन्यास के कथानक में जीवन का व्यापक चित्रण संभव है । उपन्यास में व्यक्ति एवं समाज के संघर्ष की कहानी को एक साथ प्रस्तुत किया जा सकता है । उपन्यासकार को मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाएँ जोडने का मौका मिलता है । नाटक एवं कहानी की तरह उपन्यास का कथानक सुसंगठित होना अनिवार्य नहीं है । उपन्यासकार को पात्रों के चरित्र का विकास क्रमिक रूप में करने का मौका मिलता है । चरित्र चित्रण के लिए उपन्यासकार के सामने अनेक विधियाँ हैं । संवाद के कार्य में भी उपन्यासकार अन्य साहित्यकारों से पूर्ण रूप से स्वतंत्र है । क्योंकि उपन्यासकार उपन्यास में सुविधानुसार संवाद समावेश कर सकता है । उपन्यास के विस्तृत फलक में व्यापक देशकाल और वातावरण चित्रण करने में कोई कठिनाई नहीं है । भाषा और शैली के प्रयोग में भी उपन्यासकार नाटककार या कवि की अपेक्षा स्वतंत्र है कथानक के विकास के लिए उपन्यासकार विविध शैलियों का प्रयोग करता है । लेकिन नाटककार को सिर्फ संवाद शैली में ही संतुष्ट होना चाहिए । उपन्यासकार का उद्देश्य किसी व्यक्तिगत

या सामाजिक समस्या चिंतन करने के लिए पाठकों के मन को छोडना पड़ता है । इस प्रकार उपन्यासकार को रचना के क्षेत्र में काफी स्वतंत्रता है ।

उपन्यास और शिल्प

उपन्यास साहित्य की आधुनिक विधा है । काव्य, नाटक और कहानी के उपरांत ही साहित्य जगत में उपन्यास का आविर्भाव हुआ । यह जीवन के बृहत्तर सन्दर्भों को अपने में समाहित करने की क्षमता रखनेवाली विधा है जो उचित शिल्प में खरा उतरता है । उपन्यासकार शिल्प के द्वारा ही अपने अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति पा लेते हैं । "उपन्यास की शिल्पविधि का निर्धारण मुख्यत: उपन्यासकार के दृष्टकोण पर निर्भर है ।"[1] उपन्यासकार अपने भाव के समूर्तन के लिए या उसे अर्थबोध देने के लिए तदनुकूल शिल्प का गठन भी कर लेता है । उस का शिल्प पक्ष चाहे सबल हो या निर्बल पर यह स्पष्ट है कि जहाँ सृजन होगा, वहाँ उस का शिल्प विधान भी होगा । प्रसिद्ध आलोचक कोन्नार के अनुसार उपन्यासकार की विजय या पराजय की चाबी दरअसल उस का संरचना पक्ष ही है ।"[2] उपन्यास के शिल्पपक्ष के अंतर्गत कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल एवं वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य आते हैं ।

उपन्यास की शिल्पगत विशेषताओं से अनभिज्ञ होने पर भी कोई भी पाठक उस के कथानक से अवश्य परिचित रहता है । कथानक अंग्रेज़ी के "प्लॉट" शब्द का समानार्थी शब्द है । वह उपन्यास के

---

1. 'The whole intricate question of method in the craft of Fiction I take to be governed by the question of point of view, the question of the relation in which the narrator stands to story'. Percy Lubbock - The Craft of Fiction. p.251.

2. '--.... That structure is the key to the noverlists success or failure'.
O' Conner William Van - Form of modern Fiction.p.30

शिल्प की नींव है ।"[1] उपन्यास की कथा दरअसल कालक्रमानुसार संगठित घटनाओं का विवरण है । उस को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की प्रतिभा उपन्यासकार में होना अनिवार्य है । उपन्यास के प्रवाह बनाए रखते हुए पाठक को उस की परिसमाप्ति तक उत्सुक बनाए रखने केलिए प्रतिभा आवश्यक है ।

उपन्यास में कथानक का ही प्रमुख स्थान है, उस के आधार पर शिल्प के अन्य पक्षों का विकास होता है । कथानक कथा को प्रस्तुत करता है, चरित्रों का उद्घाटन करता है, देश-काल संबंधी सीमाओं का निर्धारण करता है तथा भाषा-शैली को नया रूप प्रदान करता है ।

कथा और कथानक में अंतर है । कथा घटनाओं का अनुक्रम से संगठित वर्णन है । कथानक में भी घटनाओं का अनुक्रमिक वर्णन होता है, लेकिन इस में कार्य कारण के संबंध को प्रमुखता दी जाती है और आगे की घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दे दिया जाता है । कथानक का संगठन इस प्रकार का होना चाहिए जिस में अनावश्यक विवरण न हो । वह उपन्यास की रीढ़ है जिस के सहारे उस का मूल ढाँचा स्थिर कर सकता है । घटनाओं का क्रमबद्ध संचालन अच्छे कथानक में होता ही है । कभी कभी उच्छृंखल कथानक भी उपन्यास को कलात्मक बना देता है । आधुनिक उपन्यास में यद्यपि कथानक का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है तथापि हिन्दी में एक भी ऐसा उपन्यास नहीं हुआ है जो कथानक से पूर्ण रूप से मुक्त हो ।

उपन्यास में पात्रों के क्रिया कलाप से कथानक का निर्माण होता है । कथानक और पात्र इतने घुले-मिले रहते हैं कि उन्हें अलगाना मुश्किल हो जाता है ।"[2] उपन्यास की घटनाएँ जिन से

---

1. 'We shall all agree that the fundamental aspect of Novel is its story telling aspect'. E.M.Forster - Aspects of the Novel- p.40

2. 'The characters are not part of the machinery of the plot, nor is the plot merely a rough frame work around the characters, on the contrary, both are inseparably knit together'. Edwin Muir-Structure of the Novel.p.41

संबंधित होती हैं या जिन को लेकर उन का घटित होना दिखाया जाता है, वे पात्र कहलाते हैं । इन्हीं पात्रों के क्रियाकलापों से कथानक या कथावस्तु का निर्माण होता है । एक श्रेष्ठउपन्यास केलिए सजीव पात्रों का सृजन आवश्यक है । उपन्यासकार को पात्रों के चित्रण के लिए सूक्ष्म निरीक्षण तथा पैनी दृष्टि की आवश्यकता है । उपन्यासकार वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक जैसे विभिन्न प्रकार के पात्रों का सृजन करता है । आज के उपन्यासों में वैयक्तिक पात्रों को प्रमुख स्थान है । सामाजिक एवं वैयक्तिक स्तर पर जीवन के विविध पक्षों का और उन के बीच की एकता का अध्ययन करना ही उपन्यास में चरित्र चित्रण का ध्येय है । "उपन्यास के तत्वों में चरित्र चित्रण का सर्वाधिक महत्व है । यदि कथानक उपन्यास का मेरुदंड है तो चरित्र चित्रण उस का प्राण है ।"[1] वह मौलिक तथा स्वाभाविक होना ज़रूरी है ।

उपन्यास की शिल्पविधि में संवाद या कथोपकथन की भूमिका भी प्रमुख है । कथानक का विकास करना, पात्रों की व्याख्या करना और लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना संवाद का उद्देश्य है । संवादों द्वारा उपन्यासकार अतीत की सूचना और भविष्य का निर्देश भी देता है । कथानक की एकसूत्रता और उस में निहित जिज्ञासा भाव का सूत्रपात भी कथोपकथन द्वारा ही किया जाता है । कथोपकथन नाटकीय और प्रभावशाली होना चाहिए । कथोपकथन परिस्थिति के अनुरूप स्पष्ट, रोचक, उपयुक्त और स्वाभाविक होना चाहिए जिस से पात्रों का व्यक्तित्व भी प्रकट हो । उपन्यास में वार्तालाप या कथोपकथन की प्रमुखता को स्पष्ट करते हुए प्रेमचंदजी ने कहा, "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाए, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा ।

---

1. हिन्दी उपन्यास कला - डा॰ रामलखन शुक्ल, पृ॰23

वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए । प्रत्येक वाक्य को, जो किसी चरित्र के मुंह से निकले उस के मनोभावों और चरित्र पर कुछ-न-कुछ प्रकाश डालना ही चाहिए । बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल सरस और सूक्ष्म होना ज़रूरी है ।"[1] पर आधुनिक उपन्यासों में कहीं-कहीं कथोपकथन की न्यूनता प्रकट होने लगी है । उत्तमपुरुष में लिखे गये उपन्यासों में संवाद नहीं के बराबर है ।

उपन्यास में समय एवं स्थान का निर्धारण देशकाल के चित्रण से किया जाता है । इस की घटनाओं एवं परिस्थितियों का लेखा-जोखा इसके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । देशकाल से तात्पर्य उपन्यासों में वर्णित आचार विचार, रीतिरिवाज़, रहन-सहन, परिस्थिति आदि से है । उपन्यासकार को देशकाल के अनुरूप घटनाओं का चित्रण करने में सतर्क रहना चाहिए । उपन्यास में वातावरण का प्राय: कथा-काल और कथा-प्रकारानुसार चयन किया जाता है । कुछ ऐसे उपन्यास भी लिखे गए हैं, जिन में पात्रों तथा कथानक की महत्ता नहीं है । संपूर्ण उपन्यास में वातावरण ही प्रधान है । आज के नये उपन्यासों में देशकाल और वातावरण का ह्रास होता जा रहा है । याने उस की प्रधानता कम होती जा रही है ।

भाषा एवं शैली उपन्यास के शिल्प का और एक पहलू है । भाषा के ज़रिए ही कथाकार अपने अभिप्रेत को संप्रेषित करता है । उपन्यास की भाषा और साहित्य की अन्य विधाओं की भाषा में अंतर है । उसमें न तो नाटक की भाँति संवादों का प्रयोग और तदनुरूप गति होती है, न कहानी की भाँति क्षिप्रता । काव्य

---

1. कुछ विचार - प्रेमचन्द, पृ.103

भाषा की अर्थव्यंजना और सौन्दर्य उपन्यास की भाषा में नहीं है । उपन्यास की भाषा निबंध की ठोस जड भाषा से भी अलग है, "आज के उपन्यासों में भाषा केवल मस्तिष्क की उपज नहीं होती, बल्कि वह आंतरिक संसार के बिंबों को भी व्यक्त करती है, जिस में स्वर एवं गंध की अनुभूति होती है ।"[1] भाषा की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में जो आश्चर्यजनक विविधता दिखाई देती है वह रचनाकार की बदली हुई जीवन दृष्टि का परिणाम है ।

उपन्यासकार की अभिव्यक्ति प्रक्रिया को नया रूप प्रदान करनेवाला है शैली एवं शिल्प । कथानक, चरित्र एवं भाषा को प्रस्तुत करने का वह तरीका उस की शैली है । साहित्य की किसी भी विधा का बाह्य स्वरूप उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम होता है और उस माध्यम का स्वरूप ही शैली है । कथानक की गंभीरता एवं जटिलता के अनुरूप ही उस की भाषा-शैली में विविधता के दर्शन होते हैं । उपन्यास की शैली के बारे में अंग्रेज़ी आलोचक मिड्ल टर्न मुरे का कथन है, "शैली भाषा की वह खासियत है जिस से रचनाकार अपने विशेष भाव एवं विचार को संप्रेषित करती है ।"[2] शैली की दृष्टि से उपन्यास इस प्रकार का होना चाहिए कि उस में साहित्यिक संदर्भ की प्रतिष्ठा हो और वह पाठकों को आकर्षित करने में समर्थ हो । प्रारंभ काल में लगभग सभी भाषाओं के उपन्यासों में एक ही प्रकार की शैली का प्रयोग किया जाता रहा था । वह था वर्णनात्मक शैली या अन्य पुरुष शैली । लेकिन आधुनिक उपन्यासकार नयी नयी शैलियों का प्रयोग करते हुए आगे बढ़ रहे हैं ।

---

1. Modern Psychological Novel - Edel Leon- p.135
2. 'Style is a quality of language which communicates previosly emotions or thoughts peculiar to the author'.
   The Problems of Style - Middle Turn Murrey. p.65

उपन्यासकार का दृष्टिकोण ही उद्देश्य शिल्प में स्पष्ट होता है । उद्देश्य शिल्पविधि के प्रयोग का आधार है । डॉ॰ रामलखन शुक्ल के अनुसार "लेखक के दृष्टिकोण के निर्माण में उस का परिवेश वस्तु जगत, उस के अध्ययन, शिक्षा तथा उसका अन्तर्जगत उत्तरदायी होते हैं । और यही वे सब साधन हैं जहाँ से वह अपनी रचना सामग्री ग्रहण करता है जिस के आधार पर उस का रचना-प्रासाद निर्मित होता है ।"[1] प्रत्येक साहित्यिक कृति का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है । उस उद्देश्य की अभिव्यक्ति भली-भाति होनी चाहिए । उपन्यास का उद्देश्य जीवन की झाँकी देकर उस की व्याख्या करना भी है । उपन्यास के उद्देश्य के बारे में डॉ॰श्यामसुन्दरदास ने लिखा है, "उपन्यासों में मुख्यत: यही दिखलाया जाता है कि पुरुषों और स्त्रियों के विचार, भाव और पारस्परिक संबंध आदि कैसे हैं, वे किन किन कारणों अथवा प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कैसे कैसे कार्य करते हैं, अपने प्रयत्नों में किस प्रकार सफल अथवा विफल होते हैं और इन सब के फलस्वरूप उनमें कैसे कैसे मनोविकार आदि उत्पन्न होते हैं ।"[2]

उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन तो अवश्य है । किंतु आज वे मनोरंजन के अतिरिक्त किसी एक विशिष्ट उद्देश्य का भी प्रतिपादन करता है । उपन्यास के उद्देश्य के बारे में डॉ॰ गुलाबराय का कथन है, "उपन्यासकार के विचार और आदर्श उपन्यास की कथावस्तु में ही प्राप्त होते हैं और वह विभिन्न पात्रों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं । पात्रों द्वारा अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति करना अधिक सुंदर और कलात्मक है ।"[3] लेकिन आधुनिक उपन्यासों में उद्देश्य शिल्प का महत्व कम होता जा रहा है ।

---

1. डॉ॰रामलखन शुक्ल - हिन्दी उपन्यास कला - पृ॰57
2. डॉ॰श्यामसुंदरदास - साहित्यालोचना - पृ॰134
3. डॉ॰गुलाबराय - काव्य के रूप - पृ॰190

हिन्दी उपन्यास की प्रारंभिक दशा

हिन्दी में उपन्यास विधा का प्रारंभ सन् 1800 के लगभग हुआ है । जैसे आधुनिक हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं का विकास अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव से हुआ है वैसे हिन्दी उपन्यास का भी । भारत के जो जो प्रदेश अंग्रेज़ी संपर्क में पहले आये, उन में उपन्यासों का प्रचार अपेक्षाकृत कुछ पहले हुआ । इसलिए बंगला में उपन्यासों की रचना हिन्दी की अपेक्षा काफी पहले ही आरंभ हो चुकी थी । हिन्दी उपन्यास साहित्य पर बंगला उपन्यास का प्रभाव पड़ने का कारण भी यही है । प्रारंभिक काल में हिन्दी में बंगला के उपन्यासों का अनुवाद ही होता रहा था ।

सन् 1800 ई॰ के लगभग ईशाअल्लाखां रचित "रानी केतकी की कहानी", लल्लुलाल कृत "सिंहासन बत्तीसी", "बैताल पच्चीसी" आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं । लेकिन उपन्यासकला के विकास में इस का अधिक महत्व नहीं है । क्योंकि इन प्रारंभिक कथात्मक-कृतियों पर उपनिषदों, पुराणों, संस्कृत से लिए गए पौराणिक कथावृत्तों तथा फारसी की लोक प्रचलित मौखिक कहानियों का प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है । इसी समय हिन्दी साहित्य के प्रांगण में भारतेन्दुजी का पदार्पण होता है ।

भारतेन्दु ने भटके हुए साहित्यकारों को नई दिशा ही निर्देशित नहीं की बल्कि उन्हें प्रोत्साहित भी किया । उपन्यास कला की दृष्टि से भारतेन्दु की सब से महत्वपूर्ण कृति "पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा" है । यह मराठी से अनूदित है । भारतेन्दुजी ने नवीन

औपन्यासिक विधा की ओर अपने समसामयिकों का ध्यान आकर्षित किया । हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास को लेकर विद्वानों में मतभेद है । ऐतिहासिक दृष्टि से श्रद्धाराम फुल्लौरी का लिखा "भाग्यवती" शीर्षक उपन्यास हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जा सकता है । इस का रचनाकाल सन् 1877 है । लेकिन यह रचना एक उपन्यास के लिए वाँछित गुणों से दूर थी । अत: 1882 में प्रकाशित लाला श्रीनिवासदास रचित "परीक्षा गुरु" को ही हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है, "ऐतिहासिक दृष्टि से "भाग्यवती" प्रथम उपन्यास होते हुए भी श्री॰ श्रद्धाराम फुल्लौरी के स्थान पर लाला श्रीनिवासदास को ही हिन्दी उपन्यास का जनक कहलाने का अधिकार प्राप्त है ।"[1] हिन्दी उपन्यास के विकास में "परीक्षागुरु" का महत्व निर्विवाद का है । इस की कथा सुधारात्मक एवं उपदेशात्मक है । इस काल में सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रेम-प्रधान, तिलस्मी तथा ऐयारी जैसे अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे गये ।

बालकृष्ण भट्ट का "नूतन ब्रह्मचारी" तथा "सौ अजान एक सुजान", किशोरीलाल गोस्वामी का "कुसुम कुमारी", बालमुकुन्द गुप्त का "कामिनी" आदि भारतेन्दुयुग के प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है । लेकिन गोस्वामी को सिर्फ सामाजिक उपन्यासकार की कोटी में रखना ठीक नहीं है । क्योंकि उन्होंने युग की समस्त औपन्यासिक प्रवृत्तियों को अपनी कृतियों में समाहित किया है । डा॰ दाण्डेय का कथन, "पूर्व प्रेमचंद युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार श्री॰ किशोरीलाल गोस्वामी हैं । उपन्यास लेखक श्री॰ गोस्वामिजी का साहित्य में

---

1. महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण - पृ॰ 17

वही स्थान है जो नाटककारों में भारतेन्दुजी का ।"[1] इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में ब्रजनंदन सहाय, बलदेव प्रसाद आदि आते हैं । जासूसी और ऐयारी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी और देवकीनंदन खत्री को प्रमुख स्थान है । खत्रीजी के "चन्द्रकांता", "चन्द्रकांता संतति" आदि जनप्रिय उपन्यास रहे । इस के अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथ मिश्र, काशी प्रसाद आदि ने प्रेमाख्यानपरक उपन्यास लिखे जिन में प्रेम का रूढिबद्ध वर्णन है । संक्षेप में कह सकते हैं कि इस युग के सामाजिक तथा कल्पना प्रधान उपन्यासकारों के बीच किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी और देवकीनंदनखत्री को ही विशेष स्थान है ।

द्विवेदीयुग औपन्यासिक विकास की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता । इस काल में भी अनुवाद की परंपरा चलती रही । खत्री, गहमरी और गोस्वामी की सम्मिलित त्रिवेणी तथा प्रेमचंद से मिलानेवाले श्री हरिऔध, लज्जाराम मेहता, ब्रजनंदन आदि इस समय के प्रमुख उपन्यासकार है । हरिऔधजी और लज्जाराम मेहता समाज सुधारक एवं आदर्शवादी उपन्यासकार के रूप में उल्लेखनीय हैं । केदारनाथ शर्मा का "तारामती", चन्द्रसेन जैन का सामाजिक उपन्यास "बंढापे का ब्याह", कृपाराम मेहता का "माता का उपदेश", ब्रजनंदन सहाय का "अद्भुत प्रायश्चित", मिश्रबन्धु रचित "विक्रमादित्य" आदि पूर्व प्रेमचंद युग के उल्लेखनीय उपन्यास है । लेकिन भारतेन्दु तथा द्विवेदी युगीन उपन्यासों को प्रेमचंद युगीन उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि समझना अच्छा रहेगा । श्री· मनन द्विवेदी के "रामलाल" में ग्रामीण जीवन का जो चित्रण हुआ है उस दिशा में आगे चलकर प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों का सृजन किया है । इस बात पर भी

1· डा· वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ·179

विशेष ध्यान देना चाहिए कि पूर्व प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में व्यक्ति के अंतरमन के विश्लेषण का अभाव है । इस युग के उपन्यास-कारों का ध्यान बाह्य परिस्थितियों तक सीमित रहा तथा उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य मनारंजन भी । इन उपन्यासों में जीवन की आलोचना और गंभीर दृष्टि नहीं थी । इसलिए उपन्यास साहित्य की स्थायी संपत्ति बनाने योग्य कोई भी कृति इस काल में नहीं हुई है । शिल्प की दृष्टि से भी इस युग के उपन्यास दुर्बल रहे हैं ।

पूर्वप्रेमचंदयुगीन उपन्यास और शिल्प

यह युग हिन्दी उपन्यास का प्रारंभिक युग है इसलिए शिल्प-विधि का भी । उस समय के उपन्यासकारों के सामने हिन्दी उपन्यास को कोई परंपरा नहीं थी । इसलिए उन्हें अन्य भाषा के औपन्यासिक शिल्पविधि के अनुकरण के अलावा और कोई रास्ता नहीं था । अत: उन्होंने बंगला तथा अंग्रेज़ी उपन्यासों की शिल्पविधि का आश्रय ले लिया । धीरे धीरे अपनी ओर से नए नए प्रयोग करने लगे । जो नया बीज बोया वह प्रेमचंदयुग में विकसित हुआ, "हिन्दी उपन्यास साहित्य की इस प्रारंभिक अवस्था में प्रयोगात्मक व अनगढ शिल्प का बोलबाला था । उपन्यास रचना का कोई साहित्यिक लक्ष्य निर्धारित नहीं हुआ था, इस कारण उपन्यास की शिल्पविधि के सभी तत्व हमें अविकसित एवं अनगढ़ अवस्था में दिखाई देते हैं ।"[1]

इस युग का कथाशिल्प अप्रौढ एवं सीधा-सादा है । कथावस्तु में जीवन की गंभीर समस्याएं नहीं मिलती है ।

---

1. डॉ. श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि - पृ.62

उपन्यासकार अपने पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की पूर्ती के अनुसार कथा का गठन और विकास करते थे । उन्होंने जीवन की तात्कालिक समस्याओं को कथानक का आधार बनाया था । तिलस्मी या ऐयारी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति ज़्यादा दिखाई देती थी । इस समय के शिक्षाप्रद उपन्यासों में हिन्दी के सामाजिक एवं सुधारवादी उपन्यास के बीज छिपे हुए हैं । तिलस्मी जासूसी कथा के विकास केलिए अनहोनी, आकस्मिक व रोमांचकारी घटनाओं का सहारा लिया गया है । पूर्व-निर्धारित कथा लक्ष्य की ओर बढ़ने के कारण कथा का उपसंहार नाटकीय और रोचक न होकर पूर्व-परिचित लगता है । इस समय के उपन्यासकारों का एकमात्र उद्देश्य कहानी सुनाना था । इसलिए पूर्व प्रेमचंद युग में कथा ही उपन्यास की रीढ बनकर रह गयी ।

प्रारंभ कालीन उपन्यासों में कथा-शिल्प को ही सर्वाधिक बल दिया जाता था । इसलिए पात्र एवं चरित्र चित्रण शिल्प बिलकुल अनगढ़ अवस्था में था । पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतलियाँ थे । इन यांत्रिक पात्रों के आचरण एवं चिंतन में उपन्यास के अंत तक कोई परिवर्तन नहीं होता था । उपन्यासकार एक ओर शूरवीर, बुद्धिमान, तेजस्वी पात्रों को तथा दूसरी ओर कुटिल, दुष्ट एवं नीच पात्रों के सृजन करने में ही परिपूर्ण संतुष्ट थे । इन पात्रों के ज़रिए उपन्यासकार अपना अभीष्ट प्राप्त करते थे । इन पात्रों में अपना स्वत्व अथवा व्यक्तित्व नहीं थे । इस में प्रत्यक्ष चरित्र चित्रण को ही स्थान था । पात्र का आकृति वर्णन ही प्रमुख रूप में होता था । इस तरह के चरित्र चित्रण के कारण पात्रों में सजीवता एवं स्वाभाविकता के स्थान पर जड़ता एवं स्वत्वहीनता ही अधिक दिखाई देती थी । गोया कि इस युग में चरित्र चित्रण अनायास था । क्योंकि इनमें मानव जीवन के सूक्ष्म सन्दर्भों का चित्रण नहीं होता था ।

"सौ अजान एक सुजान", "चन्द्रकांता" आदि उपन्यासों में आकृति वर्णन पर टिके हुए चरित्र चित्रण का उदाहरण मिलता है । ये पात्रों के आंतरिक चरित्र के उद्घाटन की उपेक्षा कर के बाह्य चित्रण से संतुष्ट हो जाते थे । इसलिए इस के पात्र यथार्थ जीवन से काफ़ी दूर थे । कहने का मतलब यह हुआ कि पूर्व-प्रेमचंद युगीन उपन्यासकार पात्रों के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथानक एवं उद्देश्यपूर्ती पर काफ़ी दत्तचित्त थे ।

पूर्वप्रेमचंद युगीन उपन्यासों में संवाद या कथोपकथन शिल्प को भी वांछित स्थान नहीं मिला था । आज की अपेक्षा उस काल में कथोपकथन शिल्प नहीं के बराबर है । यह युग भाषा की दृष्टि से भी संकटकालीन परिस्थिति से गुज़र रहा था । इसलिए इस समय के उपन्यासों में संवाद बिलकुल अस्त-व्यस्त ही दिखाई पड़ता था ।

इस युग के उपन्यासों में भाषा-शैली शिल्प का भी अविकसित रूप देखने को मिलता है । भाषा का कोई स्थिर रूप नहीं था । उपन्यासकारों का ध्यान बोलचाल की भाषा की ओर था । इसलिए उस समय के उपन्यासों में हिन्दी उर्दू मिश्रित खिचडी भाषा का प्रयोग ज़्यादा मिलता है । "परीक्षागुरू" में दिल्ली की प्रादेशिक भाषा का व्यावहारिक रूप प्रयुक्त हुआ है । "परीक्षागुरू" की भूमिका में लाला श्रीनिवासदास ने कहा है, "इस पुस्तक में दिल्ली के एक कल्पित रईस का चित्र उतारा गया है और उस को जैसे का तैसा दिखाने केलिए संस्कृत अथवा फारसी, अरबी के कठिन शब्दों की बनाई भाषा के बदले दिल्ली के रहनेवालों की साधारण बोलचाल पर ज़्यादा दृष्टि रखी गयी है ।"[1] "भाग्यवती" नामक उपन्यास में भी जनसाधारण की बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है ।

---

1. लाला श्रीनिवासदास - परीक्षागुरू - पृ.4

प्रारंभकालीन उपन्यासों में इस अपरिष्कृत भाषा-प्रयोग के अलावा संस्कृतनिष्ठ व परिष्कृत भाषा-प्रयोग भी देख सकते हैं । उदाहरण के लिए "सौ अजान एक सुजान"में नीतिवाक्यों तथा संस्कृत सुभाषितों द्वारा भाषा को निखारने का प्रयास किया गया है । लेकिन इस युग की भाषा अप्रौढ तथा अपूर्ण ही लगती थी । उपन्यास का शैलीपक्ष भी दुर्बल था । उपमा तथा अलंकारों की बोझ से लदी हुई भाषा प्रयोग में पुरातन संस्कृत निष्ठ शैली की झलक मिलती थी ।

उपन्यास-शिल्प का देशकाल एवं वातावरण अधिक उपेक्षित, फलस्वरूप सर्वथा अविकसित रहा । इस काल के उपन्यासों में वातावरण - सृजन सिर्फ प्रकृति वर्णन मात्र था । इस प्रकार का वातावरण अधिकतर सजावटी था । यह वातावरण चित्रण कथा-विकास या पात्रों के चरित्र विकास में कहीं भी सहायक सिद्ध नहीं होता था । उपन्यासकार रमणीक उद्यानों, सूर्योदय अथवा सूर्यास्त की प्राकृतिक छटा के वर्णन तक अपने-आप को सीमित रखते थे । "परीक्षागुरु" में बाग की छटा का वर्णन, "नूतन ब्रह्मचारी" में सूर्योदय का वर्णन आदि इसका उदाहरण है । इस के अलावा तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों में रहस्यात्मक और भयानक वातावरण भी देख सकते हैं ।

इस समय के उपन्यासों के शिल्प में कथानक एवं उद्देश्य को ही स्थान था । उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य पाठकों को मनोरंजन प्रदान करना था । इसके अलावा उपन्यासों द्वारा नीतिपरक एवं उपदेशात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए भी वे कोशिश करते थे । पूर्व प्रेमचंदयुगीन अनगढ एवं प्रयोगात्मक उपन्यास शिल्प का प्रेमचंदयुग में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ । आगे हम इस की चर्चा करेंगे ।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यास का शिल्प

प्रेमचंद के आगमन से उपन्यास साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ । उन्होंने उपन्यास को सस्ती मनोरंजकता, तिलस्मी और ऐयारी की संकुचित दुनिया से निकालकर जीवन की सच्चाइयों की भावभूमि में प्रतिष्ठित किया । प्रेमचंद के अतिरिक्त जयशंकर प्रसाद भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, ऋषभ चरण जैन, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, प्रताप नारायण श्रीवास्तव आदि इस युग के प्रमुख उपन्यासकार है । इस युग में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक जैसे विभिन्न प्रकार की औपन्यासिक संरचनाओं का सूत्रपात हुआ । यह युग उपन्यास की शिल्पविधि के विकास का भी युग रहा है ।

उपन्यास के कथानक-शिल्प का विकास इस युग में पर्याप्त मात्र में हुआ है । प्रेमचंद और उनके सहयोगी, कथानक को कल्पना तथा रोमांस की जगत से यथार्थ जगत में ले आए । इस युग के उपन्यासों का कथातक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, रूढिवादिता आदि विषयों से संबंधित था । प्रेमचंद युगीन उपन्यास कथावस्तु की दृष्टि से बिलकुल सुसंगठित है । इस काल के उपन्यास के कथानक का आधार ठोस एवं यथार्थवादी है । इसलिए पाठकों पर इस का प्रभाव काफी ज़ोरदार है । कभी कभी अनेक समस्याएँ एक ही कथानक में प्रस्तुत की जाती है । प्रमुख कथा के साथ अनेक गौण कथाएँ भी देख सकते हैं । प्रेमचंद ने कथानकों को अधिक विश्वसनीय एवं स्वाभाविक बनाने के लिए इन्हें पारिवारिक माहौल प्रदान किया है । "प्रतिज्ञा" में अमृतराय तथा लाला बदरीप्रसाद के परिवारों की कथा, "निर्मला" में मुंशि परिवारों के साथ साथ भालचन्द्र सिन्हा के परिवार की कथा

आदि इस केलिए उदाहरण हैं । प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की कथा का प्रारंभ मुख्य समस्या का संकेत देकर किया है और कथा विकास के लिए भावी घटनाओं का संकेत जगह-जगह दिया है । सुखांत और दुखांत दोनों प्रकार के कथानक इस युग में मिलते हैं । उपन्यासकारों ने समाज की हर एक समस्या पर नज़र डाला है तथा लोगों को सजग बनाने का कार्य भी किया है ।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण शिल्प प्रारंभकालीन उपन्यासों की अपेक्षा प्रबल रहा । इस युग के उपन्यासों के पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे । इसलिए तत्कालीन समाज का अध्ययन उस समय के उपन्यासों के पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार पर किया जा सकता है । प्रेमचंद के पात्र सामाजिक समस्याओं के प्रतिनिधि है । वृन्दावनलाल वर्मा ने सामंत, मध्यम तथा निम्न जैसे प्राय: सभी वर्गों के पात्रों को अपने उपन्यासों में रखा है । उसी प्रकार उस समय के दीगर उपन्यासकारों की रचनाओं में भी तत्कालीन समाज की समस्याएँ जीवंत हो रही है । इसलिए हम कह सकते हैं कि इस युग के उपन्यास तथा उस के पात्र यथार्थवादी है । चरित्र चित्रण की बाह्य और आभ्यंतर दोनों प्रणालियों का प्रयोग इस युग में हुआ है । लेकिन बाह्य या वर्णनात्मक चरित्र चित्रण अधिक प्रचलित है । उपन्यास में चरित्र चित्रण को श्रेष्ठता प्रदान करते हुए प्रेमचंद ने कहा है "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उस के रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[1] प्रेमचंद ने चरित्र चित्रण के लिए आत्मविश्लेषण, संवाद, स्वप्न, फैंटसी आदि का सहारा भी लिया है, "इस प्रकार चरित्र-चित्रण संबंधी नयी विधियों के उपयोग के कारण प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यासों की

---

1. प्रेमचंद - कुछ विचार - पृ.47

रचना-विधि में क्रांतिकारी परिवर्तन ही नहीं किया, वरन् उन्होंने हिन्दी उपन्यास के भावी विकास की सुदृढ़ नींव भी डाल दी ।"[1]

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों ने औपन्यासिक शिल्प को सजीव, नाटकीय एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कथोपकथन या संवाद का ज़्यादा उपयोग किया है । उपन्यास में कथोपकथन का महत्व स्वीकार करते हुए प्रेमचंदजी ने कहा है, "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कला से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा । वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए ।"[2] पूर्वप्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में कथोपकथन का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं था । लेकिन प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकार कथोपकथन की स्वाभाविक शैली का विकास कर के उपन्यास के इस शिल्प पक्ष को संपन्न किया । इस युग के उपन्यासकार कथोपकथन का उपयोग कथा के विकास केलिए, पात्र के चरित्र-चित्रण के लिए और स्वयं अपने विचार प्रकट करने के लिए किया है । प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्वगत कथन का प्रयोग भी किया । मिसाल के तौर पर "रंगभूमि" में विनय के स्वगत भाषण द्वारा सोफिया के प्रति उस के प्रेम का परिचय मिलता है, "कहीं वह यह तो नहीं समझ गयी कि मैं ने जीवन-पर्यन्त केलिए सेवाव्रत धारण कर लिया है । मैं भी कैसा मंदबुद्धि हूं । उसे माताजी की अप्रसन्नता का भय दिलाने लगा ··· क्या मैं अपने आत्मसमर्पण से, अपने अनुराग से उसे संतुष्ट नहीं कर सकता ? यदि मेरे सेवा-व्रत, मातृ-भक्ति और संकोच का यह परिणाम हुआ, तो जीवन दुस्सह हो जाएगा ।"[3] गोया कि प्रेमचंदयुग में ही उपन्यास के कथोपकथन शिल्प को ज़्यादा महत्व मिला था ।

---

1. डॉ॰ ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास-पृ॰115
2. प्रेमचंद - कुछ विचार - पृ॰70
3. प्रेमचंद - रंगभूमि - पृ॰301

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों ने भाषा को पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की दुरूह तथा क्लिष्ट भाषा की दलदल से निकालकर इस का परिष्कार कर के सरल बनाया । इस युग के उपन्यासकारों की भाषा में सूक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग अधिक मिलता है । भाषा की सरलता एवं प्रभावोत्पादकता इस युग के उपन्यासों की विशेषता है । प्रेमचंद की वर्णनात्मक भाषा के बारे में डा॰ रामरत्न भट्टनागर का कथन है, "प्रेमचंद के वर्णन भाषा के जगमगाते हुए हीरे हैं । ये हीरे उन के उपन्यासों में बिखरे हुए मिलेंगे ।"[1] प्रेमचंद ने व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है । इस युग के ही उपन्यासकार प्रसादजी की भाषा में काव्यात्मकता और दार्शनिकता भी देख सकते हैं । वृन्दावनलाल वर्मा की "मृगनयनी" में भी काव्यमयी भाषा का प्रयोग हुआ है । उपन्यास के शैली पक्ष में कोई विशेष विकास इस समय में नहीं हुआ । सभी उपन्यास वर्णनात्मक या सपाट शैली में ही लिखे गए ।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यास के देशकाल और वातावरण शिल्प कथानक एवं चरित्र चित्रण के विकास में सहायक रहे हैं । इस युग के उपन्यासकार सामाजिक एवं प्राकृतिक दोनों प्रकार के वातावरण का सृजन करते थे । प्रेमचंद के उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक जीवन के चित्रण के बारे में डा॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "अगर आप उत्तर भारत की जनता के आचार विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, सुख-दु:ख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक कहीं नहीं मिल सकता ।"[2] प्रसादजी ने प्राकृतिक वातावरण चित्रण को अधिक बल दिया । इस युग के उपन्यासकारों का वातावरण चित्रण कोरी सजावट के लिए नहीं है ।

---

1. डा॰ रामरत्न भट्टनागर - कलाकार प्रेमचंद - पृ॰358
2. डा॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य - पृ॰435

वे पात्र की मन:स्थिति के अनुरूप चारों ओर के वातावरण के सृजन द्वारा उस का चरित्र चित्रण करते हैं । वातावरण चित्रण में सामाजिकता को स्थान देने के कारण इस युग के उपन्यासों का वातावरण शिल्प प्रारंभकालीन निर्जीवता से सजीव बन गया ।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में उद्देश्य शिल्प बहुत विशद रूप में प्रस्फुटित हुआ है । उद्देश्य शिल्प को इस के पहले या बाद में इतनी मान्यता नहीं मिली है । इसी शिल्प के आधार पर इस युग के उपन्यासों के कलेवर में आमूल परिवर्तन हुआ । उपन्यासकारों ने मनोरंजन को छोड़कर गंभीर सामाजिक विषयों की ओर अपना लक्ष्य निर्धारित किया । उपन्यास के उद्देश्य-शिल्प के बारे में स्वयं प्रेमचंदजी का कथन है, "साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है, यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है । साहित्यकार का पद इस से कहीं ऊंचा है । वह हमारा पद-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है - हम में सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है - कम से कम उस का यही उद्देश्य होना चाहिए ।"[1] जाहिर है कि इस युग के उपन्यासकारों का उद्देश्य रचना के ज़रिए किसी न किसी महान आदर्श को खडा करना था । "गोदान" तक आते आते हिन्दी उपन्यास का शिल्प विधान विकास की चरम स्थिति पर आ पहुंचा है ।

"गोदान" एक भारतीय किसान की जीवन-गाथा है । प्रेमचंद ने अपने अन्य उपन्यासों की भांति इसमें किसी संस्था या आश्रय की स्थापना नहीं की है । अपने सुधारवादी दृष्टिकोण का बदलाव भी इस में देख सकते हैं । मानव-चरित्र के स्वाभाविक व्यवहार को मनोविज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया है ।

---

1. प्रेमचंद - कुछ विचार - पृ.52

चरित्र चित्रण शिल्प में भी प्रेमचंद ने "गोदान" में प्रत्यक्ष प्रणाली को छोड़कर मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली को अपनाया है । उपन्यास के आरंभ में ज़मींदार से मिलने निकले होरी की मानसिक स्थितियों से कोई भी पाठक अभिभूत हो उठेगा । यहाँ उपन्यासकार की उपस्थिति ना के बराबर है । "दोनों ओर खेतों में काम करनेवाले किसान उसे देखकर राम-राम कहते और सम्मान भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे । ..... मालिकों से मिलते-जुलते रहने का ही तो यह प्रसाद है कि सब उस का आदर करते हैं । नहीं तो कौन पूछता है ।"[1] होरी में अहं का आत्मप्रदर्शन तथा आत्म-गोपन दोनों ही वृत्तियाँ विद्यमान हैं । गाय को द्वार पर बाँध करके वह यह दिखाना चाहता है कि यह होरी का घर है । यह उसका आत्मप्रदर्शन है । दातादीन के पूछने पर वह गाय को नकद रूपया देने की झूठी बात करता है, यह उसका आत्मगोपन है । होरी में हीनताग्रंथी तथा आत्म-पीडन की प्रवृत्ति भी क्रियाशील है । "गोदान" के अंत में मालती और मेहता की शादी कराने की अपेक्षा उन्हें मित्रता के दायरे में बाँधकर प्रेमचंद ने अपनी आत्मपीडन तथा पाठकों की परपीडनवाली प्रवृत्तियों को तुष्ट किया है ।

प्रेमचंदोत्तर युग की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का पूर्वाभास प्रेमचंद की इस कृति में मिलता है । लेकिन इस का मतलब यह नहीं कि प्रेमचन्दोत्तर मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने प्रेमचंद से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की है । क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की फ्रॉयडीयन विचारधारा से प्रेमचंद बिलकुल अपरिचित थे । अपने विशाल अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, विराट प्रतिभा, मानव मन की थाह लेनेवाली अन्तरदृष्टि आदि के कारण ही प्रेमचंद

---

1. प्रेमचंद - गोदान - पृ.6

व्यक्ति के इतने अधिक निकट आ सके हैं । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का लक्ष्य व्यक्ति नहीं उस का अन्तर्मन है । पर व्यक्ति के अन्तर्मन में पैठने का प्रयास प्रेमचंद ने अधिक नहीं किया ।

"गोदान" में प्रेमचंद ने चरित्र चित्रण के लिए अन्तर्द्वन्द्व, अन्तप्रेरणा आदि का सहारा तो लिया है, पर बिलकुल सामाजिक पृष्ठभूमि में । इस उपन्यास में चरित्र चित्रण की अपेक्षा चरित्र विश्लेषण को स्थान दिया गया है । इस में प्रेमचंद ने कार्यकलाप के चित्रण की अपेक्षा कर्म-प्रेरणाओं तथा चित्त-वृत्तियों के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया ।

शैली पक्ष में भी नवीनता दृष्टिगोचर है । प्रेमचंद ने इस में वर्णनात्मक शैली को छोड़कर विश्लेषणात्मक शैली में कथानक को प्रस्तुत किया है । मोटे तौर पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के शिल्प पक्ष की कुछ विशेषताएं "गोदान" के शिल्प में देखी जा सकती हैं । लेकिन "गोदान" को मनोवैज्ञानिक उपन्यास या "गोदान" में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि की तलाश करना युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि प्रेमचंद का मनोविज्ञान व्यावहारिक मनोविज्ञान तक सीमित है । हिन्दी में सचमुच मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शुरूआत अंग्रेज़ी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के संपर्क से ही हुई थी । उसमें व्यक्ति के परिष्कार पर ज़ोर दिया था । लेकिन प्रेमचंद ने समाज के सुधार द्वारा व्यक्ति को सुधारने की कोशिश की ।

प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव के कारण उपन्यास-शिल्प में परिवर्तन हुआ । इस युग के उपन्यासों पर मार्क्स, फ्रायड आदि के सिद्धान्तों का पूर्ण प्रभाव पडा है । सामाजिक, ऐति-

हास्यिक, यथार्थवादी, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक आंचलिक आदि अनेक प्रकार के उपन्यास इस समय में लिखे गए थे ।

प्रेमचंदयुगीन सामाजिक उपन्यासों की धारा प्रेमचन्दोत्तर युग में भी ज़ारी रही । इस के बीच मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की एक अलग धारा चल पड़ी ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रवेश

मनोवैज्ञानिक उपन्यास से तात्पर्य उन उपन्यासों से है जो मूलत: मनोविश्लेषण पर आधारित है । मानव मन की विचित्र संकुलता को प्रकाश में लाने का श्रेय मनोविश्लेषण पद्धति के जनक सिगमंड फ्रायड को है । फ्रायड के साथ एडलर, युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का प्रभाव इन उपन्यासों की विशेषता है ।

डॉ॰ देवराज उपाध्याय ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा, "पात्रों के भावों के उत्थान और पतन को तथा उन की मानसिक प्रक्रिया को विस्तृत रूप से पाठकों के सामने रखना, यही उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता कहलाती है ।"[1] मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति को समाज के आधिपत्य से मुक्ति दिलाकर उस की मूल चेतना को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाता है । अर्थात् मनोवैज्ञानिक उपन्यास में भी समाज रहता है किंतु रंगभूमि यहाँ समाज नहीं मनुष्य का मन है ।

---

1. डॉ॰ देवराज उपाध्याय - आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान - पृ॰14

इन उपन्यासों में दमित वासनाओं को उभार कर, मनो-ग्रंथियों को खोलने का प्रयास किया जाता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यास मानव-आचरण और उस के प्रेरक मन के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार का ध्यान मुख्य रूप से इस बात पर रहता है कि मनुष्य जो कुछ करता है, वह क्यों और कैसे करता है । प्रसिद्ध आलोचक सिसिर चाटर्जी के अनुसार "अंग्रेज़ी साहित्य में मनोवैज्ञानिक याने चेतना प्रवाह उपन्यास का आविर्भाव 1913-15 के बीच में हैं ।"[1]

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आविर्भाव यथार्थवादी उपन्यासों के बाद में हुआ । इस के बारे में डॉ॰ देवराज उपाध्याय कहता है, "मनोवैज्ञानिकता की प्रवृत्ति यथार्थवाद के प्रति अनुराग या भक्ति का ही एक रूप है - यह भक्ति अन्तर्मुखी भले ही हो ।"[2] कुछ भी हो पर वास्तविकता यह है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रवेश पाश्चात्य प्रभाव से ही हुआ था । हेनरी जेम्स, जेम्सज्वायस, वर्जीनिया वूल्फ, डी॰एच॰ लोरेन्स आदि के उपन्यासों की प्रेरणा का नज़र अन्दाज़ करना नामुमकिन है ।

जैनेन्द्र कुमार के "परख" नामक उपन्यास से हिन्दी उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की शुरूआत होती है । जैनेन्द्र को हिन्दी के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मानते हुए डॉ॰ श्रीमती ओमशुक्ल कहती है, "हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की नई परंपरा का सूत्रपात करने का श्रेय जैनेन्द्रकुमार को दिया जाएगा ।

---

1. 'Between 1913 and 1915 was born the modern psychology cal novel - what we have come to call the stream of consciousness novel'.
Sisir Chatterjee - Problems in Modern English Fiction p.9-10

2. डॉ॰देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान - पृ॰333

उन्होंने मानव के अन्तर्जगत को आधार बनाकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन किया और उपन्यास रचना में मौलिकता का परिचय दिया ।[1]" हिन्दी उपन्यास के इतिहास में एक नितांत सीमित परिवेश में गहनतम चरित्रांकन जैनेन्द्र के उपन्यासों से ही प्रारंभ होता है । उनके उपन्यासों में गांधी-दर्शन, फ्रायडवाद, यथार्थवाद आदि विभिन्न विचार धाराएं देख सकते हैं । "कल्याणी", "व्यतीत", "सुनीता" जैसे उपन्यासों में व्यावहारिक रूप में मनोविज्ञान का प्रयोग किया गया है ।

इस औपन्यासिक धारा का विकास तीव्र गति से हुआ । इस धारा में इलाचन्द्रजोशी, अज्ञेय और डा॰ देवराज भी आ गए हैं । इस धारा का दूसरा प्रमुख उपन्यासकार है इलाचन्द्रजोशी । इन के उपन्यासों में मनोविज्ञान का प्रयोग सैद्धान्तिक स्तर पर ही हुआ है । इसलिए ओम प्रभाकर कहते हैं, "विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक परंपरा में इलाचन्द्रजोशी जैनेन्द्र की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक है ।[2]" जोशी अपने उपन्यासों में मनोविज्ञान को आग्रहपूर्वक स्थान देते हैं । मनोविज्ञान के प्रयोग के संबंध में उसकी दृष्टि निश्चित रूप से वस्तुन्मुखी है । एडलर के सिद्धान्तों का प्रयोग उस के उपन्यासों में काफी मिलते हैं । फ्रायड के सिद्धान्तों का प्रयोग करने पर भी जोशी अपने को फ्रायडवादी नहीं मानते । उनका कथन है, "मैं फ्रायड का समर्थक नहीं हूं - उस का लक्ष्य ध्वंस की ओर अधिक है, निर्माण कीओर नहीं । फ्रायडवादी होना एक बात है और फ्रायड के शास्त्र से लाभ उठाना बिलकुल दूसरी बात ।[3]"

---

1. डा॰ श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰56
2. ओम प्रभाकर - अज्ञेय का कथा-साहित्य - पृ॰28
3. इलाचन्द्र जोशी - साहित्य चिंतन - पृ॰58

उन के उपन्यासों पर डा॰ श्रीमती ओमशुक्ल की टिप्पणी है "बाह्य जीवन की समस्याओं की अपेक्षा मानव जीवन का संचालन करनेवाली विविध प्रवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण में वे व्यस्त रहे हैं और व्यक्ति की आंतरिक कुंठाओं और विचारों को यथावत् चित्रित करना ही उन के कथा-शिल्प का लक्ष्य है।"[1] जोशी के उपन्यासों के अधिकांश पात्र दुर्बल चरित्रवाले तथा दमित वासना के शिकार हैं। "सन्यासी", "पर्दे की रानी", "प्रेत और छाया", "जहाज़ का पंछी" जैसे उपन्यास शिल्पविधि की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारों में अज्ञेयजी का स्थान महत्वपूर्ण है। इन के उपन्यास संख्या में कम हैं। किंतु शिल्पविधि की दृष्टि से बिलकुल महत्वपूर्ण है। अज्ञेय के उपन्यासों के कथानकों में विचित्र प्रकार की मानसिक उलझनें पाई जाती हैं। अज्ञेय के उपन्यासों में जैनेन्द्र और जोशी दोनों की कला का समन्वित एवं श्रेष्ठ रूप विद्यमान है। जैनेन्द्र के रोमांटिक धरातल पर केन्द्रित मनोविश्लेषण तथा जोशी के सैद्धान्तिक मनोविश्लेषण, दोनों का मिश्रित रूप अज्ञेय के उपन्यासों में उपलब्ध है। फ्रायड और एडलर के मनोविश्लेषण संबंधी सिद्धान्तों एवं उसके निष्कर्षों का सफल प्रतिपादन भी उन के उपन्यासों में प्राप्त है। इस के संबंध में डा॰ नगेन्द्र का कथन है, "अज्ञेय जैसे एक आध कलाकार द्वारा फ्रायड कुछ व्यवस्थित ढंग से हिन्दी में आए ....।"[2] अंग्रेज़ी उपन्यासकार जेम्स जोयस और वर्जीनिया वुल्फ के समान अज्ञेय के उपन्यासों में भी कभी कभी बौद्धिक जटिलता और अस्पष्टता दृष्टव्य है। इस का कारण मनोवैज्ञानिक

---

1. डा॰ श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰261
2. डा॰ नगेन्द्र - विचार और विश्लेषण (प्रथम संस्करण) - पृ॰63

दृष्टिकोण की बहुलता है । आधुनिक उपन्यास की कसौटी के तौर पर अज्ञेय वस्तु, शैली-विधान. तथा कथा आदि के साथ साथ दृष्टिकोण के नएपन पर ज़ोर देकर कहते हैं, "यद्यपि वस्तु, शैली-विधान, कथा आदि का नयापन इस में हो सकता है और होता भी है, तथापि उस की कसौटी वह नहीं है, कसौटी उस का नया दृष्टिकोण ही है ।"[1]

अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक प्रौढता का सहज दर्शन होता है । अहं, सेक्स, भय आदि मानव प्रेरणाओं का चित्रण अज्ञेय ने अपने उपन्यासों द्वारा प्रकट किया है । उनका पहला उपन्यास "शेखर : एक जीवनी" में शेखर के अहं का चित्रण है । दूसरा उपन्यास "नदीके द्वीप" में यौन-भाव का खुला वर्णन है तो तीसरा उपन्यास "अपने अपने अजनबी" में मृत्युभय का । लेकिन उनके उपन्यासों का मूल स्वर व्यक्ति स्वातंत्र्य है । उनके पात्रों में समाज से एक दूरी निरंतर बनी रहती है । अज्ञेय का उपन्यास स्त्री-पुरुष के एक नये रिश्ते की पहचान है । उन के उपन्यासों में स्त्री पात्र पुरुष पात्रों की अपेक्षा काफी सशक्त और सक्षम दिखाई देते हैं । शेखर के सामने शशि, भुवन के सामने रेखा आदि अधिक साहसी और आस्थावान हैं । अज्ञेय के उपन्यासों के बारे में श्री· ओमप्रभाकर का कथन है "वस्तुत: आधुनिक हिन्दी उपन्यास-जगत में अज्ञेय ही एकमात्र उपन्यासकार हैं जिन्हें सही अर्थों में मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखक कहा जा सकता है ।"[2]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की श्रेणी में डा·देवराज को भी स्थान है । लेकिन उस का स्थान अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की अपेक्षा कम है । डा· देवराज के "पथ की खोज", "बाहर-भीतर", "अजय की डायरी" आदि उपन्यासों में पात्रों का

1· अज्ञेय - हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य - पृ·79-80

2· ओम प्रभाकर - अज्ञेय का कथा साहित्य - पृ·46

अन्तर्द्वन्द्व आदि का चित्रण है । लेकिन डा॰देवराज सिर्फ॰व्यक्ति मानस की ओर नहीं सामाजिक समस्याओं के प्रति भी जागरूक कलाकार है । उनके सभी उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के सांस्कृतिक पिछडेपन के फलस्वरूप उत्पन्न तनाव को अंकित करते हैं । आधुनिक मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष को उनके उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यास के क्षेत्र में उन का स्थान नगण्य नहीं है । उन की देन महत्वपूर्ण ही है । पर अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए इस शोध प्रबन्ध में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय के उपन्यासों को ही स्थान दिया गया है । उन के रचना शिल्प की विशेषताओं पर आगे अध्ययन किया गया है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सामान्य विशेषताएं

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की ओर सामान्य रूप से नज़र डालें तो कुछ खूबियां सामने आती हैं । ये विशेषताएं निम्न लिखित है ।

विषय का सीमा निर्धारण

उपन्यास में मनोविज्ञान के समावेश का प्रथम परिणाम उपन्यास के विषय की सीमा है । इस के पात्रों की संख्या का कम होना और उपन्यासकार द्वारा पात्रों की कुछ विशिष्ट मनोवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना आदि उपन्यास के विषय के सीमित होने का परिणाम है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का विषय वैयक्तिक जीवन के विविध पहलुओं और सामाजिक समस्याओं के विवेचन से अछूता रहता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार व्यक्ति के अन्तर्मन में सीमित रहते हैं ।

गहराई

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र के व्यक्तित्व पर ही ध्यान केन्द्रित करने के कारण उस का अगाध अध्ययन संभव हो जाता है । इस से भी आगे बढ़कर व्यक्तित्व के एक अंश-मात्र का अथवा किसी मनोभाव मात्र का विश्लेषण किया जाता है । वहाँ इस की गहराई और बढ जाती है । व्यक्ति के अन्तर्मन की गहराई में पैनी दृष्टि डालना ये उपन्यासकार अपना कर्तव्य मानते हैं । वे स्वयं मनोविश्लेषक या मनोवैज्ञानिक होकर अपने पात्रों के मानसिक असंतुलनों की जाँच करते हैं ।

वैयक्तिकता

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार समाज को छोड़कर व्यक्ति में सिकुड जाते हैं । व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार का प्रिय विषय है । मनोवैज्ञानिक उपन्यास अत्यधिक वैयक्तिक होने के कारण अधिकांश पात्र असाधारण होते हैं । समाज में द्वन्द्व अथवा विक्षिप्तता उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तियों का भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास में व्यक्तिगत स्तर पर ही अध्ययन किया जाता है ।

सीमित और अंतर्मुखी पात्र

इस तरह के उपन्यासों में तीन या चार पात्रों से उपन्यास कार काम चलाते हैं । पात्र अधिक है तो, उस का मनोविश्लेषण करना बहुत मुश्किल हो जाता है । इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र संख्या सीमित रहती हैं । इस उपन्यास के अधिकांश पात्र अंतर्मुखी होते हैं । उन का अस्तित्व ही आंतरिक होता है ।

अन्तर्विवादों का उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में संवाद की भूमिका कम है । इस में पात्रों का अन्तर्विवाद ही महत्वपूर्ण है । मनोवैज्ञानिक उपन्यास पात्र और परिस्थिति के संघर्ष का उपन्यास नहीं है और न ही नायक और प्रतिनायक के संघर्ष का । यह उपन्यास नायक के चेतना-प्रवाह का तथा उस के अन्तर्विवादों का उपन्यास है । इस का कारण यह है कि कोरे भाकुकतापूर्ण अनुमानों की अपेक्षा मनोविश्लेषण की विविध प्रणालियों द्वारा उपन्यासकार पात्रों के अचेतन में पड़ी मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों के कारणों को उघाडने लगता है ।

नये मूल्यों की स्थापना

अन्य उपन्यासकार सामाजिक जीवन की विडंबनाओं के कारणों को समाज में ही ढूंढते हैं । पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार प्रत्येक सामाजिक विडंबना के मूल में कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं का दर्शन करते हैं । उनके अनुसार व्यक्ति की भिन्न-भिन्न अनुभूतियों विकारों, भावनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर ही जीवन का अध्ययन पूर्ण होगा । इस तरह व्यक्ति और समाज की नयी व्याख्या और नये मूल्यों की स्थापना मनोवैज्ञानिक उपन्यास की मौलिक प्रवृत्ति है ।

पलायनवाद

पलायन की प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्राय: दिखाई देती है । ये उपन्यासकार विस्तृत सामाजिक वातावरण को को छोड़कर किसी व्यक्ति की मनोभूमि को अपने कार्य-क्षेत्र के रूप में

स्वीकार कर लेते है । इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यास में जीवन की विशालता का प्रदर्शन संभव नहीं हो पाता । इन उपन्यासों पर लगाये जानेवाले सब से बडे आरोप विषय की सीमा तथा घोर वैयक्तिकता से उद्भूत पलायन वृत्ति है । ये उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं से पलायन कर के अपने एक अलग संसार में रम जाते हैं । इस प्रकार उपन्यास के भावपक्ष में मनोविज्ञान के प्रवेश के कारण जो नई प्रवृत्तियां उत्पन्न हुई हैं, उन्हीं के अनुरूप शिल्प विधान की नयी प्रणालियों का भी विकास होने लगा है । इसलिए उपन्यास के शिल्प पक्ष के प्रत्येक भाग में नयापन आ गया है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताएं

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव की अन्तर्जगत का चित्रण करने के कारण शिल्प-विधि की मूल प्रवृत्ति में विस्मयकारी परिवर्तन हुआ है । उपन्यास की विषय-सामग्री की नवीनता के कारण नई रचना विधियों का प्रयोग अनिवार्य बन गया ।

शिल्प पक्ष के अंतर्गत पहला स्थान कथानक को है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का कथानक सूक्ष्म, व्यंजना प्रधान तथा आंतरिक संसार को अभिव्यक्त करनेवाला होता है । ये उपन्यासकार एकदम स्वतंत्र होते हैं । वे कथा चाहे तो अंत से प्रारंभ कर सकते हैं या बीच से । क्योंकि उन के लिए घटनाएं तो उपलक्षण मात्र होती हैं । कथानक विश्रृंखलित होता है । मानव मन के चिंताओं और अन्तर्द्वन्द्वों से ही कथा पैदा होती है । ये चिंताएं क्रमबद्ध न होने के कारण उस का कथानक भी विश्रृंखलित होता है । कथा के केन्द्र में वैयक्तिक अंतरचेतना में वर्तमान कोई ग्रंथि होती है, जिस का संबंध

अधिकतर हीनता या कामग्रंथि से होता है । ये व्यक्ति के अचेतन को पकड़ने का प्रयास करते हैं । इसलिए इन उपन्यासों में कथानक विस्तार की अपेक्षा संकुचन की ओर बढ़ता है । डा॰ अरविन्दाक्षनजी ने अज्ञेय के "शेखर : एक जीवनी" की विशिष्टताओं की दो दिशाओं के बारे में बताए हैं, "एक : अपने युग की औपन्यासिक मान्यताओं को उल्लंघित करने की क्षमता, दो : आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने की क्षमता ।"[1] वास्तव में ये प्राय: पूरे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की विशिष्टताएं हैं ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पात्र एवं चरित्र चित्रण शिल्प में भी नवीनता है । इन उपन्यासों में पात्रों की संख्या सीमित होती हैं । क्योंकि कई पात्रों के मानसिक संसार की अभिव्यक्ति और विश्लेषण जटिल है । साधारण एवं वर्गीय पात्रों के स्थान पर असाधारण एवं रहस्यमय व्यक्ति-पात्रों का चयन किया जाता है । ये मनुष्य की दमित वासनाओं, कामेच्छाओं स्वप्नों, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों आदि का निरूपण करते हैं । पात्रों को मानसिक रोगी के रूप में चित्रित कर के उपन्यासकार मनोविश्लेषकों की भाँति मनो-वैज्ञानिक समस्याओं की व्याख्या करते हैं । इन के पात्रों के सुलझे हुए सामाजिक स्वरूपों एवं उलझे हुए वैयक्तिक स्वरूपों का विरोध स्पष्ट है । उलझे हुए व्यक्ति मानस को उपन्यासकार बिंबों के माध्यम से व्यक्त करते हैं । अत: इन उपन्यासों में प्रेरणास्त्रोतों के आधार पर पात्रों का वर्गीकरण असाधारण पात्र या अबनार्मल पात्र कुंठित पात्र, वासना परिचालित पात्र, अहंग्रस्त पात्र, पलायनवादी पात्र, हीनताग्रस्त पात्र जैसे किया जा सकता है । चरित्र चित्रण के लिए इन उपन्यासों में विविध प्रणालियों का प्रयोग करते हैं । उपन्यासकार स्मृत्यावलोकन, चेतनाप्रवाह, पूर्वदीप्ति, अन्तर्दिवाद, सम्मोहन आदि के द्वारा पात्र के अचेतन संसार को अनावृत करते हैं ।

---

1. डा॰ए॰ अरविन्दाक्षन - अज्ञेय की उपन्यास यात्रा - पृ॰14

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथोपकथन शिल्प को महत्वपूर्ण स्थान नहीं है । फिर भी कभी कभी आंतरिक संवाद, लिखित संवाद जैसे नवीन प्रयोग मिलते हैं । देशकाल और वातावरण चित्रण भी इन उपन्यासों में गौण हैं । क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार बाह्य जगत को छोड़कर पात्र की आंतरिक दुनिया में प्रवेश करते हैं । वे आंतरिक हलचल या परिवर्तन के पीछे जाते तो बाह्य वातावरण भूल जाते हैं । फिर भी कुछ उपन्यासों में काव्यमय प्रकृतिवर्णन मिलता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामाजिक वातावरण को स्थान ढूंढना अनुचित है ।

इस प्रकार के उपन्यासों के शिल्प में भाषा-शैली को प्रमुख स्थान है । संक्षेप में मनोवैज्ञानिक उपन्यास के युग में जितने उपन्यासकार हुए हैं, उनकी उतनी ही भाषाएं - शैलियां भी हुई हैं । लेकिन कुछ सामान्य विशेषताएं भी देखने को मिलती है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा में अधूरे वाक्य, संदर्भहीन वाक्य, केवल शब्द या संकेत भरे वाक्य, लघु लघु वाक्य, अल्पविराम, अंतराल चिह्न आदि के प्रयोगों की विशेषताएं पाई जाती हैं । इन के पात्र शिक्षित होने के कारण अंग्रेज़ी का प्रयोग ज़्यादा हुआ है । इस में उर्दू, पंजाबी आदि का प्रभाव भी है । विश्लेषणात्मक शैली के साथ साथ पत्रात्मक शैली, डायरी शैली, चेतना-प्रवाह शैली, फ्लाशबैक शैली, संवाद शैली, संकेत शैली जैसी नवीन शैलियों के प्रयोग भी पाये जाते हैं । इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने अपनी कथ्यगत विशेषताओं के साथ ही साथ शिल्पगत विशेषताओं को लेकर हिन्दी उपन्यास साहित्य जगत में अपना अलग स्थान बना लिया है ।

ssssss

दूसरा अध्याय

कथा-शिल्प - स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर

दूसरा अध्याय

कथा-शिल्प - स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर

उपन्यास के संरचना पक्ष में कथा-शिल्प याने कथा-वस्तु का स्थान सब से प्रमुख है । कथावस्तु पर ही उपन्यास खडा होता है । कथावस्तु वास्तव में घटनाओं का क्रम है । उपन्यास के अन्य शिल्प तत्वों का आधार भी कथा-शिल्प है । उपन्यास की सफलता के लिए कथानक को संबद्धता, मौलिकता, सत्यता, रोचकता जैसे गुणों का होना अनिवार्य है । लेकिन कथावस्तु की संबद्धता से आधुनिक उपन्यासकार सहमत नहीं है । उन के अनुसार मानवजीवन जिस अनिश्चित एवं अनियोजित गति से प्रवहमान है उसी तरह कथा को अपनी सहज गति के साथ बहते जाने दें तो उसमें अधिक स्वाभाविकता एवं सहजता आजाएगी । लेकिन कथा-वस्तु में इस तरह की स्वतंत्रता आ जायें तो उस के विश्रृंखलित होने की संभावना भी है ।

मौलिकता कथानक का मुख्य गुण है । उस का विकास, घटनाओं के संयोजन पर अथवा निर्माण कौशल पर निर्भर रहता है । वह यथार्थ जीवन के अधिक निकट की साहित्यिक विधा है । इसलिए उपन्यास की सफलता कथावस्तु की सत्यता पर निर्भर रहती है ।

आधुनिक उपन्यासों में कथा-वस्तु की सत्यता प्रमाणित करने केलिए उपन्यासकार नये नये तकनीकों को अपनाते हैं । पाठकों के हृदय को छू लेने के लिए कथानक की सत्यता प्रामाणित करना अनिवार्य है । प्रारंभ से अंत तक रोचकता बनाए रखना समर्थ उपन्यासकार से ही संभव है । उपन्यास को रोचक बनाने के लिए उपन्यासकार कथावस्तु पात्र आदि का विविध प्रयोग करते हैं । गोया कि संबद्ध हो या शिथिल उपन्यास में एक कथावस्तु का होना ज़रूरी है । उपन्यास की नींव कथा-शिल्प ही है ।

संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी भाषाओं में अनेक कथाएं मिलती हैं । ऋग्वेद में जो कथाएं मिलती है वे कथाएं न होकर उस के बीज हैं । इन में जो मंत्र, सूत्र या कथोपकथन मिलते हैं तथा विधिवत, प्रसंगों से संबंध रखनेवाले जो कथासूत्र विद्यमान हैं उन्हीं के आधार पर क्रमश: पूर्ण कथाओं की रचना की जाने लगी । इसी तरह उपनिषदों और पुराणों से कथा का विकास होता रहा । कथावस्तु का अगला स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश आदि प्राचीन भारतीय लोक-साहित्य है । 19वीं शताब्दि के प्रारंभिक पच्चीस वर्षों में जो कथा साहित्य मिलता है, उसमें इंशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी, लल्लूलाल की शकुंतला, प्रेमसागर आदि प्रमुख है । लेकिन उस समय उपन्यास कल्पना-जाल में फंसे रहने के कारण उसके कथा शिल्प की ओर उपन्यासकार का ध्यान नहीं गया था । उनका उद्देश्य सिर्फ पाठकों को मनोरंजन प्रदान करना था ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य की प्रारंभिक स्थिति में उपन्यास के लगभग सभी तत्व अविकसित एवं अनपढ़ अवस्था में दिखाई देते हैं । प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यास-साहित्य का कथा-शिल्प अप्रौढ़ एवं

सीधा-सादा है । उपन्यासकार कथा का गठन अपने पूर्व निश्चित लक्ष्य की पूर्ति के अनुसार करता था । अत: कहानी में जीवन की गंभीर समस्याएं नहीं आती थीं । उस समय कथा सुनाना ही उपन्यासकार का लक्ष्य था । प्रारंभकालीन तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों में जीवन की तात्कालिक समस्याओं की अपेक्षा काल्पनिक समस्याओं को कथानक का आधार बनाने की प्रवृत्ति थी । इस युग के उपन्यासों के कथा-शिल्प अद्भुत, काल्पनिक और कुतूहल जनक घटनाओं पर आधारित थे । देवकीनंदन खत्रीजी के चन्द्रकांता और चन्द्रकांता संतति इस के लिए पर्याप्त उदाहरण हैं । "परीक्षागुरु" जैसे नीति-शिक्षाप्रद उपन्यासों में सदाचार की शिक्षा पर आग्रह करते हुए समाज की किसी-न-किसी समस्या को अवश्य छुआ गया है । "परीक्षागुरु" में दिल्ली के काल्पनिक राईस के जीवन की कहानी कही गयी है । मानवाचरण के गुण-दोषों का ठीक-ठीक विवेचन करने के लिए संस्कृत, अंग्रेज़ी और फारसी ग्रंथों के उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं । बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" में पाठकों को सदाचार की शिक्षा देने के लिए सेठ हीराचन्द्र के पुत्रों के स्वैराचार तथा अंत में चंदू के उपदेशों द्वारा उन्हें सुजान बनाने की घटना को कथा का आधार बनाया गया है । लज्जाराम शर्मा के "आदर्शदंपति" नामक शिक्षाप्रद उपन्यासों में जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर उपदेश देने का प्रयत्न किया गया है । यहाँ कथा के प्रारंभ में ही उपन्यासकार अपनी कथा के आधार और उस के लक्ष्य का संकेत देकर कथा-शिल्प की अनगढ़ता का परिचय देता है ।

कथा-शिल्प के अन्तर्गत कथा के प्रारंभ के उपरान्त उस का विकास आता है । प्रारंभकालीन उपन्यासों में जगह जगह पर कथा विकास के लिए घटनाओं का उल्लेख किया गया है । शिक्षाप्रद उपन्यासों के कथानक और उन का विकास भी सरल है । इन में कथा के

विकास के लिए संस्कृत के नैतिक और धार्मिक ग्रंथों के उद्धरणों का सहारा लिया गया है । "परीक्षागुरू" में प्रत्येक प्रकरण का नामकरण शिक्षाप्रद शीर्षकों द्वारा कर के, कथा के साथ साथ सुभाषित और फुटनोट में अंग्रेज़ी के उद्धरणों के अनुवाद देने की विधि स्वीकार की गयी है । इसलिए कथा का बहुत ही सरलतापूर्ण विकास किया गया है । यह सरलता ही कथा-शिल्प की अप्रौढता का परिचायक है । इस युग के तिलस्मी व जासूसी उपन्यासकारों ने कथा-विकास केलिए अनहोनी, आकस्मिक एवं रोमांचकारी घटनाओं का सहारा लिया है । कथा के बीच बीच में छलकपट, धोखा-फरेब, चालाकी तथा अपहरण जैसी हिंसात्मक घटनाओं के वर्णन द्वारा कथा का उत्तरोत्तर विकास करने का प्रयास किया गया है । इन उपन्यासों में उपन्यासकार स्वयं रहस्य-सृजन करता है और बाद में उस का स्पष्टीकरण भी । इस तरह रहस्य-सृजन और स्पष्टीकरण के क्रम में कथा का विकास होता है । लेकिन ये कथाएं मानव जीवन से बहुत दूर है । इन्होंने कथा के शिल्प पक्ष की ओर विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न भी नहीं किया है ।

शिक्षाप्रद, तिलस्मी व जासूसी उपन्यासों में कथा का उपसंहार पूर्वनिर्धारित रहता है । कथा निर्धारित लक्ष्य की ओर रेंगने के कारण उस का उपसंहार नाटकीय न होकर पूर्व-परिचित होता है । "परीक्षागुरू" के अंत में लाला मदनमोहन, परीक्षा को अपना गुरू मानते हैं और उन के सुधरे हुए आचरण की घटना से उपन्यास का उपसंहार होता है "जो सच्चा सुख मिलने की मृगतृष्णा से मदनमोहन को अब तक स्वप्न में भी नहीं मिला था वही सच्चा सुख इस समय ब्रजकिशोर की बुद्धिमानी से परीक्षागुरू के कारण प्रामाणिक भाव से रहने में मदनमोहन को घर बैठे मिल गया ।"[1]

---

1. श्रीनिवासदास - परीक्षागुरू - पृ.310

इस युग के उपन्यासकार कथा को वांछित दिशा की ओर मोड़कर कथा को पूर्वनिर्धारित उपसंहार की ओर ले जाते थे । इसलिए उपन्यास रोचक नहीं होते थे । तिलस्मी व जासूसी उपन्यासकार पाठकों को रहस्यात्मक कथानक में उलझाकर रखते थे और अंतत: रहस्य को सुलझाकर कथानक समाप्त होता था । पूर्व प्रेमचंदयुग के उपन्यासों का कथानक एक डायमेन्शनल (एकायामी) है । क्योंकि इसमें सिर्फ घटनाओं को ही स्थान है । सूक्ष्मता से देखे तो पूर्वप्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में कथा-शिल्प का कच्चा रूप ही मिलता है ।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों का कथानक काल्पनिक दुनिया छोड कर वास्तविकता के धरातल पर आ गया । प्रेमचंद की कथा का आधार मानव जीवन की समस्याएं है । इसलिए इन के कथानक समस्यामूलक हैं । इन में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याएं हैं । लेकिन पारिवारिक संबंधों को भी रचना का आधार बनाया है । "प्रेमचंद के सभी उपन्यासों के कथानक समस्यामूलक होने के साथ साथ किसी-न-किसी परिवार की कहानी भी कहते हैं ।"[1] इसलिए उनके कथानक अधिक विश्वसनीय बन गये । प्रेमचंद के "प्रतिज्ञा", "सेवासदन", "निर्मला" जैसे उपन्यासों की कथावस्तु सामाजिक है । "प्रतिज्ञा" में पूर्णा की असहाय एवं दयनीय अवस्था को आधार बनाकर विधवा समस्या का चित्रण किया गया है । साथ ही अमृतराय तथा लाला बदरीप्रसाद के परिवारों की कथा भी है । "सेवासदन" में दहेजप्रथा तथा वेश्यावृत्ति मुख्य विषय है । दहेजप्रथा के कारण सुमन का जीवन बिखर जाता है । "निर्मला" में दहेजप्रथा और अनमोल विवाह की समस्या को कथा का आधार बनाया है । "प्रेमाश्रम", "रंगभूमि" आदि में कथा का आधार आर्थिक समस्याएं है तो "कर्मभूमि", "कायाकल्प" आदि में राजनीतिक समस्याओं का चित्रण है ।

---

1. डा.श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ.82

पर उसी समय प्रसाद ने अपनी रचनाओं में रूढिग्रस्त सामाजिक जीवन को कथा का आधार बनाया है । उस का दृष्टिकोण अधिक यथार्थ वादी था । "कंकाल" में उन्होंने धर्म के पीछे छिपे मिथ्याचार और कुलीनता के पीछे छिपे पापाचार का उद्घाटन करते हुए समाज के धार्मिक बंधनों एवं ह्रासोन्मुख परंपराओं को कथा का आधार बनाया है । वृन्दावनलालवर्मा जैसे ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास को कथानक का आधार बनाया । यशपाल जैसे मार्क्सवादी उपन्यासकार ने प्राय: राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं को कथा वस्तु के रूप में चुन लिया है ।

प्रेमचंद के कथा-शिल्प की विशेषता यह है कि वे उपन्यास का प्रारंभ समस्या को लेकर करते हैं । "सेवासदन" का प्रारंभ समस्या को लेकर करते हैं । "सेवासदन" का प्रारंभ मुख्य समस्या दहेज-प्रथा से हैं । "गबन" का प्रारंभ आभूषण प्रियता से हुआ है तो "गोदान" का होरी के गोपालन की इच्छा के संकेत से । प्रेमचंद कथा के प्रारंभ में समस्या के उद्घाटन के साथ साथ एक से अधिक परिवार का परिचय भी देते हैं । "गोदान" में एकसाथ होरी तथा राय साहब अमरपालसिंह के परिवारों की कहानी को लेकर उपन्यास की कथा का प्रारंभ किया गया है । लेकिन प्रसाद ने कथा का प्रारंभ सामाजिक विषमता के चित्रण से किया है । यशपाल के उपन्यासों में कथा का प्रारंभ समस्या-चित्रण से है । वृन्दावनलालवर्मा कथा प्रारंभ करने के पहले ही कथा की पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण करते हैं । इसलिए उनके उपन्यासों की कथा का प्रारंभ वस्तुत: उपन्यास के परिचय द्वारा होता है ।

कथा-शिल्प में कथा का विकास प्रमुख मंजिल है । प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों ने कथा का विकास करते समय इसे सुगठित एवं स्वाभाविक बनाने का कार्य किया है । इस युग के उपन्यासों में एक घटना दूसरी घटना को जन्म देकर समूचे कथानक को शृंखलाबद्ध बना देती है । इन्होंने कथा-विकास के लिए संकेत, भविष्यवाणी, समस्या का उत्तरोत्तर उद्घाटन आदि विविध विधियां अपनाई हैं । "गोदान" में हीरा के षड्यंत्र के उल्लेख द्वारा होरी की विपत्ति का संकेत दिया गया है । होरी का भाई हीरा मन ही मनईर्ष्या करता है । गाय की हत्या की षड्यंत्र रचना का वर्णन उन्होंने हीरा के शब्दों में इस प्रकार दिया है "बेईमानी का धन जैसा आता है, वैसे ही जाता है । भाइदान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में नहीं रहेगी ।"[1] इस प्रकार गाय की हत्या की भावि घटना का संकेत हमें हीरा के षड्यंत्र द्वारा तुरंत मिल जाता है । लेकिन प्रसाद ने संकेत प्रणाली का प्रयोग कर के घटनाओं का संकेत देकर कथा विकास का मार्ग प्रशस्त किया । उन्होंने पात्र की प्रतिज्ञा, संकल्प, आशा, षड्यंत्र आदि का प्रयोग भावि घटनाओं के संकेत देने के लिए किया है । प्रेमचंदयुग के लगभग सभी उपन्यासकारों ने कथा-शिल्प में संकेत प्रणाली का प्रयोग किया है ।

कथा-शिल्प में कथा का उपसंहार भी महत्वपूर्ण है । प्रेमचंदयुग के उपन्यासकारों ने कथा के प्रसार को समेटने केलिए तथा कथा को निष्कर्ष तक पहूंचाने केलिए दो विधियों का प्रयोग किया है । पहले उन्होंने पात्रों की मृत्यु, हत्या, आत्महत्या आदि के द्वारा कथा के फैलाव को समेट लिया । दूसरी ओर कथाकारों की लक्ष्य की पूर्ती के लिए कथा में मनचाहा मोड कर के इसे सुखांत या दुखांत बना करते थे । "निर्मल" के अंत में निर्मला की मृत्यु, "गोदान" के अंत में होरी की मृत्यु आदि इस का उदाहरण है ।

---

1. प्रेमचन्द - गोदान - पृ.41

प्रेमचन्दयुग के उपन्यासकार कथा को उपन्यास की आत्मा मानते थे । उस को सजाने-संवारने केलिए ही वे उपन्यास के अन्य तत्वों की सहायता लेते थे । यह युग उपन्यास के शिल्पगत विकास का प्रारंभिक युग था । अत: कथा प्रस्तुतीकरण केलिए प्रसाद, यशपाल, जैसे उपन्यासकार प्रेमचंद से ऋणी रहे ।

शिल्प के क्षेत्र में प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों में पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा बहुत बडा परिवर्तन हुआ है । इस की प्रामाणिकता के लिए इस युग के दो भिन्न क्षेत्रीय अग्रणी उपन्यासकारों की परिभाषाएं पर्याप्त होंगी । यशपाल का कहना है "उपन्यास से मेरा अभिप्राय है समाज-धारा और विचार धारा में तारतम्य को प्रकट करना ।"[1] लेकिन अज्ञेय का विचार इस से एकदम भिन्न है "अपने उपन्यासों में मैं स्वयं हूँ और उन में विश्लेषण अपने ही व्यक्ति विकास का विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन है ।"[2] कहने का मतलब यह हुआ कि प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकारों को इन्हीं उपर्युक्त दोनों दृष्टियों, मार्क्सवाद तथा मनोविश्लेषणवाद ने विशेष रूप से प्रभावित किया है । पहली बहिर्मुखी दृष्टि है तो दूसरी अंतर्मुखी । भगवतीचरणवर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि पहली विचारधारा के उपन्यासकार हैं । मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय प्रमुख हैं ।

प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों का कथानक अधिक वैयक्तिक है । इस युग में कथानक पर अधिक बल न देकर चरित्र पर बल दिया गया है । मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में व्यक्ति के अन्तर्लोक के

---

1. "साहित्य संदेश" उपन्यास विशेषांक - 1956 जुलाई-अगस्त पृ. 14-15
2. डॉ. दशरथ ओझा - समीक्षाशास्त्र - पृ. 153

चित्रण का प्रयत्न तथा आत्माभिव्यक्ति ने शिल्प को सूक्ष्मता प्रदान की है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास और शिल्प

हिन्दी के सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक उपन्यासों में कथानक का लक्ष्य मानव जीवन के बहिर्जगत की स्थूल समस्याओं का उद्घाटन है । पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथा-शिल्प की दृष्टि एक नई दिशा को लेकर अग्रसर है । वे मानव की बहिर्जगत की अपेक्षा अन्तर्जगत को प्रमुखता देते हैं । मानव मन के सफल चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार को न केवल अधिक सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि अपनानी पड़ती है, वरन् उसे उपन्यास के शिल्प विधान को भी अधिक सूक्ष्म एवं प्रौढ़ बना देना चाहिए । हिन्दी उपन्यास के शिल्पविधान को नवीन प्रयोगों से संपुष्ट करनेवालों में जैनेन्द्रकुमार का स्थान महत्वपूर्ण है । वे हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवर्तक है । डा॰ विजयकुलश्रेष्ठ के शब्दों में "जैनेन्द्रने व्यक्ति को व्यक्ति से अधिक वैयक्तिक बनाकर ही अपने कथातंत्र में ग्रहण किया जिस की उपस्थिति समाज या परिवार और परिवेश में समाहित न होकर अपने अन्त:जगत में ही बनी रहती है ।"[1] मानव मन के अहं को तोडने या उस के दुष्परिणाम को चित्रित करने का प्रयत्न जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में किया है । उन के उपन्यासों की मूल-संवेदना शांतिमूलक करुणा है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में इलाचन्द्रजोशी का भी विशेष स्थान है । उन को मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार कहना अधिक समीचीन होगा । फ्रायड और युंग का प्रभाव उन के उपन्यासों में ज़्यादा है ।

---

1. मधुमती - 1992 नवंबर - पृ॰74

जोशी ने व्यक्ति के अचेतन मन के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उस के समाजघाती अहंभाव को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है । मानव मन की पशु-वृत्तियों का संस्कार करना उनका लक्ष्य रहा है । वे मानव के अन्तर्मन में छिपी पाशविकता को जनवाद की दिशा प्रदान कर विध्वंसात्मकता के स्थान पर इस का रचनात्मक उपयोग करना चाहते हैं । यही उन की रचनाओं का मूलस्वर है । उन की राय में विश्वशांति केलिए अन्तर्जीवन को बाह्यजीवन से अधिक स्थान देना आवश्यक है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की चर्चा अज्ञेय के बिना अधूरी रह जाएगी । फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार मानव जीवन का संचालन करनेवाली तीन मूलभूत प्रेरक शक्तियाँ हैं - अहं, भय और सेक्स । अज्ञेय ने इन त्रिविध प्रवृत्तियों की महत्ता को स्वीकार किया है और प्रतिकूल सामाजिक स्थितियों और वर्जनाओं के प्रति विद्रोह भी प्रकट किया है । जैनेन्द्र ने व्यक्ति के अहं को समाज के कल्याण केलिए विनाशकारी माना है और जोशी ने इसी अहं कस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व संयोजन करने का प्रयास किया है । लेकिन अज्ञेय ने अहं की महानता का प्रतिपादन करते हुए इसे मानव जीवन को गति देनेवाली प्रेरक शक्ति मानी है । इस प्रकार इन तीनों की रचनाओं ने हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि के विकास को नई दिशा प्रदान की है । मानव मन की जटिलताओं एवं क्रिया प्रतिक्रियाओं के चित्रण के फलस्वरूप इन के कथानक अत्यंत सूक्ष्म एवं रहस्यात्मक बन गए । अत: इन के कथानक में एकसूत्रता का अभाव भी है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों ने जीवन का विशाल धरातल छोड़कर मानस का संकीर्ण-धरातल गहण किया । अतएव ऐसे उपन्यासों में

प्रमचंदयुगीन बहिर्लोक की स्थूल घटनाएँ, अन्तर्लोक की सूक्ष्म घटनाएँ बन गई । अन्तर्यात्रा बहिर्यात्रा की तरह निश्चित रूपरेखा बनाकर क्रमानुसार विकसित नहीं होती । अंतर्यात्रा विगत, वर्तमान और भावि में जहाँ कहीं किसी भी क्रम में हो सकती है । इसलिए कथा भी क्रमोच्छेदित और विश्रृंखलित हो गयी । आदि, मध्य, अन्तवाली क्रमानुसार विकसित होनेवाली कथा अब काल-विपर्यय पद्धति से मध्य, अंत जहाँ कहीं से आरंभ हो जाती है । इसी तरह मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार ने कथा-शिल्प के पूर्व-सुनिश्चित व्यवस्था को तोड दिया । कथा की श्रृंखला कुछ अन्य शिल्प कौशलों के कारण विच्छिन्न हो गयी है । कुछ उपन्यासों में दृष्टकेन्द्र विधि द्वारा कथा का प्रस्तुतीकरण हुआ है । यहाँ उपन्यासकार तटस्थ हो जाते हैं । ऐसे उपन्यासों में कथा को संयोजित करने का दायित्व पाठकों पर है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार आत्मकथात्मक शिल्प से ज्यादा प्रभावित हैं । इस शिल्प के द्वारा प्रस्तुत कथा वस्तु भी विश्रृंखलित हो जाता है, "मनोविज्ञान ने उपन्यास की कथावस्तु में इतनी महान क्रांति उपस्थित की है कि उपन्यासों में उस का अस्तित्व नाममात्र को रह गया है ।"[1] संक्षेप में मनोवैज्ञानिक उपन्यास का कथानक व्यवस्थित नहीं जैसे अचेतन की अव्यवस्थित स्थिति है वैसे ही उपन्यास के कथानक भी अव्यवस्थित एवं विश्रृंखलित है । कथाशिल्प भी अध्ययन सुविधा की दृष्टि से चार उपशीर्षकों में आगे प्रस्तुत किया जाएगा । कथा का अन्य पुरुष प्रतिपादन, कथा शिल्प की आत्मकथात्मक स्वरूप, अप्रमुख पात्र द्वारा प्रतिपादित कथा शिल्प और कथा-शिल्प की दृष्टि केन्द्र विधि ।

---

1. डॉ. धनराज मानधाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास पृ. 135

कथा का अन्यपुरुष प्रतिपादन

प्रेमचंदयुगीन सामाजिक उपन्यासों की तरह कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कथा-वस्तु भी अन्य पुरुष में प्रस्तुत किया गया है । लेकिन इन उपन्यासों ने वर्णनात्मकता को नहीं बल्कि विश्लेषणात्मकता को ही अधिक स्थान दिया था । क्योंकि वे कथा में घटनाओं को नहीं चरित्र को ही प्रमुख स्थान देते हैं । परख, सुनीता, विवर्त, दशार्क, निर्वासित, प्रेत और छाया, मुक्तिपथ, सुबह के भूले, ऋतुचक्र जैसे उपन्यासों में कथा वस्तु का प्रस्तुतीकरण या तो स्वयं उपन्यासकार द्वारा नहीं तो अन्यपुरुष में किया गया है ।

परख

1929 में प्रकाशित जैनेन्द्र का सर्वप्रथम उपन्यास "परख" मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शुरूआत है । कथा-शिल्प की दृष्टि से इस की विशेषता यह है कि इस में एक ही कथा है और उपन्यास में उस की ही प्रधानता है । उपन्यास में कट्टो, सत्यधन, बिहारी, गरिमा आदि चार प्रमुख पात्र हैं । चारों पात्रों में कट्टो ही सर्व प्रमुख है । सत्यधन की आदर्शवादिता के नीचे छिपी स्वार्थपरता और कट्टो की सरल आदर्शवादिता और निर्मल प्रेम को कथा का आधार बनाया है । सिर्फ चार व्यक्तियों की चारित्रिक परख की कहानी प्रस्तुत करते हुए जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास के कथा शिल्प को नयी दिशा की ओर अग्रसर किया है । सत्यधन विधवा कट्टो को चाहता है । लेकिन उसे पत्नी बनाने में वह असमर्थ रहता है । क्योंकि सामाजिक नियम इस के खिलाफ़ है । सत्यधन गरिमा से शादी करता है । गरिमा का भाई बिहारी कट्टो को चाहता है ।

लेकिन दोनों के बीच विवाह संबंध नहीं असाधारण आत्मसंबंध स्थापित हो जाता है । यहाँ जैनेन्द्र प्रमुख पात्र सत्यधन का परिचय देते हुए उपन्यास का प्रारंभ करते हैं ।

उपन्यास में कट्टो के निस्वार्थ प्रेम की व्याख्या से कथा का विकास होता है । "परख" के कथा-शिल्प में समय विपर्यस्तता (time shift) आकस्मिक घटना आदि का नया प्रयोग किया गया है । जैनेन्द्र समय विपर्यस्तता से सत्यधन के प्रारंभिक जीवन की झलक इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं "इस सात बरसकी उस लड़की (कट्टो केलिए प्रयुक्त) का चेहरा ..... किन्तु कालेज से अब वह दसवीं क्लास का लड़का बहुत होशियार बन आया है ।"[1] समय विपर्यस्तता या समय विपर्यय के कारण उपन्यास में घटनाओं का क्रम बिगड जाता है । "परस" के कथा-शिल्प में कथा-विकास केलिए आकस्मिकता का प्रयोग भी देख सकते हैं । सत्यधन कट्टो की पुस्तक में उस की प्रशंसक विशेषताएँ अंकित कर देता है । संभवत: यह प्रशंसा सत्यधन के कट्टो के प्रति प्रच्छन्न आकर्षण से उपजी है । "कट्टो पढ़ने लगती है और जब सबक शुरू हुआ । वही पन्ना खुला ... ।"[2]

"परख" एक प्रश्नांत उपन्यास है । कथा के अंत में बिहारी तथा कट्टो किसी लक्ष्य की पूर्ती के लिए एक दूसरे से अलग हो जाते हैं । "बिहारी ने दोनों जुडे हाथ थामकर झुके मस्तक पर चुंबन किया । कट्टो ने प्रणद भाव से उसे स्वीकार किया । और दोनों फिर अलग-अलग रह चल दिये । न जाने कब मिलने केलिए ।"[3] यहाँ पाठक दंग रह जाते हैं । क्योंकि उपन्यास के अंत तक यह स्पष्ट नहीं है कि

---

1. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ.13
2. वही - पृ.15
3. वही - पृ.142

परख किस की है । जैनेन्द्र ने कथा की परिसमाप्ति का काम पाठकों पर छोड दिया है ।

जैनेन्द्र ने यहाँ कहानी-कथन मात्र को लक्ष्य नहीं बनाया, फलत: कथानक में क्रमबद्धता और सूत्रबद्धता के नियम के परिपालन से वह मुक्त हो गये हैं । "परख" की भूमिका में उन्होंने स्वीकार भी किया है, "मैं ने जगह जगह कहानी के तार की कडियाँ तोड दी हैं । वहाँ पाठक को थोडा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ, पाठक के लिए यह थोडा अभ्यास वांछनीय है - अच्छा ही लगता है ।"[1] जैनेन्द्र का दूसरा उपन्यास "सुनीता" की कथा-शिल्प भी लगभग परख के समान है ।

सुनीता

1935 में प्रकाशित "सुनीता" नामक उपन्यास में उपन्यासकार की मनोविश्लेषण सिद्धांत-स्थापना का मोह ही अधिक उभर आया है । "सुनीता" का मूलाधार हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि है । दमित काम वासना हरिप्रसन्न को क्रांतिकारी बनाती है । हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि को सुलझाने के प्रयास में मित्र श्रीकांत अपनी पत्नी सुनीता को हरिप्रसन्न के सम्मुख आत्मसमर्पण करने का आदेश देता है । "परख" की कथा शिल्प की तरह इस उपन्यास में भी त्रिकोणात्मक व्यक्ति संबंध का चित्रण है । "सुनीता" की कथा भी पात्र-परिचय से आरंभ होती है । "श्रीकांत ने अनिवार्य बी.ए. किया, शादी की और प्रैक्टीस शुरू कर दी । वह गिरस्ती

---

1. जैनेन्द्र - परख - पृ.5

और प्रैक्टीस चलने भी लगी है । पर हरिप्रसन्न की याद दूर नहीं होती । वह याद खलल डालती है ।"[1] यहाँ उपन्यास की प्रमुख समस्या का संकेत है । इसलिए इस की कथा का प्रारंभ "परख" से भिन्न है । हरिप्रसन्न की मानसिक कुंठा की ओर श्रीकांत ने संकेत किया है "भले आदमी को पता तो चले कि क्या जंगल और गाँव और जेल की खाक छानता फिरता है । युवती, रमणी और निर्मल शिशु भी दुनिया में है । उस को इनकार कर वह स्वराज्य लेगा ।"[2]

सुनीता, हरिप्रसन्न और श्रीकांत की मानसिक क्रिया प प्रतिक्रियाओं से कथानक का विकास होता है । इस उपन्यास में कथा साधन है और मानव-मन की वृत्तियों का चित्रण साध्य । कथा विकास के लिए "परख" की भाँति कुछ नए शिल्प प्रयोग इस उपन्यास में भी मिलते हैं । उपन्यास की कहानी हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि की व्याख्या करने और उसे सुलझाने के प्रयत्न से विकसित हुई है । भावि घटना का संकेत देकर कथा को आगे बढाने में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार समर्थ है । यहाँ हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि को खोलने का संकेत देकर सुनीता सोचती है, "हरिप्रसन्न निष्प्रयोजन निष्फल नहीं होने दिया जायेगा । वह नहीं है व्यर्थता के लिए । मैं जब अनायास उस की भाभी बनी हूँ तो मैं देखूंगी कि वह प्रयोजनयुक्त ना तो रिश्तों से भी युक्त, घरबारी और कारबारी होकर यहाँ रहता है ।"[3]

इस उपन्यास के कथा शिल्प में नाटकीय विडंबना या ड्रामेटिक आयरनी का प्रयोग भी किया गया है । नाटकीय विडंबना में एक ही विषय के दो पक्षों का असादृश्य प्रदर्शित कर विचित्र स्थिति

---

2. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.14

3. वही - पृ.88

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.9

उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है । उदाहरण के रूप में हरिप्रसन्न दाढ़ी-मूँछ रखे हुए है, वह श्रीकांत के साथ चौके में भोजन करने के लिए नहीं जाना चाहता क्योंकि वहाँ सुनीता उपस्थित है । श्रीकांत कहता है कि आईने में अपना चेहरा तो देखो । हरिप्रसन्न उत्तर देता है, "मुझे कौन कामदेव बनना है ।"[1] हम देखते हैं कि आगे जाकर हरिप्रसन्न किस प्रकार सजग कामदेव का प्रतिरूप बन जाता है तथा सुनीता मंत्रमुग्ध सी, विवश हो स्वयं को उस के अधीन छोड देती है । इसी प्रकार, सुनीता हरी के साथ जाने की तैयारी कर रही है । हरिप्रसन्न कहता है, "आज का दिन साधारण नहीं है ।"[2] हम देखते हैं कि आगे चलकर वह दिन कितना असाधारण बन जाता है जहाँ पर सुनीता पति से विच्छिन्न होकर कभी हरिप्रसन्न की जाँघों पर लेटती है और कभी शरीर के अंतिम वस्त्र को फाड देने केलिए बाध्य होती है ।

जैनेन्द्र ने कथा-विकास के लिए मनोविज्ञान के साहचर्य नियम का प्रयोग भी किया है । उदाहरण के लिए हरिप्रसन्न अधिकतर सुनीता के स्टडी रूम में ही रहता है । वह वहाँ चित्र बनाता है और प्राय: वहीं सोने का आग्रह करता है । उस स्टडी-रूम में सुनीता की पुस्तकें हैं, लिहाफ में बंद सितार लेटा है । हरिप्रसन्न को स्टडी-रूम में (अचेतन रूप से) रहना इसलिए अच्छा लगता है क्योंकि उन सब से सुनीता का संबंध है ।

इस उपन्यास की कथा का उपसंहार "परख" के समान है ।

---

1. जैनेन्द्र - सुनीता - पृ.49
2. वही - पृ.224

इस उपन्यास की कथा का उपसंहार "परख के समान है । "सुनीता" प्रश्नांत उपन्यास है । हरिप्रसन्न कामवासना को दमित करने के लिए या ग्रंथि खुलने के लिए सुनीता अपना नग्न शरीर उस के सामने प्रदर्शित करती है । लेकिन उपन्यास के अंत में पता नहीं चलता कि हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि खुल गई या नहीं ? अंत में श्रीकांत इस संदेह को प्रकट करते हुए सुनीता से पूछता है "सुनीता, अब भी क्या हरिप्रसन्न में ग्रंथि अवशिष्ट है ? उसे क्या फिर बुलाने का साधन नहीं हो सकेगा ?"[1] इस प्रकार सुनीता के उत्तर से किसी निश्चित हल का संकेत मिलने के बजाय, कथा का अंत पहेली बन कर रह जाता है । सुनीता का उत्तर है "मैं तुम से सच कहती हूँ मैं ने अपने को नहीं बनाया जाने वह कहां गये हैं । मुझे लगता है ..... ।"[2]

इलाचन्द्रजोशी के "प्रेत और छाया" नामक उपन्यास की कथा शिल्प भी उपर्युक्त उपन्यासों से मिलते जुलते हैं ।

प्रेत और छाया

इलाचन्दजोशी के 1945 में प्रकाशित "प्रेत और छाया" नामक उपन्यास में कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण अन्यपुरुष में किया गया है । इस के नायक पारसनाथ की हीनताग्रंथि का दुष्परिणाम कथा का विषय है । कुंठाग्रस्त पारसनाथ सिर्फ बदला लेने केलिए अपने संपर्क में आनेवाली स्त्रियों के विनाश की योजना बनाता है ।

---

1. जैनेन्द्र कुमार - सुनीता - पृ.243
2. वही

यहाँ भी नायक का परिचय देते हुए कथा का प्रारंभ किया गया है "जिस व्यक्ति से वह बातें कर रहे थे वह एक गोरे रंग का कुछ दुबला सा सुदर्शन युवक था । उस के सिर के काले और घुंघराले बाल बहुत घने और कुछ बडे दिखाई देते थे ।"[1] पारसनाथ के बचपन में उसके पिता ने ही उस को घोर मानसिक आघात पहुंचाया था और कहा कि वह जार संतति है । तब से वह नारी जाति का शत्रु बन गया और हीनता ग्रंथि का शिकार भी । कथा शिल्प के प्रारंभ में ही समय विपर्यस्तता (time shift) का प्रयोग किया गया है । पारसनाथ होटल में मंजरी नामक लडकी को देखते समय उस को दार्जिलिंगवाली घटना की याद आती है । तब पाठक जानते हैं कि पारसनाथ कांची नामक लडकी को धोखा देकर दार्जिलिंग से भागकर आया है । जोशी यहाँ कथा आगे बढाने के लिए असाधारण और विचित्र घटनाओं का सहारा लेते हैं । स्त्री जाति के प्रति हिंसक वृत्ति पारसनाथ से विचित्र काम करवाती है । वह कांची मंजरी, नंदिनी, हीरा आदि को असहाय अवस्था में छोडकर स्त्री जाति से बदला लेता है ।

पारसनाथ भुजौरियाजी की पत्नी नंदिनी को भाग ले जाता है और बाद में छोड देता है । यहाँ मुख्य पात्र एक प्रकार से उपन्यास के केन्द्र के रूप में विकसित होता है । जोशीजी के सभी उपन्यासों में यह विशेषता देख सकते हैं । कथा का प्रधान सूत्र उपन्यास के प्रधान पात्र में केन्द्रित रखना भी जोशीजी की कथा शिल्प की विशेषता है । यहाँ कथा का प्रधान सूत्र हीनताग्रंथि प्रधान पात्र पारसनाथ में ही केन्द्रित है । पारसनाथ के भीतर एक प्रेत बैठा हुआ है । उस ने ही उसे सारी स्त्री-जाति के प्रति असहनशील, सहानुभूतिशील और क्रूर बना दिया है । अंत में जब उसे अपने बाप

---

1. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.17

से ही पता चलता है कि वह उसी का ही बेटा है, तब पारसनाथ की हीनताग्रंथि उखड जाती है और घोर पश्चाताप का शिकार बन जाता है । अंत में हीरा से, जिसे धोखा देने की बात सोच रखा था विवाह कर लेता है ।

इस उपन्यास का अंत सुखपूर्ण है । पारसनाथ हीरा को प्रसव के लिए मंजरी के अस्पताल में ले आता है। इस के बीच मंजरी वहाँ डाक्टर बनकर आती है । पारसनाथ उस से क्षमा मांगता है । कथा कुछ विस्तार में आकर अंत में अचानक उपसंहार तक पहुंचाने के लिए जोशीजी ने कुछ जल्दबाज़ी की है । यह भी उन के कथा शिल्प की विशेषता है । उपन्यास का अंत इस प्रकार है, "इस घटना के प्राय: आठ महीने बाद बैजनाथ बाबू की मृत्यु हो गयी । पारसनाथ हीरा को लेकर कालिम्पांग गया । ..... हीरा को अकस्मात् राष्ट्रीयता की धुन सवार हो गई ।"[1] जोशीजी के "सुबह के भूले" नामक उपन्यास भी कथा-शिल्प की दृष्टि से उपर्युक्त उपन्यास के अधिक निकट है ।

सुबह के भूले

1951 में प्रकाशित इलाचन्द्रजोशी के "सुबह के भूले" शीर्षक उपन्यास कथा-शिल्प की दृष्टि से परख, सुनीता, प्रेत और छाया के जैसे होने पर भी विषय की दृष्टि से बिलकुल भिन्न है। वे तीनों उपन्यास व्यक्तिकेन्द्रित हैं तो "सुबह के भूले" व्यक्ति मन के चित्रण के द्वारा सामाजिक यथार्थ को भी साध्य करता है । इस में जोशीजी ने पात्रों के मनोविश्लेषण के साथ साथ आर्थिक विषमता,

---

1. इलाचन्दजोशी - प्रेत और छाया - पृ.408-409

नारी की दुर्दशा, फैशनों की बाढ, भिखारियों की दयनीय अवस्था, सिनेमा-जगत की चरित्रहीनता आदि अनेक सामाजिक पहलुओं का चित्रण किया है, "मुक्तिपथ, सुबह के भूले, जिप्सी और जहाज़ का पंछी जोशीजी की उपन्यास-कला में एक तीव्र, सजग, सामाजिक भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[1]

इस उपन्यास में कथावस्तु अन्यपुरूष में प्रस्तुत की गई है। कथावस्तु का प्रारंभ व्यक्ति परिचय द्वारा हुआ है। इस में पहली बार जोशीजी ने नायक और नायिका को उन के जन्म से यौवन तक विकसित दिखाया है। शिल्प की दृष्टि से यह एक नया प्रयोग है। "प्रेत और छाया" के समान यहाँ भी कथा का आधार हीनताग्रंथि है। उस में हीनताग्रंथि का शिकार नायक पारसनाथ है तो यहाँ नायिका गिरिजा या गुलबिया है।

उपन्यास का प्रारंभ बंबई के एक निम्नवर्गीय गली है। वहाँ दूधवाले की लड़की गुलबिया और उस के साथ किशन खेलते रहते हैं। इन के बड़े होने के साथ साथ कथा का विकास भी होता है। कालेज में उच्चवर्गीय सहेलियों से मिलते समय गुलबिया अपनी दीन स्थिति को पहचान लेते है और धीरे धीरे वह हीनताग्रंथि का शिकार बन जाती है। वह अपना नाम गिरिजा रखती है। वह फिल्म अभिनेत्री बनती है। फिर भी वह अपने को अकेला पाती है। आखिर वह अपनी हीनताग्रंथि से मुक्त होकर किशन के पास लौट आती है। इस उपन्यास के कथा विकास के लिए उपन्यासकार ने वर्णनात्मकता की सहायता ली है। शीला, मोहनदास जैसे अमीर लोगों के संपर्क के कारण गिरिजा के मन में अपने घरवालों के प्रति और

---

1. राजेन्द्रजैन - इलाचन्द्रजोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व पृ.41

अपने परिवेश के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होता है । यहाँ कथाकार मनोवैज्ञानिक सूत्रों के द्वारा कथा को आगे बढाता है । गिरिजा के मन की हीनताग्रंथि से कथा विकसित होती है ।

"सुबह के भूले" का अंत प्रसादपूर्ण है । गुलाबिया किशन के पास लौट आकर उस से कहती है, "यह ठीक है कि बीच में कुछ वर्षों के लिए गुलबिया जीवन की सीधी राह में चलते हुए भटक गयी थी, तरह-तरह के झूठे किंतु रंगीन प्रलोभनों ने उसे मोह लिया था, भरमा दिया था और गिरिजा के रूप में अपना काया-कल्प होते देखकर वह फूली नहीं समा रही थी । पर सुबह की भूली हुई वह गुलबिया जीवन के उल्टे-सीधे रास्ते से होकर शाम को फिर घर लौट आयी है, यह सूचना अभी तक तुम्हें नहीं मिली, यह आश्चर्य की बात है .... ।"[1] जोशी जी ने यहाँ व्यक्ति मन की बुरी वृत्तियों को सुधारते हुए मनोवैज्ञानिक धरातल पर व्यक्ति को पूर्ण बनाने का कार्य किया है ।

विवर्त

"विवर्त" 1953 में प्रकाशित हुआ । इस का केन्द्र पात्र पुरुष है । शिल्प की दृष्टि से यह नया प्रयोग है । जोशीजी के "प्रेत और छाया" की तरह इस कथा का मूलाधार भी अहं और सेक्स है । इस की कथा-वस्तु नायक जितेन के दमित काम, अतृप्ति और कुंठाजन्य अवसाद पर आधारित है । "परख" और "सुनीता" की तरह इस उपन्यास का कथा शिल्प भी त्रिकोणात्मक प्रेम संबंधों में उलझा हुआ है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले - पृ.289

भुवनमोहिनी के परिवार का परिचय देकर जैनेन्द्र उपन्यास का प्रारंभ करता है । भुवनमोहिनी, उस का प्रेमी जितेन और पति नरेश के चरित्र पृथक-पृथक गुरूत्वाकर्षण की धुरी में कथानक को गति देते हैं । प्रधान कथा-सूत्र मोहिनी और जितेन के प्रेम संबंध से प्रारंभ होकर विकसित होता है । मोहिनी के नाटकीय व्यवहार से जितेन उपेक्षित हो जाता है । कुंठाग्रस्त जितेन नौकरी और नगर छोड़कर चला जाता है । मोहिनी का विवाह बैरिस्टर नरेश से हो जाता है । यहाँ कथा-शृंखला टूट जाती है । कथा को आगे बढाने के लिए जैनेन्द्र असाधारण घटनाओं का सहारा लेते हैं । जितेन एक क्रांतिकारी दल के नेता बनकर रेलगाडी को गिरा देता है और मोहिनी के घर शरण लेता है और वहीं बीमार पड जाता है । यहाँ कथानक में फिर एक आकस्मिक मोड होता है । जितेन वहाँ से मोहिनी के जेवर चुराकर भाग जाता है और पचास हज़ार रूपये वसूल करने के उद्देश्य से मोहिनी का अपहरण करवा लेता है । अंत में मोहिनी के आग्रह से जितेन पश्चाताप विवश होकर पुलीस के सामने आत्मसमर्पण करता है । कथा विकास केलिए इसी तरह अनोखी घटनाओं का सहारा लेने के कारण उपन्यास का वातावरण अत्यधिक रहस्यात्मक है । यह रहस्यात्मकता कथा-शिल्प को शिथिल बनाती है । "विवर्त" में भी एक ही मुख्य कथा है । यह जैनेन्द्र के उपन्यासों की कथा-शिल्प की विशेषता है । इस में प्रासंगिक कथा के रूप में जितेन की आश्रिता युक्ती तिन्नी की कथा भी जुडी हुई है ।

कथा के प्रसंग-परिवर्तन को गुणक चिह्नों द्वारा उपन्यास के परिच्छेद में सूचित किया है । उपन्यास के 6,22,205,211 आदि पृष्ठों में गुणक चिह्न है । "विवर्त" में कहीं कहीं परिच्छेदों का विभाजन भाव प्रवाह में बाधक बन गया है । परिच्छेद आठ का अंत

और परिच्छेद नौ के आरंभ के बीच ऐसी ही स्थिति है । भुवनमोहिनी और उस का पति नरेश चाय पर बैठे थे । चाय पीकर दोनों बातचीत करते समय ही परिच्छेद परिवर्तन हो जाता है । उस समय की बातचीत ऐसी है - नरेश ने कहा "अच्छा" और मोहिनी पाय तैयार करती रही । {परिच्छेद आठ का अंत} चाय के बीच में मोहिनी ने पूछा, "क्यों, आज चुप क्यों हो ?" नरेश बोले, "कुछ नहीं ..... ।" {परिच्छेद नौ का आरंभ}

"विवर्त" भी "सुनीता" की तरह दमित वासना से उत्पन्न विद्रोह के अवसादपूर्ण अन्त की कथा है । उपन्यास के अंत में भुवनमोहिनी के निर्देशानुसार जितेन पश्चाताप विवश होकर पुलीस के सामने आत्मसमर्पण करता है । वह अपने क्रांतिकारी दल का भार मोहिनी पर सौंपकर चला जाता है । पूरा उपन्यास पढने के उपरांत ही पाठक यह जान ले पाते हैं कि असफल प्रेम हिंसात्मक वृत्तियों को जन्म देता है । यह उपन्यास का मूल स्वर है ।

दशार्क

1985 में प्रकाशित "दशार्क" विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से जैनेन्द्र के दीगर उपन्यासों से बिलकुल भिन्न है । प्यार और पैसे का द्वन्द्व "दशार्क" का आधार है । जैनेन्द्र प्यार का नया रूप इस में चित्रित करता है । उपन्यास की नायिका रंजना दांपत्य जीवन की सीमाओं को लांघकर बाहर आती है । वह हर ज़रूरतमंद पुरुष को

---

1. जैनेन्द्र कुमार - विवर्त - पृ.71-72

सब कुछ देना चाहती है । रंजना समाज को स्वच्छ रखने केलिए ही वैचारिक वेश्यावृत्ति करती है । वह शरीर बेचना नहीं चाहती है ।

इस कथा का प्रारंभ "विवर्त" के समान परिवार-परिचय से होता है । "दशार्क" के आरंभ में रंजना के परिवार का परिचय मिलता है । कथावस्तु नहीं के बराबर है । वास्तव में रंजना नामक एक वैचारिक वेश्या से संबंधित कुछ घटनाओं का चित्र है "दशार्क" । रंजना के ग्राहक होकर विद्यार्थी, व्यापारी, खूनी, राजनीतिज्ञ जैसे सभी प्रकार के लोग आते हैं । उपन्यास का कथा शिल्प शिथिल है । बिखरे हुए कथानक को एकत्रित करने में पाठक असमर्थ हो जाते हैं । अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के साथ "दशार्क" को जोडना उचित नहीं है। क्योंकि 1985 तक आते आते जैनेन्द्रजी की रचना दृष्टि में बदलाव आ चुका था । अत: "दशार्क" को आधुनिकोत्तर साहित्य में स्थान देना ही उचित है ।

मुक्तिपथ

1950 में प्रकाशित इलाचन्द्रजोशी का उपन्यास "मुक्तिपथ" "विवर्त" की तरह नायक प्रधान उपन्यास है । इस में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है । "मुक्तिपथ" का स्थान वास्तव में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नहीं है । यह एक सामाजिक उपन्यास है । डॉ॰ देवराज उपाध्याय का मत है "यह उपन्यास जोशी का सर्वप्रथम ऐसा उपन्यास है जहाँ आधुनिक मनोविश्लेषण की गहरी छानबीन के द्वारा मानसिक स्तरों को उघाडने की चेष्टा कम की गई है ।"[1]

---

1. डॉ॰देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान - पृ॰246

मुक्तिपथ का कथा-शिल्प प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों के कथा-शिल्प से मिलता-जुलता है । इस में एक ओर राजीव और सुनंदा के जीवन की सफलता एवं विफलता का चित्रण है तो दूसरी ओर सामाजिक बंधनों एवं विषमताओं से मुक्ति की खोज तथा सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है । सामाजिक उलझन को प्रमुख और व्यक्ति को ज़रा गौण रखकर उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक विषमता को उभारने का कार्य किया है ।

"मुक्तिपथ" का प्रारंभ नाटकीय ढंग से है । उपन्यास का आरंभ इस प्रकार है "आज तीन चार दिन बाद सूरज के दर्शन हुए थे । पहाड में घनी बर्फ गिरनी की खबर अखबारों में छप चुकी थी । लखनऊ में भी काफ़ी जाड़ा पड रहा था, इसलिए धूप बहुत प्यारी मालूम हो रही थी ।"[1] कथा-शिल्प की यह नवीनता रोचक एवं आकर्षक है । "प्रेत और छाया" के समान इस उपन्यास के कथा-शिल्प में भी असाधारण घटनाओं के चित्रण द्वारा कथा का विकास करता है । यहाँ राजीव और सुनंदा मुक्तिपथ का आदर्श सामने रखकर असाधारण आचरण करते हैं । राजीव विधवा सुनंदा को "साथिन" मानता है, लेकिन "जीवन साथिन" कभी नहीं । सुनंदा राजीव के साथ लोककल्याण केलिए "उपनिवेश" के काम में हाथ बँटाती है और उसके साथ रहती भी । लेकिन राजीव के सामाजिक जीवन में सुनंदा के व्यक्तिगत जीवन को कोई स्थान नहीं देता । इसलिए अंत में सुनंदा स्वयं मुक्ति लेकर वहाँ से चली जाती है । वह राजीव से कहती है "आप का और मेरा पथ एक नहीं है । आप श्रम केवल श्रम और उसके द्वारा मुक्ति केवल मुक्ति चाहते हैं । मैं जीवन में श्रम भी

---

1. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ.3

चाहती हूँ और विश्राम भी मुक्ति भी चाहती हूँ और बंधन भी ।"[1] "मुक्तिपथ" में राजीव का असाधारण आदर्श रूप कथा-शिल्प को दुर्बल बनाता है ।

"मुक्तिपथ" की मुख्य कथा के साथ सुनंदा के रिश्तेदार प्रमीला और उस के पति विजयकुमार की गौण कथा भी है । लेकिन जोशीजी ने कथा का प्रधान सूत्र (लोकमंगल भावना) प्रधान पात्रों में केन्द्रित करने में ध्यान दिया है । उन्होंने कथा को आगे बढाने केलिए घटनाओं का संकेत मात्र देने की विधि भी अपनाई है । उपन्यास का अंत दु:खपूर्ण है । सुनंदा राजीव को छोड़कर चली जाती है । उपकथा में विजय आत्महत्या करता है । इस के बाद प्रमीला जनकल्याण के लिए जीवन बिताने का निश्चय लेती है । अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तरह इस में भी प्रासंगिक कथाएँ बहुत कम हैं ।

निर्वासित

1946 में प्रकाशित "निर्वासित" का आधार व्यक्ति की मानसिक ग्रंथि एवं कुंठा हैं । उपन्यास की भूमिका में कथा के आधार का संकेत दिया है "(उपन्यास का नायक महीप) जीवन के किन जटिल जाल-संकुल पथों से होकर विचरण करता है, किन किन घटनाचक्रों का सामना उसे करना पड़ता है और उन की क्या-क्या और कैसी प्रति-क्रियाएँ उस के भीतर होती है, इन्हीं सब बातों का चित्रण करने का प्रयत्न मैं ने किया है ।"[2] जोशीजी ने व्यक्ति के अहं पर प्रहार करने के उद्देश्य से निर्वासित की रचना की है, "मेरी सभी उपन्यासों का

---

1. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ.323
2. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.5

प्रधान उद्देश्य व्यक्ति के अहंवाद की ऐकान्तिकता पर निर्मम प्रहार करने का रहा है ..... छायामयी, सन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित इन पाँचों उपन्यासों में मैं ने इसी दृष्टि को अपनाया है ।"[1]

"निर्वासित" के कथा-शिल्प में कथा-वस्तु का नाटकीय प्रारंभ आकर्षक है । कथा का प्रारंभ जलसे की भीड के वर्णन से किया गया है "टागौर टाऊन में एक विशेष राष्ट्रीय जलसे के उपलक्ष्य में बडी चहल-पहल मची हुई थी । विभिन्न प्रान्तों से देश के प्रमुख नेता गण आए हुए थे । उन के दर्शन करने और उनके भाषण सुनने केलिए उत्सुक जनता ने पण्डाल में अच्छी खासी भीड लगा रखी थी ।"[2]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथा-शिल्प में मनोवैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर कथा का विकास होना स्वाभाविक है । उपन्यास में महीप के अतृप्त काम के उलझन से कथानक को आगे बढाया गया है । खन्ना परिवार की चार बहिनों सुषमा, रमा, प्रतिमा. नीलिमा - से महीप का प्रणय व्यापार चलता है । लेकिन चारों द्वारा वह ठुकराया जाता है और निर्वासित भी । इस के कथा-शिल्प में भी समय विपर्यस्तता (time shift) का प्रयोग किया गया है । उपन्यास का प्रारंभ टागौर टाऊन के राष्ट्रीय जलसे से है । वहाँ से महीप की यादें पाठकों को खन्ना परिवार की बहनों की ओर ले जाती हैं । महीप और नीलिमा के बीच ठाकुर लक्ष्मीनारायण आता है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - विवेचना - पृ.124
2. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.1

इस उपन्यास की कथा भी त्रिकोणात्मक है । लेकिन वह कथा शिल्प को बदसूरत नहीं बना देता । क्योंकि यह त्रिकोणात्मक संबंध एक सार्वभौमिक सत्य है । पति और पत्नी के बीच कभी भी एक अन्य स्त्री या पुरुष प्रकट रूप में न सही वैचारिक रूप में तो आता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इस सत्य को खुलकर अभिव्यक्त करते हैं । इस उपन्यास में एक से अधिक उपकथाएं भी आती है ।

कथा विकास के लिए उपन्यासकार द्वारा चित्रित असाधारण घटनाएं कथा-शिल्प को दुर्बल बनाता है । नीलिमा और ठाकुर का विवाह निश्चित करने के बाद नीलिमा महीप के साथ भाग जाना चाहती है । लेकिन महीप के साथ स्टेशन पहुंचने पर नीलिमा को माँ की याद आती है । वह घर लौट जाने के लिए चिल्लाकर पुलीस की सहायता मांगती है । इस प्रकार की असाधारण घटनाएं पाठकों में नीरसता उत्पन्न करती हैं "घटना-प्रसगों की अविश्वसनीयता उपन्यास की सब से बडी सीमा हो ।"[1]

नीलिमा और ठाकुर की शादी के बाद महीप कुंठाग्रस्त होकर क्रांतिकारी दल में शामिल हो जाता है । वास्तव में उस की क्रांति योजना दमित प्रेम का ही दूसरा रूप है । दुष्ट और कपटी ठाकुर से नीलिमा के मुक्त होने के बाद महीप एक बार और उसे अपनाने की कोशिश करता है और असफल हो जाता है ।

---

1. मधुरेश - हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.80

इस उपन्यास का अंत अवसादपूर्ण है । महीप गांधीवादी बन कर ठाकुर को बचाने के सिलसिले में क्रांतिकारियों से घायल हो जाता है और जेल में मर जाता है । महीप की मृत्यु अवसादपूर्ण वातावरण में होती है जिससे कथा का अन्त वेदनापूर्ण बन गया है "नीलिमा, ठहरो, मैं आता हूँ और उस के बाद ही उस का श्वास ऊपर को चढने लगा । नर्स घबरा कर डाक्टर को बुला लाई, पर तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था ।" इसी तरह जोशीजी ने मानव की पशुवृत्ति के दुष्परिणाम को दिखाने का कार्य किया है । जोशीजी के "ऋतुचक्र" की कथा भी अन्यपुरुष पद्धति पर प्रस्तुत की गयी है ।

ऋतुचक्र

लगता है कि जोशीजी में "जहाज का पंछी" के बाद मनोवैज्ञानिकता के प्रति आकर्षण कम हो गया है । 1968 में प्रकाशित ऋतुचक्र निर्वासित या प्रेत और छाया की तरह व्यक्तिपरक उपन्यास नहीं है । यह वास्तव में समाजपरक तथा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है । इस में मिलनकुमार चाटर्जी नामक असाधारण व्यक्तित्ववाले की जीवन कथा को आधार बनाकर जोशीजी ने अनेक सामाजिक समस्याएँ उठायी हैं । दरअसल जोशीजी यहाँ मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत कर रहे थे । "ऋतुचक्र" के कथा-शिल्प में "निर्वासित" की तरह उतना उतार-चढाव नहीं है । प्रधान कथा सूत्र मिलनकुमार चाटर्जी और प्रतिमा का है । वह विक्षेप रहित गति में विकसित हुआ है । प्रधान कथा-सूत्र उपन्यास के अंत तक बना रहता है । रामबाबू और सोनी, चित्रा नकुलेश, माणिकलाल, गिडवानी तथा लिली की कथाएँ उपकथा के

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.464-465

रूप में आयी हैं । लेकिन ये कथाएं कथा-नायक मिलन चाटर्जी या दादा से संबंधित ही हैं । कथा नायक के चरित्र-विकास के लिए उपकथाओं का आश्रय लेना जोशीजी की शिल्पगत विशेषता है ।

उपन्यास का प्रारंभ अनाटकीय है । कथा के स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण के कारण पाठक को पात्रों एवं वातावरणों के बीच उपन्यासकार नज़र आता है । कथा का प्रारंभ प्रकृति चित्रण से होता है । उपन्यास के पहले परिच्छेद के अंत तक सिर्फ प्रकृति वर्णन ही है । कथा का ऐसा प्रारंभ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रकृति के अनुकूल नहीं । यह कथा शिल्प को दुर्बल बनाता है । उपन्यास के प्रारंभ में ही पाठक कथा नायक दादा से मिलते हैं । लेकिन उस का परिचय उपन्यास के इक्कीसवीं पन्ने पर ही मिलता है, "दादा वर्षों से इस पहाडी क्षेत्र से परिचित थे और उनका जन्म एक छोटे पहाडी शहर में ही हुआ था .... ।"[1] नायक से मिलने के बहुत समय बाद ही उससे परिचय कराने का यह तरीका बिलकुल नया प्रयोग है । वर्णनात्मकता और व्याख्यात्मकता के सुन्दर समन्वय द्वारा कथा का विकास होता है । उत्तर प्रदेश के एक पहाडी अंचल में एकांकी होकर रहते समय मिलनकुमार चाटर्जी के जीवन में प्रतिमा वसंत बन कर आती है । अध्यापिका प्रतिमा कालेज की छुट्टी बिताने के लिए ही वहाँ आयी थी । दादा और प्रतिमा परस्पर चाहते हैं । रामबाबू और सोनी चित्रा कटारा और नकुलेश लिली और मणिकलाल की प्रेम कथा भी उस पहाडी प्रदेश की रमणीयता में विकसित होती है । अनेक पात्रों से संबंधित घटनाएं चित्रित करने के कारण कथा-फलक विस्तृत हो गया है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - ऋत्विक - पृ.2।

पृष्ठों तक लंबा प्रकृतिवर्णन तथा दादा और मणिकलाल के लंबे लंबे कथोपकथन आदि ने कथा शिल्प को काफी शिथिल बनाया है ।

उपन्यास के अंत में प्रतिमा दादा को जल्दी ही लौट आने का वचन देकर कालेज चली जाती है । तब दादा सोचता है "ऋतु बदलेगी । प्रतिमा उस नयी ऋतु का स्वागत करने केलिए अवश्य लौटेगी ।"[1] कथा का अंत प्रश्नपूर्ण है । दादा से तीव्र प्रेम करने पर भी उससे विवाह किए बिना प्रतिमा वापस चली जाती है । इसी तरह राम्बाबू और सोनी की कहानी भी किसी किनारे पर न पहुंच पाती है । लिली के पेट में मणिकलाल का बच्चा है । लेकिन खूनी मणिकलाल को स्वीकार करने के लिए लिली तैयार नहीं है । नकुलेश और चित्रा का प्रेम भी असफल हो जाता है और चित्रा आत्महत्या कर लेती है । शिल्पगत दृष्टि से "ऋतुचक्र" एक असफल कृति ही है ।

जोशीजी के "भूत का भविष्य" शीर्षक उपन्यास में भी उन का शिल्पमोह बहुत कम दिखाई देता है ।

भूत का भविष्य

जोशीजी के इस उपन्यास का शीर्षक रोचक है । क्योंकि उपन्यास पढने के पूर्व ही पाठकों के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि शीर्षक का मतलब क्या है ? उपन्यास पढ़ने के बाद भी यह जिज्ञासा बनी रहती है कि भूतनाथ का भविष्य क्या होगा ?

---

1. इलाचन्द्रजोशी - ऋतुचक्र - पृ.548

इसलिए इस उपन्यास के कथा शिल्प में शीर्षक का स्थान महत्वपूर्ण है । उपन्यासकार हमें यह सोचने केलिए प्रेरित करता है कि भूतनाथ जैसे शिक्षित, सुसंस्कृत एवं परोपकारी व्यक्ति को भी हरिजन होने के नाते भूत जैसा छिपकर रहना पड़ता है तो दूसरे दलितों का भविष्य क्या होगा ?

उपन्यास की विषयवस्तु सामाजिक है । हरिजन जीवन और उस के आसपास घूमती समस्याएँ यहाँ कथा का आधार है । निम्न जातीय लोगों की दुर्दशा का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने का प्रयास किया गया है । नायक राकेश और नायिका नंदा के नाटकीय प्रवेश द्वारा कथा प्रारंभ होता है । राकेश और नंदा अपने गाँव से भाग आकर इलाहाबाद में एक सस्ते किराये के मकान में रहने लगते हैं । जोशीजी ने यहाँ कथाशिल्प में समय विपर्यस्तता का प्रयोग किया है । कथा वर्तमान से एकदम अतीत की ओर जाती है । नंदा और राकेश का प्रथम मिलन, प्यार, भाग जाना आदि घटनाओं के चित्रण के बाद कथा फिर वर्तमान में आ जाती है ।

कथा विकास केलिए कथा-शिल्प में असाधारण घटनाओं को स्थान दिया है । राकेश और नंदा के बीच भूतनाथ का आकस्मिक प्रवेश इसका उदाहरण है । कथा-विकास केलिए भूतनाथ द्वारा उस की पूर्वकथा सुनाता है । यहाँ कथाशिल्प आत्मकथात्मक बन जाता है । भूतनाथ की आत्मकथा हरिजन की सामाजिक समस्याएँ अनावृत करती है ।

उपन्यास का अंत प्रश्नपूर्ण है । राकेश भूतनाथ को चोर समझकर पुलीस को उस की सूचना देता है । लेकिन भूतनाथ गायब हो जाता है । पुलीस राकेश को अपराधी का भागीदार मानकर

गिरफ्तार कर लेता है । नंदा आश्रयहीन हो जाती है । भुवनाथ की सारी सहायताओं को भूलकर राकेश उसे धोखा देता है । उपन्यासकार यह दिखाते हैं कि उच्चवर्ग अपने अहं को बनाये रखने के लिए निम्नवर्ग द्वारा किए गए सारे त्याग को अनदेखा कर डालते हैं । त्रिकोणात्मक व्यक्ति संबंध का पाटेर्न यहाँ भी देख सकते हैं । यह संबंध मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथा शिल्प की विशेषता है ।

गौण पात्रों द्वारा प्रस्तुत कथा-शिल्प

कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथावस्तु जीवनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस में कोई पात्र अपनी कहानी सुनाता नहीं । पर कोई गौण पात्र मुख्य पात्र की कहानी प्रस्तुत करता है । यह कथा शिल्प आत्मकथात्मक विधि का परोक्ष रूप है । यह विधि सर्वथा नवीन भी है । इस विधि में उपन्यासकार को दखल देने की आवश्यकता नहीं पड़ती । "कल्याणी" और "जयवर्धन" इस विधि पर रचित उपन्यास है ।

1. कल्याणी

1939 में प्रकाशित "कल्याणी" की कथा बिलकुल वैयक्तिक है । कथा का आधार कल्याणी के अन्तर्मन की जटिलता और मानसिक घात-प्रतिघात है । कथा को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए एक नवीन शिल्प कौशल का प्रयोग किया है । "कल्याणी" का एक गौण पात्र वकील साहब कल्याणी की कथा प्रस्तुत करता है । कल्याणी

वकील साहब की मित्र थी । उस की कहानी वकील साहब की मृत्यु के बाद उस की एक रजिस्टर में लिखी पाई गई "शेष यह कहानी वकील साहब के रजिस्टर में जैसी लिखी पाई गई, लगभग वैसी ही दी गई है ।"[1] जैनेन्द्र ने ही हिन्दी उपन्यास जगत में इस शिल्प कौशल का श्रीगणेश किया "इस तरह की प्रथा हिन्दी क्या भारतीय साहित्य में भी नहीं थी ।"[2] कुछ आलोचक "कल्याणी" की कथा सच्ची घटना पर आधारित भी मानते हैं "कल्याणी की कहानी लेखक ने सच्ची घटित घटना के आधार पर ही रची है ।"[3] इस केलिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है ।

कथा फलक बहुत छोटा है । कल्याणी ही उपन्यास की आत्मा है । उसे निकाल दिया जाय तो पूरा उपन्यास बेजान हो जाएगा । इस में कथा नाममात्र के लिए है । कथा प्रारंभ होती है कल्याणी की मृत्यु के बाद । यहाँ से समय विपर्यस्तता के प्रयोग से कथा विकसित होती है । वकील साहब कल्याणी और उस के पति डॉ॰असरानी की पूर्वकथा सुनाता है । समय-विपर्यय के प्रयोग के कारण कथा का क्रम बिगड तो गया है । मिसाल के तौर पर कल्याणी वकील के सामने पहले अपना वर्तमान जीवन प्रस्तुत करती है । पर उपन्यास के तेरहवीं परिच्छेद से ही पाठकों को कल्याणी के विवाह-पूर्व प्रसंगों की जानकारी मिलती है । तब ही पाठक को डॉ॰ असरानी का वास्तविक स्वभाव समझ में आ जाता है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ॰10
2. देवराज उपाध्याय - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - पृ॰76
3. डॉ॰ कृष्णनाग - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰219

यहाँ गौण पात्र श्रीधर के माध्यम से कथा का विकास प्रस्तुत किया गया है । वकील साहब को श्रीधर ही कल्याणी के बारे में समाचार लाकर देता है । कल्याणी के जीवन के विविध प्रसंग उस के चरित्र की विशेषताएँ, उस के विषय में फैले विविध अफवाह आदि श्रीधर ही वकील साहब को सुनाता है । जब कल्याणी वकील साहब से संपर्क स्थापित नहीं कर पाती तथा अपनी कथा कह नहीं पाती, तब श्रीधर ही उस का स्थानापन्न बनता है । लेखक ने कथा का पर्याप्त अंश श्रीधर से कहलवाया है । एक सीमा तक अपना उत्तरदायित्व अंशत: उस पर डालकर कार्यमुक्त हो गया है ।

"कल्याणी" की कथावस्तु करुणा से आद्र है । कल्याणी डाक्टर है, फिर भी पति से शोषित । वह अपने वैयक्तिक जीवन में इतनी उलझी हुई है कि सामाजिक स्वरूप भूल ही गयी हो । कल्याणी की आत्मपीडा, मानसिक घुटन और अन्तर्मन की वेदना जनित क्रिया - प्रतिक्रिया कथा के साथ-साथ विकसित होती है । जैनेन्द्र ने घटना का संकेत मात्र देकर कथा को आगे बढाने की शिल्पविधि अपनायी है । उदाहरण में डा॰ असरानी द्वारा कल्याणी को पीटने का संकेत मात्र दिया है । "कल्याणी" के कथा शिल्प में "हैल्यूसिनेशन" नामक मनोरोग का चित्रण भी है । कल्याणी के अचेतन मन में अपने पति डा॰ असरानी के विरुद्ध जुगुप्सा है । जीवन के प्रति घोर असंतोष और अतृप्त भावना कल्याणी को "हैल्यूसिनेशन" रोग का शिकार बनाती है । इसलिए उसे ऐसा लगता है कि उस के गुसलखाने में एक पुरुष द्वारा एक गर्भवति स्त्री की हत्या की गई है । वास्तव में कल्याणी का "ईगो" ही उस स्त्री के रूप में प्रकट हुआ है । उस की हत्या करनेवाला पुरुष उस के पति का ही प्रतिरूप है । उपन्यास के बीच बीच की अस्पष्टता या अव्यक्तता ने कथाशिल्प को शिथिल बनाया है ।

"कल्याणी" की कथा प्रश्नांत है । कल्याणी की आकस्मिक मृत्यु की सूचना इन शब्दों में दी गई है "कल्याणी अब नहीं रही । यह मैं ही क्यों जानूं कि वह कैसे मरी ? मौत में जानने को भी क्या ? मुझे खबर दोपहर बाद मिली । मालूम हुआ कि सवेरे तीन बजे उन्होंने पुत्र को जन्म दिया । तब स्वस्थ थीं, प्रसन्न थीं लेकिन कुछ देर बाद अचानक हृदय की गति बन्द हो गई । अचानक ? शायद चलो खेल समाप्त हुआ । श्रीधर ने बताया कि अभी दोपहर तो लोग अंत्योष्टि से लौटे हैं । मुझे सूचना मिली तब सब निपट चुका था ।"[1]

"कल्याणी" में तीन चौथाई भाग अनकहा रखकर सिर्फ एक ही हिस्सा प्रस्तुत किया गया है । कल्याणी ने विलायत में पढ़ते समय एक भारतीय युवक से प्रेम किया था । लेकिन वह प्रेम क्यों असफल हुआ ? चार पाँच दिन कल्याणी असरानी के घर से गायब हो जाती है । तब वह कहाँ थी ? विलायत से सुशिक्षित होकर आई कल्याणी क्यों पति का मार-पीट सहती है ? इसी तरह बहुत सारी रहस्यात्मकता और अस्पष्टता कथावस्तु को घेर कर रहती है । ये सब कथा-शिल्प को दुर्बल बनाते हैं । जैनेन्द्र के "जयवर्धन" का कथा-शिल्प भी "कल्याणी" के समान है ।

2. जयवर्धन

"जयवर्धन" का प्रकाशन 1957 में हुआ । इस उपन्यास में भी गौण पात्र द्वारा ही कथा प्रस्तुत की गयी है । "जयवर्धन" में कथा को प्रामाणिक बनाने के लिए तिथियों के साथ डायरी शैली का प्रयोग भी किया है । उपन्यास की कथा, गौण पात्र अमरीकी पत्रकार श्री बिलदर हूस्टन की डायरी के पन्नों से मिलती है । उपन्यासकार डायरी को वास्तविक बनाने की पूरी कोशिश करता है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.169

डायरी में 21 मार्च की तिथि देकर कोष्ठक में लिखा है "22 मार्च क्योंकि रात का अब डेढ बजा है ।"[1] मानों किसी ने सचमुच डायरी देर रात गए लिखी हो । इसी तरह 27 मार्च का पन्ना खाली है । उस दिन का कोई उल्लेख भी नहीं । इस तरह के सूक्ष्म प्रयोग ने उपन्यास के कथा-शिल्प को अधिक वास्तविकता का आभास दिया है ।

अमरीकी पत्रकार विलवर हूस्टन भारत के राष्ट्रपति जयवर्धन पर अपनी पुस्तक की तैयारी के सिलसिले में आए थे । वे दार्शनिक भी थे । इस उपन्यास की कथावस्तु पचास वर्ष आगे की है जिसे फैंटसी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । हूस्टन की डायरी 21 फरवरी 2001 से 15 अप्रैल 2007 तक भारत में लिखी गई । हूस्टन की पूरी सहानुभूति जयवर्धन के साथ है । उपन्यास का आधार जयवर्धन के त्यागपूर्ण जीवनादर्शों की व्याख्या है ।

जयवर्धन के जीवनादर्शों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कथा का विकास किया है । इला जयवर्धन की प्रेमिका है जो पिता की इच्छा के विरुद्ध अविवाहित रूप में ही जयवर्धन के साथ रहती है और बाद में आचार्य की अनुमति से जयवर्धन से विवाह कर लेती है । जैनेन्द्र ने यहाँ स्त्री-पुरुष के बीच विवाहेतर संबंधों की संभावना की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है । उपन्यास में जयवर्धन के रूप में एक ऐसे व्यक्ति को चित्रित किया गया है जो निर्लोभी है तथा राजपद को भी त्यागने केलिए तैयार है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - जयवर्धन - पृ.170

घटना संकेत के ज़रिए कथा को आगे बढ़ाने की शिल्पविधि यहाँ भी देख सकते हैं । उदाहरण केलिए जयवर्धन के प्रधानमंत्री बनने का संकेत मात्र देकर कथा आगे चलती है । "जयवर्धन" में नाटकीय तथा आकस्मिक प्रसंगों के द्वारा भी कथा का विकास किया गया है । इन्द्रमोहन का एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में मिस्टर हूस्टन से मिलना और अधिकारी की पोशाक धारण कर के हूस्टन के डिब्बे में प्रवेश करना आदि नाटकीय या आकस्मिक है । उपन्यास का अंत रहस्यपूर्ण वातावरण में होता है । जयवर्धन और इन्द्रमोहन उपन्यास के अंत में सहसा अप्रत्यक्ष हो जाते हैं । कथा का उपसंहार प्रश्नांत बनकर रह जाता है ।

3. आत्मकथात्मक कथा-शिल्प

कथा कहने केलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार आत्मकथात्मक पद्धति का सब से अधिक सहारा लिया है । इस से पात्र अपने सूक्ष्मतम मानसिक भावों को अनायास प्रस्तुत कर पाते हैं । जैनेन्द्र के त्यागपत्र, सुखदा, व्यतीत, मुक्तिबोध, अनंतर, अनाम स्वामी, इलाचन्द्रजोशी के लज्जा, सन्यासी, जहाज का पंछी, जिप्सी, कदि की प्रेयसी, अज्ञेय के शेखर : एक जीवनी आदि उपन्यास का कथ्य शिल्प आत्मकथात्मक है ।

त्यागपत्र

जैनेन्द्र का 1939 में प्रकाशित लघुतम उपन्यास है "त्यागपत्र"। इस की कथा का आधार मृणाल का व्यक्तित्व है । साथ ही मृणाल के भतीजा प्रमोद की स्वार्थवृत्ति और मिथ्यादर्श की

कथा भी है । इस में सामाजिक समस्याओं को भी उठाया गया है । "त्यागपत्र" में कथा तो नाममात्र का है । जैनेन्द्र ने यहाँ सीमित कानवास पर मृणाल और प्रमोद की मानसिक जगत की कथा को गहरी, अमिट रेखाओं द्वारा रूपाकार दिया है ।

"कल्याणी" की तरह जैनेन्द्र यहाँ कथा आरंभ करने के पहले पाठकों को वास्तविकता का भ्रम दिलाने के लिए कथा-शिल्प में एक सत्यपत्र जोड देते हैं "सर एम॰दयाल जो इस प्रांत के चीफ़ जज थे और जजी त्यागकर इधर कई वर्षों से हरिद्वार में विरक्त जीवन बिता रहे थे, उन के स्वर्गवास का समाचार दो महीने हुए पत्रों में छपा था । पीछे उन के कागज़ों पर उन के हस्ताक्षर के साथ एक पांडुलिपि पाई गई जिस का अंग्रेज़ी अनुवाद यहाँ दिया गया है और इसे "त्यागपत्र" नाम दिया गया है ।"[1]

"त्यागपत्र" में नायक प्रमोद पूर्वदीप्ति के सहारे कथा प्रारंभ करता है "पर, उन बुआ की याद जैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है, क्या वह याद अब मुझे चैन लेने देगी ? उसके मरने की खबर अभी पाकर बैठा हूँ ।"[2] यहाँ प्रमोद अपनी बुआ की याद करता है । प्रेमचंद युगीन उपन्यासों के कथा-शिल्प की तरह यहाँ कथा के प्रारंभ में किसी समस्या का संकेत भी है ।

जैनेन्द्र ने कथा-विकास के लिए समय-विपर्यस्तता का प्रयोग किया है । इसलिए कथा में घटनाओं का क्रम बिगड जाता है । मृणाल की

---

1. जैनेन्द्र - त्यागपत्र - पृ॰7
2. वही - पृ॰9

मृत्यु के बाद ही उस के यौवनकाल और बाल्यकाल की घटनाएँ क्रमहीन होकर आती हैं ।

डा॰ राधेश्याम कौशिक के शब्दों में "हिन्दी उपन्यास के कथानक विकास की यह पद्धति जैनेन्द्र की ही देन है । जैनेन्द्र ने इस पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम "त्यागपत्र" में किया था ।"[1]

इस उपन्यास में कथानक नाममात्र है । मृणाल को बचपन में ही अपनी सहेली शीला के भाई से प्रेम हो गया । लेकिन प्रमोद के मा॰-बाप ने मृणाल का विवाह एक वयस्क व्यक्ति के साथ करवाया । वह अत्याचारी पति मृणाल को घर से निकाल भी देता है । परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह एक कोयले के व्यापारी का आश्रय ग्रहण करती है । गर्भवती मृणाल को वह भी छोड जाता है । मृणाल का बच्चा मर जाता है । बाद में वह सांसारिक कष्टों को भोगते हुए जीवन बिताती है । घटनाओं की अपेक्षा घटनाओं की प्रतिक्रिया से कथानक का विकास होता है ।

पति द्वारा मृणाल का त्याग, कोयलेवाले के घर में मृणाल की पत्नी के रूप में रहना आदि घटनाओं का केवल संकेत देकर उपन्यासकार ने कथा को विकसित किया है । मृणाल का वेश्याओं और चोरों जैसे नीच संगत में रहने की घटना तथा मृणाल की मृत्यु तक का भी संकेत मात्र दिया गया है । घटनाओं की आकस्मिकता भी इस में देख सकते हैं । प्रमोद का लड़की देखने जाना, वहाँ मृणाल को बच्चों की अध्यापिका के रूप में देखना बिलकुल आकस्मिक है ।

---

1. डा॰ राधेश्याम कौशिक - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास - पृ॰82

उपन्यास का प्रारंभ मृत्यु की जिस पूर्वस्मृति से हुआ था, अन्त भी उसी दुखपूर्ण स्थिति में होता है । प्रमोद अपनी बुआ की मृत्यु का समाचार पाकर सन्न रह जाता है । अपनी स्वार्थ वृत्ति पर उसे घोर पश्चाताप होता है । वह जजी से त्यागपत्र दे देता है । वह आत्मविश्लेषण करते हुए कहता है "बुआ तुम गई । तुम्हारे जीते मैं राह पर न आया । अब सुनो मैं यह जजी छोड़ता हूँ । .... औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे सिखा न जाय, आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा । यह वचन देता हूँ ।"[1]

उपन्यास में कथा के बीच बीच अस्पष्टता या रहस्यात्मकता का बादल भी छाया हुआ है । इसी कारण से कथा-शिल्प शिथिल बनता है । प्रमोद के माता-पिता ने मृणाल के साथवाले रिश्ते को तोडने की जो बात कही उसे जैनेन्द्र ने अस्पष्ट रूप में ही चित्रित किया है । उसी प्रकार शीले के भाई की चिट्टी पढकर मृणाल नाराज़ हो जाती है । लेकिन नाराज़गी का कारण स्पष्ट नहीं है । इस तरह की अस्पष्ट घटनाएँ कथा-शिल्प को क्षीण करती हैं । "त्यागपत्र" में मुख्य कथा के अलावा प्रासंगिक कथाएँ नहीं है । यह भी इस की शिल्पगत विशेषता है । जैनेन्द्र के "सुखदा" का कथा-शिल्प भी "त्यागपत्र" से भिन्न नहीं है ।

सुखदा

जैनेन्द्र की अन्य रचनाओं की तुलना में 1953 में प्रकाशित "सुखदा" कमज़ोर और महत्वहीन कृति है । इस की शैली आत्मकथात्मक है । कथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए जैनेन्द्र ने "सुखदा की

---

1. जैनेन्द्र कुमार - त्यागपत्र - पृ.39।

हस्तलिखित सामग्री की चर्चा की है । उपन्यास के अंत में भी प्रामाणिकता सिद्ध करने का परिश्रम दृष्टव्य है । अस्पताल में पड़ी हुई सुखदा कहती है, "डाक्टर साहब आ रहे हैं - हाय रे, क्या हो ? लेकिन देखते हो, मैं कैसी अबला हूँ । अच्छा हो तो याद रखना विदा ।"[1]

कथा सुखदा के अहं और उस के अन्तर्मन की प्रतिक्रिया पर आधारित है । सुखदा के अहंभाव के कारण पति के साथ वह निभ नहीं पाती । वह आजीवन आत्मदाह से ग्रस्त पश्चाताप की ज्वाला में झुलसती रहती है । सुखदा का यह अन्तर्द्वन्द्व इस कथा का आधार है । पूर्वदीप्ति के सहारे सुखदा अपनी कथा प्रारंभ करती है । "त्यागपत्र" की तरह उपन्यास की समस्या का संकेत आरंभ में दिया है । सुखदा की समस्या उस की अहमन्यताजन्य असफलता है ।

समय विपर्यस्तता का प्रयोग इस में भी किया है । उपन्यास के शुरू के पृष्ठ सुखदा के जीवन के उत्तरार्द्ध या अंत के पृष्ठ है । अस्पताल में पड़ी सुखदा से एक बार मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए पति श्रीकांत चिट्टी भेजता है । लेकिन वह साफ इंकार करती है । दूसरे परिच्छेद से सुखदा की कहानी शुरू होती है । आर्थिक दृष्टिकोणों के वैषम्य के कारण सुखदा और उस के पति श्रीकांत में अनबन होने लगता है । दो या तीन पात्रों से निर्मित सूक्ष्म कथा शिल्प है "सुखदा" का । कथानक घटनाओं के वैचित्र्य से आक्रांत है । कथा को आगे बढ़ाने केलिए आकस्मिक एवं असाधारण घटनाओं का सहारा भी लिया है । पुत्र को नैनिताल भेजकर पढ़ाने केलिए सुखदा के आभूषणों को बेचना, लाल द्वारा उसी आभूषणों को वापस ले आना,

---

1. जैनेन्द्र - सुखदा - पृ.202

हरीश की गिरफ्तारी में सहायक बनकर प्रमोद का सरकार से पाँच हज़ार रूपये का इनाम स्वीकार करना, इसी कारण से सुखदा का पति को छोड़कर मायके जाना आदि घटनाएँ कथा-शिल्प को क्षीण बनाती हैं ।

उपन्यास का अंत अवसादपूर्ण है । सुखदा का अहं उसे अपने पति और पुत्र से वंचित कर देता है । उसे अस्पताल में विषादपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है ।

व्यतीत

1953 में प्रकाशित "व्यतीत" की कथा का आधार अहं और सेक्स ही है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अज्ञेय के तीनों उपन्यासों का आधार भी मानव की ये मूल प्रेरणाएँ ही है । "व्यतीत" नायक जयंत की अनीता के प्रति रूग्ण आसक्ति का लेखा-जोखा है । कथा-शिल्प त्रिकोणात्मक है । इस में एक पुरूष और दो स्त्रियों के बीच का संबंध चलता है । कथानक सूक्ष्म है । "व्यतीत" का नैरेटर ही इस का नायक है । पैंतालीस वर्ष का सन्यासी जयंत अपने विगत जीवन की कथा सुनाते हैं, "व्यतीत । आज इस जन्मतिथि के दिन सबेरे-ही-सबेरे यह क्या शब्द उठकर मेरे सारे अंतरंग में समाता जा रहा है । वह मेरे रोम रोम की शिरा-शिरा को बेध रहा है । क्या इस पैंतालीस वर्ष की अवस्था में यही अनुभव करूँ कि मैं व्यतीत हूँ ।"[1] इस उपन्यास के आरंभ के बारे में डा॰ सरोजिनी त्रिपाठी कहती है "विगत को वर्तमान में प्रस्तुत कर उपन्यास का प्रारंभ करना असाधारणता का द्योतक है ।"[2] "सुखदा" के

---

1. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ॰1
2. डा॰सरोजिनी त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास - पृ॰160

कथा शिल्प के समान इस में भी कथा अंत या उत्तरार्द्ध से ही प्रारंभ होती है । कथा विकास के लिए पूर्वदीप्ति का सहारा भी लिया है ।

जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की तरह इस का आरंभ भी चिंतनपरक है । यहाँ नायक जयंत अपनी कथा का श्रीगणेश अपने व्यतीत जीवन के अनुभव की व्यथा से करता है । कथा समय-विपर्यस्तता से आगे बढ़ती है । समय-विपर्यस्तता के कारण वर्तमान और अतीत की घटनाएँ क्रम विहीन होकर कथा में आती है । "व्यतीत" का प्रधान कथासूत्र जयंत और अनीता के प्रेम संबंध से प्रारंभ होता है जो उपन्यास के अंत तक चलता है । लेकिन अनीता का विवाह मिस्टर पुरी के साथ होता है । अनीता के प्रति जयंत की आसक्ति उस के जीवन को अशांत, कठोर, पलायनवादी और जटिल बना देती है । कथा विकास के लिए वस्तु नियोजन में संयोगतत्व का भी प्रयोग किया है । अनीता के विवाह के बहुत समय बाद एक दिन अनीता एकाएक जयंत की मटमैली कोठरी में पहुँचती है । इस शिल्प कौशल के बारे में श्री॰ ओमप्रकाश शर्मा कहता है, "आजकल का सजग बुद्धिवादी पाठक इसे ग्रहण नहीं करता । प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में यह कथावस्तु का प्राण तत्व था । प्रेमचंद में इस तत्व की प्रधानता से नहीं रही, परंतु पर्याप्तता है ।"[1]

दूसरा कथा सूत्र जयंत और चन्द्री का है । जयंत के मित्र कुमार अपने रिश्तेदार चन्द्री का विवाह जयंत के साथ करता है । विवाह के बाद भी जयंत के मन में अनीता के प्रति आसक्ति बनी रहती है । इसलिए चन्द्री जयंत को छोड़कर चली जाती है । यहाँ कथा शिल्प में जयंत और चन्द्री का बिछुडन, चन्द्री का पुनर्विवाह आदि का

---

1. ओमप्रकाश शर्मा - जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प - पृ॰46

संकेत मात्र देकर उपन्यासकार कथा को आगे चलाता है । "व्यतीत" में सुमिता की कथा, कुमार और उदिता की कथा, बुधिया की कथा, श्रीमती कपिल की कथा आदि प्रासंगिक रूप में आती है । लेकिन ये सब नायक जयंत के चरित्र विकास में सहायक बनते हैं ।

कथा शिल्प में असाधारण और आकस्मिक घटनाओं का चित्रण भी है । जयंत का युद्धक्षेत्र में जाना, घायल होकर अस्पताल में रहना, वहाँ से अनीता और पुरी के साथ होटल जाना, होटल में अनीता और जयंत को एक कमरे में छोड़कर पुरी का अप्रत्यक्ष होना आदि इस के लिए उदाहरण है ।

"व्यतीत" का कथानक दुखांत है । चन्द्री और अनीता भी जयंत को छोड़कर जाती तो वह पश्चाताप विवश हो जाता है "लेकिन लगता है, जीवन व्यर्थ भर ही है । क्यों कहीं इसे देकर खो नहीं सका, ताकि कुछ पा जाता और यों भटकता न फिरता । लेकिन सुनता हूँ, दूसरा जन्म भी है, अब तो उस में आस है ।"[1] जयंत के अहं का दुष्परिणाम चित्रित करना यहाँ जैनेन्द्र का लक्ष्य है । उपन्यास की पात्र-बहुलता के कारण उपन्यास के अंत में कथाओं को समेटने केलिए उपन्यासकार को बहुत परिश्रम करना पड़ता है । यह कथा शिल्प को दुर्बल भी बनाता है ।

मुक्तिबोध

1965 में प्रकाशित इस उपन्यास को 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है । "मुक्तिबोध" में कथा विभिन्न

---

1. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.87

परिच्छेदों में विभाजित है । जैनेन्द्र ने इस उपन्यास का प्रारंभ प्रमुख समस्या के चित्रण द्वारा किया है । उपन्यास का नायक सहाय गाँधीवादी है । वह मंत्रिपद स्वीकार करने के बारे में कुछ निर्णय लेने में असमर्थ निकलता है । सहाय राजनीति तथा हर प्रकार की प्रतिबद्धता से मुक्त होकर जीना चाहता है । पर मुक्ति कहाँ और किस में है ? अपने को भूलकर औरों का हो जाने में है या औरों से कटकर अपने में खो जाने में ? यह उस की समझ में नहीं आ रहा और वह "स्व" तथा "पर" के बीच झूल रहा है । सहाय की यह मानसिक संघर्ष ही "मुक्तिबोध" का आधार है ।

उपन्यास के कथा शिल्प में त्रिकोणात्मकता दिखाई पड़ती है । सहाय और उन की पत्नी राजश्री के बीच दर की पत्नी नीलिमा आती है । यहाँ भी "व्यतीत" के समान एक पुरुष और दो स्त्रियों का संबंध चलता है । यह त्रिकोणात्मक व्यक्ति संबंध जैनेन्द्रीय कथाशिल्प की सविशेषता ही है । मलयालम के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री·एम·डी· वासुदेवन नायर इस त्रिकोणात्मक संबंध के बारे में कहते हैं, "यह एक सार्वजनिक पाटेर्न हैं, फिक्सेशन है । यह जीवन का ही भाग है ।"[1] इस त्रिकोणात्मकता के विकास से कथा आगे बढ़ती है ।

ज़िन्दगी के बारे में, स्वयं अपने बारे में सहाय एक दार्शनिक बन कर सोच विचार करता है "काफी ज़िन्दगी मैं चल आया हूँ । क्या चाहता था मैं कि जब वह ज़िन्दगी खुली ? ..... आज़ादी के आन्दोलन में पड़कर लगा कि मैं बँधा नहीं हूँ, खोल रहा हूँ और खुल रहा हूँ । वहाँ से क्या कैसे मोड़ खाता हुआ मेरा जीवन

1· कलाकौमुदी - मलयालम पत्रिका - 2000 जुलाई 23, पृ·20

अब यहाँ तक आया है, इस की बात आगे हो सकेगी । लेकिन क्या अब भी अनुभव हो सका है मुझे उस का कि जिसे मुक्ति कहते हैं ? मैं जानना चाहता हूँ कि मुक्ति का वह बोध क्या है ? वह पारिस्थितिक है ? या नहीं, आत्मिक है ? या .... ?" स्पष्ट है कि राजनीतिक पृष्ठभूमि के बावजूद उपन्यास में पात्रों की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । समय विपर्यस्तता द्वारा घटनाओं के क्रम को पलटने की शिल्प कुशलता इस में भी पाई जाती है । "मुक्तिबोध" की मूल समस्या मंत्रि पद को लेकर है । उस की अंतरात्मा मंत्रि पद स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं है, परंतु उन की पुत्री अंजु, दामाद, पत्नी राजश्री, सहयोगी ठाकुर आदि अपने अपने स्वार्थ के लिए सहाय का मंत्रि बनना चाहते हैं । इस सार्वजनिक पक्ष के साथ उस का एक पारिवारिक पक्ष भी है । पिता की अव्यावहारिक दृष्टि के प्रति बेटा वीरेश्वर और परिवार के सदस्य कट्टर विरोध करते हैं । साधारण रूप में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथा-शिल्प में उपकथा को कोई स्थान नहीं है । जैनेन्द्र ने पहली बार "मुक्तिबोध" में उपकथा को स्थान दिया है । लेकिन यह प्रयोग कथा शिल्प को क्षीण करता है । क्योंकि काफ़ी दूर तक दोनों कथाएँ समांतर रूप में चलती हैं । अंतिम चरण में आकर वीरेश्वर-सहाय की कहानी बिना किसी सिद्धि के अचानक विलुप्त हो जाती है ।

जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों के अंत की अपेक्षा "मुक्तिबोध" का अंत प्रसादपूर्ण है । नीलिमा के स्नेहपूर्ण परिश्रम से सहाय मंत्रिपद स्वीकार करने केलिए तैयार हो जाता है । एक राजनीतिज्ञ की वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक-जीवन रेखाओं को प्रस्तुत कर

---

1. जैनेन्द्रकुमार - मुक्तिबोध - पृ.18

उपन्यास समाप्त हो जाता है । जैनेन्द्र के "अनंतर" शीर्षक उपन्यास की कथा भी "मुक्तिबोध" के समान परिच्छेदों में विभाजित है ।

अनंतर

"मुक्तिबोध" के समान 1968 में प्रकाशित इस उपन्यास में भी दार्शनिकता को प्रमुख स्थान है । इस की रंगभूमि भी समाज न होकर व्यक्ति का मन है । ओमप्रकाश शर्मा के शब्दों में, "थोडे के अंतर के साथ "मुक्तिबोध" की ही कथा दोहराई गई है । यह अंतर अंतिम परिणति का है परंतु युवा तथा प्राचीन पीढ़ी का द्वन्द्वाभास ज्यों का त्यों है, मात्र पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं ।"[1] मुक्तिबोध के पिता-पुत्र, सहाय वीरेश्वर की तरह यहाँ भी पिता-पुत्र, प्रसाद प्रकाश के दृष्टिभेद और विचार अंतराल इस उपन्यास में भी तीव्र है ।

"अनंतर" का कथा-शिल्प आत्मकथात्मक होने पर भी बीच बीच उपन्यासकार प्रत्यक्ष होकर कुछ दार्शनिक प्रस्ताव करता है । यह इस की विशेषता है । छठे और सातवें अध्याय के आरंभ में इसी तरह के प्रस्ताव हैं । लेकिन कथा-प्रवाह में यह बाधक बनता है । "अनंतर" में नायक प्रसाद स्वयं अपनी कहानी सुनाता है । कथा विगत जीवन की नहीं वर्तमान की है । इसलिए पाठक को प्रसाद का जीवन दृश्यात्मक है । "मुक्तिपथ और "जयदर्शन" में भी इसी तरह के दृश्यात्मक शिल्प विधान का प्रयोग हुआ है । प्रसाद और उस की पत्नी रामेश्वरी के बीच अपरा आती है । वहाँ से इस त्रिकोणात्मकता का विकास होता है । लेकिन यह प्रेम संबंध विचित्र लगता है । पहले अपरा प्रसाद की प्रेमिका

---

1. ओम प्रकाश - जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प - पृ.52

बनती है । बाद में वह प्रसाद की बेटी चारू और उस के पति के बीच आती है । गुरू आनंदमाधव द्वारा आयोजित किसी सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रसाद अपरा के साथ आबू जाता है । ट्रैन में अपरा प्रसाद की पत्नी की तरह व्यवहार करती है । लेकिन आदित्य के साथ अपरा के संबंध का केवल सूचना मात्र उपन्यास में मिलता है । अपरा के शब्दों से ही पाठक उन दोनों के संबंध के बारे में जानते हैं । अपरा फोन पर प्रसाद से कहती है "सुनिए, आप के आदित्य मुझे चाहने लग गए हैं, वजह मैं नहीं जानती ।"[1]

अनंतर की कथावस्तु विशृंखलित है । प्रसाद, रामेश्वरी और अपरा की कहानी, आदित्य, चारू और अपरा की कहानी गुरूचन्द्रमाधव और वन्या की "शांतिधाम" की योजना अपना अस्तित्व चाहनेवाले प्रकाश की उदासीनता और गुरू के निर्देश से प्रसाद द्वारा दफ्तर की चाबी प्रकाश को सौंपने की घटना आदि कथा वस्तु को बिखरा देते हैं । जैनेन्द्र अज्ञेय की तरह यहाँ कथा विकास के लिए पत्रों की सहायता भी लेते हैं । अपरा के अतीत की जानकारी प्रसाद के नाम अपरा की भेजी हुई चिट्ठियों से पाठक प्राप्त करते हैं ।

"अनंतर" का उपसंहार प्रसादपूर्ण है । चारू को आदित्य के हाथों सौंपकर ही अपरा चली जाती है । इसलिए प्रसाद और रामेश्वरी भी संतुष्ट हो जाते हैं । अपना अस्तित्व खोजनेवाले प्रकाश को अपना बिज़िनेज़ सौंपकर प्रसाद उस की राह से स्वयं हट जाता है । पिता और पुत्र की यह उपकथा उपन्यास में अप्रधान है ।

.....

1. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ.106

अनामस्वामी

1974 में प्रकाशित है । इस का नायक ही कथा का नरेटर है । जैनेन्द्र के अंतिम दो उपन्यास "अनामस्वामी" और "दशार्क" में संरचनात्मक बिखराव और शैथिल्य सब कहीं विद्यमान है ।

"त्यागपत्र" लिखने के प्रश्चात् जैनेन्द्र ने अपने मन के उलझन को अभिव्यक्त करने के लिए "अनामस्वामी" लिखा । 1942 में शुरू किए गए इस उपन्यास को समाप्त करने केलिए 32 वर्ष लगे । उपन्यासकार के शब्दों में "त्यागपत्र देने के अनंतर फालतू बने उस के जज महोदय को मैं ने फिर अपने प्रयोजन से मिला लिया । मैं बस उस बहाने अन्तर्मन की उधेड़-बुन को बाहर कागज़ पर उतार कर छुट्टी पर लेना चाहता था ।" कथा की प्रामाणिकता स्थापित करने का उपन्यासकार का परिश्रम स्पष्ट है ।

इस उपन्यास में भी कथावस्तु नाममात्र की है । "त्यागपत्र" के प्रमुख पात्र प्रमोद के मित्र जज दयाल यहाँ कथा सुनाता है । प्रमोद यहाँ अनामस्वामी है । उस का आश्रम कथा की पृष्ठभूमि मात्र है । अहं और काम का दुष्परिणाम इस कथा का आधार है । उपन्यास का नायक शंकर उपाध्याय है । जिस प्रकार "व्यतीत" में जयंत अनीता के प्रति आसक्त है उसी प्रकार उपाध्याय प्रेमिका वसुंधरा के प्रति रूग्णासक्ती रखता है जो उस के सर्वनाश का कारण बनती है । वसुंधरा का विवाह कुमार के साथ होता है । तब से उपाध्याय के मन में प्रतिहिंसा भाव बना रहता है । उपाध्याय ईर्ष्यावश एक अन्य स्त्री से विवाह कर लेता है और उस की हत्या भी करता है । वसुंधरा के अंत तक उपाध्याय उसे

---

1. जैनेन्द्रकुमार - अनामस्वामी - पृ.16।

छोड़ता नहीं है । त्रिकोणात्मक कथा शिल्प में जजदयाल की दुहिता उदिता की उपकथा भी जुड़ी हुई है । उदिता घरवालों को छोड़कर उपाध्याय के "तमसोत्थान" नामक संस्था में काम करती है । उदिता और दयाल के बीच दृष्टिकोणगत द्वन्द्व चलता है । "मुक्तिबोध" में सहाय और वीरेश्वर के बीच में और "अनंतर" में प्रसाद और प्रकाश के बीच में जैनेन्द्र ने इसी द्वन्द्व का चित्रण किया था ।

कथा विकास में समयविपर्यस्तता का प्रयोग हुआ है । अत: घटनाएँ क्रम रहित हो गयी है, कथानक विशृंखलित भी । उदाहरण केलिए अनामस्वामी के आश्रम में शंकर उपाध्याय और वसुंधरा पर केन्द्रित कथा झट से उपाध्याय और उदिता पर केन्द्रित होकर अमरीका तक पहुँच जाती है । वहाँ से जल्दी ही उपाध्याय को आश्रम लौटाता है । वास्तव में "अनामस्वामी" में कथा ऊबड़ खाबड़ है उस में साफ सुथरा प्रवाह नहीं है ।

जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की तरह इस में भी कथा का कोई क्रमिक विकास नहीं है । नाटकीय रूप में उपाध्याय द्वारा वसुंधरा की हत्या, उपाध्याय की आत्महत्या आदि असाधारण घटनाएँ कथा शिल्प को दुर्बल बनाती हैं । उपन्यास के अंत में उपन्यासकार अपने उपन्यास को कथावस्तु के ह्रास से बचाने के लिए परिशिष्ट में उदिता की कहानी संक्षिप्त रूप में देता है ।

उपन्यास की वैचारिक पृष्ठभूमि प्राय: अन्य उपन्यासों की अपेक्षा ठोस है । जैनेन्द्र ने यहाँ ब्रह्मचर्य, प्रेम, अहिंसा, समता, नियति कर्म, विरक्ति, विवेक जैसे जटिल प्रश्नों पर बहुत ही सुलझा हुआ विचार प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास का अंत दुखपूर्ण है ।

शंकर उपाध्याय वसुधरा की हत्या कर के आत्महत्या कर लेता है । जैनेन्द्र ने यहाँ उपाध्याय के अहं के दुष्परिणाम को सूचित किया है । उदिता घरवालों को छोड़कर अमरीका में आधुनिक विचारधारा के अनुसार जीवन बिताती है । उपन्यास का मूल स्वर करुणा है । इस प्रकार शिल्प में कुछ नवीनता दिखाई देते हैं ।

अनामस्वामी की तरह मानव मन की मूलभूत प्रेरणाओं को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है इलाचन्द्रजोशी का "लज्जा" ।

लज्जा

1946 में प्रकाशित "लज्जा" इलाचन्द्रजोशी का पहला उपन्यास "छायामयी" का संशोधित रूप है । जोशी के शब्दों में "छायामयी" नाम से जो उपन्यास मैं ने कई वर्ष पूर्व लिखा था "लज्जा" उसी का अल्प-संशोधित रूप है । मूल कहानी, भाव, भाषा तथा शैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है ।"[1] सुनीता, सुखदा, शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप आदि की तरह "लज्जा" का आधार भी अहं और सेक्स है । व्यक्ति के अचेतन मन में दबी हुई पशुवृत्तियों का चित्र जोशीजी ने यहाँ फ्रायड, एडलर जैसे मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों की सहायता से उकेरा है । नायिका लज्जा का डॉ॰ कन्हैयालाल के प्रति प्रेम और घृणा का चित्र उपन्यास में मिलता है । इस उपन्यास की कथा बिलकुल वैयक्तिक है । लज्जा की आत्मकथा पूर्वदीप्ति की सहायता से विकसित की गई है । जैनेन्द्र के "सुखदा" की तरह एक समस्या का उद्घाटन करते हुए उपन्यास प्रारंभ होता है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ॰3

"घृणा ! घृणा ! मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओतप्रोत है ।"[1] लज्जा का यह घृणा-भाव उसे विगत जीवन की ओर ले जाता है ।

जोशीजी को कथा-विकास के लिए अपनी निजी तरीका है । कथा के प्रारेभ में किसी रुग्णमानस पात्र की कहानी प्रस्तुत कर के उस की विक्षिप्त मन:स्थिति के उद्घाटन द्वारा वह कथा विकास करता है । लज्जा के मन में एक ओर डा॰ कन्हैयालाल के प्रति वासनामूलक आकर्षण है तो दूसरी ओर अपने भाई राजू के लिए भ्रातृप्रेम हैं । वासना और भ्रातृप्रेम का यह परस्पर संघर्ष तथा उस के दुष्परिणाम को लेकर कथा का विकास होता है । पर्दे की रानी, निर्वासित सन्यासी आदि उपन्यासों की तरह "लज्जा" में भी कथा विकास के लिए मनोवैज्ञानिक सूत्रों का प्रयोग किया है । जैनेन्द्र के उपन्यासों की तरह भावि घटनाओं के संकेत देने का शिल्प-कौशल यहाँ भी देख सकते हैं । डा॰ कन्हैयालाल के प्रति अपने भावि प्रणय निवेदन का संकेत देते हुए लज्जा कहती है, "किशोरी मोहन मेरे रूप के भक्त हैं, ऐसे भक्तों की मुझे आवश्यकता है । पर डा॰ साहब को मैं अपना हृदय अर्पित करूँगी ।"[2]

"लज्जा" के कथा शिल्प में असाधारण घटनाओं का चित्रण भी हुआ है । लज्जा के मन में भाई राजू से अधिक प्रेमी कन्हैयालाल का प्रभाव अधिक है । इसलिए राजू हीनताग्रंथि का शिकार बन जाता है । घृणा, निराशा, विषाद, प्रतिहिंसा आदि भावनाओं से पीड़ित होकर वह आत्महत्या करता है । इस में लज्जा अपने को राजू का हत्यारा मानती है । इसलिए वह कन्हैयालाल से घृणा करती है । ये सारी असाधारण घटनाएँ कथा को नीरस बनाती हैं ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ॰5
2. वही - पृ॰34

"लज्जा" एक दुखांत उपन्यास है । अपने भाई राजू की आत्महत्या और पिता की मृत्यु का कारण लज्जा स्वयं अपने को मानती है । क्योंकि डा॰ कन्हैयालाल के प्रति उस का प्रेम ही परोक्ष में सर्वनाश का कारण बन जाता है । अंत में कन्हैयालाल लज्जा की सहेली कमलिनी पर आकृष्ट हो जाता है । लज्जा के मन में डाक्टर के प्रति घृणा भर जाती है । पश्चाताप की अग्नि में तप कर वह कहती है "दयामय मुझे बता दो कि मैं ने किसी पूर्वजन्म में स्वाभाविक नियमों का पालन कर के नारी का जीवन पूर्ण रूप से बिताया था नहीं ? अथवा वर्तमान जीवन की तरह मेरे सभी पूर्व जीवन भी अर्थहीन और लक्ष्यभ्रष्ट होकर व्यर्थता के गहन गह्वर में विलीन हो गये ।"[1] इस उपन्यास में घटनाओं के विवरण की अपेक्षा वैयक्तिक सूक्ष्म भावों के चित्रण को प्रमुख स्थान है । कथा फलक छोटे होने पर भी कथा-शिल्प की दृष्टि से "लज्जा" विफल श्रम नहीं है ।

जोशीजी के "सन्यासी" का कथा शिल्प भी "लज्जा" का जैसा है ।

सन्यासी

इलाचन्द्रजोशी का दूसरा उपन्यास "सन्यासी" 1929 के बाद 11 वर्ष के मौन कलासाधना के पश्चात् 1941 में लिखा गया । इन उपन्यास का आधार भी व्यक्ति के अहं का दुष्परिणाम है । इस उपन्यास का नायक नंदकिशोर एक अहंग्रस्त पात्र है । उसकी आत्मकथा के रूप में कथा प्रस्तुत की गई है । कथा विकास के लिए पूर्वदीप्ति पद्धति का सहारा लिया है । देश सेवा के सिलसिले में

---

1. इलाचंद्रजोशी - लज्जा - पृ॰164

साल भर जेल की सजा भुगत कर आए हुए नंदकिशोर अपने अतीत की कहानी सुनाता है "मैं ने सन्यासी का वेश धारण कर लिया है, संदेह नहीं । पर सन्यासी मैं न कभी था और न हूँ ।" उपन्यास के आरंभ में प्रमुख पात्र से संबंधित किसी समस्या का उद्घाटन कर के पाठकों में उत्सुकता पैदा करने का शिल्प-कौशल यहाँ भी है । लेकिन "लज्जा" की तरह "सन्यासी" की कथा बिलकुल वैयक्तिक नहीं है । इस में आर्यसमाज और सनातन धर्म में वैमनस्यपूर्ण साम्प्रदायिक संकुचितता, यूनिवर्सिटी की अव्यवहारिक और किताबी शिक्षा प्रणाली का दोष, राष्ट्रनेताओं का ढोंग और कम्यूनिस्टों की कोरी किताबी संवेदना देश की बढ़ती हुई निर्धनता जैसी सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है । कथा विकास के लिए जोशीजी ने मनोवैज्ञानिक सूत्रों की सहायता ली है । अहंवादी नंदकिशोर के समाजघाती तथा आत्मघाती स्वभाव के आधार पर कथा का विकास होता है । जैनेन्द्र के कथा शिल्पों की तरह त्रिकोणात्मक व्यक्ति संबंध का चित्रण यहाँ भी है । "अनंतर" की तरह "सन्यासी" में दो त्रिकोणात्मक कहानी है । मुख्य कथा नंदकिशोर, शांति और बलदेव की है । नंदकिशोर जब अपनी प्रेमिका शांति और मित्र बलदेव के संबंध को संदेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगे तब शांति नंद को छोड़कर चली जाती है । कथा शिल्प के दूसरे त्रिकोण में नंदकिशोर, जयंती और कैलाश है । कैलाश जयंती का प्रेमी है । लेकिन जयंती का विवाह नंदकिशोर के साथ होता है । बाद में जयंती आत्महत्या करती है । "लज्जा" के समान इस उपन्यास के कथा शिल्प में भी असाधारण घटनाओं का चित्रण है । नंदकिशोर तथा शांति का परस्पर आकर्षण और दोनों का पलायन, शांति को निराश्रय और असहाय अवस्था में छोड़ना, जयंती की आत्महत्या, पश्चाताप

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.1

विवश होकर नंदकिशोर द्वारा सन्यासी का वेश धारण करना आदि घटनाएँ असाधारण हैं । ये कथा वस्तु की सत्यता और रोचकता नष्ट करती हैं । उपन्यास में घटनाओं का संकेत मात्र देकर भी कथा विकास करता है । नंदकिशोर और शांति के पालायन का संकेत नंदकिशोर की वाणी से मिलता है "इस बंधनहीन विपुलाकांक्षा के आगे समाज का पीड़न तथा संसार का बंधन कितना तुच्छ है । शांति मुझे प्यार करती है और मैं उसे चाहता हूँ, क्या इतना ही यथेष्ठ नहीं है ?"[1]

उपन्यास का अंत अवसादपूर्ण है । जयंती आत्महत्या करती है और शांति अपने पुत्र को छोड़कर चली जाती है । अपने अहं के प्रायश्चित के लिए नंद सन्यासी बन कर देश-सेवा करता है । अपने जीवन की व्यर्थता नंदकिशोर इन शब्दों में प्रकट करता है "अब मैं सन्यासी हूँ न नेता .... पर मैं उन दोनों के अभाव का अनुभव कर रहा हूँ और संभवत: जीवन भर करता रहूँगा ।"[2] जोशीजी ने यहाँ व्यक्ति के अहंवाद पर घोर प्रहार करने का प्रयत्न किया है ।

जोशीजी ने लज्जा, सन्यासी, निर्वासित जैसे उपन्यासों में व्यक्ति मानस का सूक्ष्म चित्रण किया है तो जिप्सी, जहाज़ का पंछी आदि उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का ।

जहाज़ का पंछी

जोशी के औपन्यासिक शिल्प के दो आयाम हैं । लज्जा, सन्यासी, पर्दे की रानी, निर्वासित आदि व्यक्ति के मानसिक संसार का

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.8।
2. वही - पृ.46।

अनुसंधान करते हैं तो मुक्तिपथ, सुबह के भूले, जहाज़ का पंछी, ऋतुचक्र आदि समाज केन्द्रित है । "जहाज का पंछी" समाज केन्द्रित नवीन दृष्टि के लिए पर्याप्त उदाहरण है ।

"जहाज का पंछी" में एक मध्यवर्गीय शिक्षित युवक की लगभग दो दर्ष की कहानी है, जो आधुनिक विषमताजनित नगरजीवन के चंगुल में फंसकर बुरी तरह पिसता चला जा रहा है । युवक को विभिन्न सामाजिक समस्याओं के घेरे में पडना पड़ता है । इसलिए व्यक्ति विश्लेषण के साथ-साथ सामाजिकता भी उपन्यास की परिधि में आ गई है । यहाँ आवारा और निराश्रय नायक के अनुभवों द्वारा सामाजिक कुटिलता और विकृति की कलई खुल गई है ।

उपन्यास के कथानक की प्रमुख विशेषता यह है कि इस में नायक को नाम नहीं है । जोशीजी के अन्य उपन्यासों की तरह इस में भी मुख्य पात्र केन्द्र के रूप में विकसित होता है और कथा सूत्र उसके चारों ओर घूमता है । उपन्यास का नायक "मैं" अपनी आत्मकथा इस प्रकार प्रारंभ करता है "अंत में मुझे इस गली में शरण मिली है - कलकत्ता महानगरी के इस नरक में गंदगी को भी गंदा करनेवाले इस घूरे में, सभ्य संसार की इस फैशन की रंगिनी के आवरण के भीतर मानव-जगत के कर्म में छिपे हुए कोढ-केन्द्र में । विश्वास मानिए, मैं केवल विवशता के कारण यहाँ आया हूँ ।"[1] यहाँ आत्मकथा वर्तमानकाल में प्रस्तुत किया है । इस विधि को उपाख्यानात्मक शिल्पविधि भी कह सकते थे ।

उपन्यास के नायक से संबंधित अनेक प्रासंगिक कथाएँ मिलकर एक मुख्य कथा बनती है । इन छोटे-छोटे कथा-भागों की जो भरमार है,

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.9

उन्हें एक एक कर के अलग कर सकते हैं । इस में धोबी रामदास के भाई बंसी की कहानी, करीमचाचा द्वारा कही रामकली की कहानी, कला और पंचानन की कहानी, मानसिक अस्पताल में मिले सन्यासी की कहानी आदि अनेक प्रासंगिक कथाएं कथा-शिल्प को विशृंखलित बनाती है । डॉ॰देवराज का कथन है, "इस में भिन्न भिन्न स्वतंत्र जैसी कथाओं का जमघट है । यदि इन्हें पृथक रूप में भी देखा जाय तो भी कोई विशेष हानी नहीं है । ये घटनाएं एक प्रधान नायक के जीवन में ही घटित है, अत: इसी सूत्र के सहारे उपन्यास में जाकर बंधी सी ज्ञात होती है ।"[1]

उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक सूत्रों की सहायता से कथा को आगे बढ़ाता है । युवक नायक की कुंठित आकांक्षा से कथा का विकास होता है । महानगर की भीड आपस में कितनी अजनबी, सहानुभूतिशील और यांत्रिक है, पग-पग पर इस का अहसास नायक को है । वह जहाज के पंछी की तरह अपनी ईमानदी के कारण बार बार अपनी बेकारी और यातना की ओर लौट आता है । अन्त में एक धनी महिला से भेंट होती है जो उसे प्यार करने लगी है । लेकिन उस की जनदादी आदर्शवादिता उस महिला के अभिजात संस्कारों से मेल नहीं खाती । अत: वहाँ से भागकर वह राची चला जाता है । वहाँ पुन: उस महिला से भेंट हो जाती है । वह महिला नायक के लिए सब कुछ छोडने को तैयार हो जाती है तब नायक उस के साथ जीवन बिताने का निर्णय लेता है ।

कथा-शिल्प में आकस्मिक घटनाओं का चित्रण या संयोग तत्व का प्रयोग यहाँ भी देख सकते हैं । उदाहरण के

---

1. डॉ॰ देवराज - हिन्दी साहित्य कोश - पृ॰154

रूप में उपन्यास का नायक प्रेमिका लीला को छोड़कर कलकत्ता से राँची जाता है । लेकिन वहाँ फिर लीला से मिलता है और दोनों एक साथ रहने का निश्चय करते हैं । "जहाज का पंछी" का कथांत प्रसादपूर्ण है । लीला अपनी सारी संपत्ति नायक के इच्छानुसार जन सेवा के लिए अर्पित करती है और दोनों एकसाथ जीवन बिताने का निश्चय भी लेते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सुखांत कथा विरले विषय की दृष्टि से "जहाज का पंछी" के निकट है । इस में भी सामाजिकता को प्रमुख स्थान दिया गया है ।

जिप्सी

1952 में प्रकाशित इस उपन्यास को "त्याग का भोग", "मणिमाला" आदि शीर्षक भी है । "जिप्सी" जोशीजी का सब से बृहदकाय उपन्यास है । "मुक्तिपथ", "जहाज का पंछी" आदि की तरह इस उपन्यास में भी समाजोन्मुख विचार धारा का प्रकर्ष मिलता है । उपन्यास की नायिका मनिया कन्हाईलाल के साथ सामाजिक कल्याण के लिए प्रयत्न करती है । उन के परिश्रम का फल है "जनसंस्कृत समन्वय केन्द्र" । इस उपन्यास का वीरेन्द्रकुमार पूंजीपति है साथ ही सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि भी । वीरेन्द्र अपनी सारी संपत्ति जनकल्याण के लिए अर्पित करता है । इसी तरह वैयक्तिक विश्लेषण के साथ सामाजिक समस्याएँ भी कथा का आधार बन जाती है ।

उपन्यास का शिल्प आत्मकथात्मक है । मसूरी में नायक वीरेन्द्ररंजन उपन्यासकार से परिचित हो जाता है । लेखक ने देखा कि रंजन एक ईरानी जिप्सी लड़की की दूकान से अनावश्यक चीज़ें मुँहमागे दामों में खरीद रहा है । पूछने पर रंजन ने कहा कि यह ईरानी जिप्सी

लड़की उसे मणिया नामक एक अन्य जिप्सी लड़की की यादें दिलाती है, जो कुछ वर्ष पहले उसी जगह इसी की तरह बिसाती की दूकान चलाती थी । फिर रंजन ने उस लड़की की जो कथा उपन्यासकार को सुनाई थी वही "जिप्सी" की कथा है । यहाँ जोशीली भी जैनेन्द्र के समान कथा को प्रामाणिक बनाने का परिश्रम करते हैं ।

मनोवैज्ञानिक सूत्रों के द्वारा कथा आगे बढ़ती है । रंजन मनिया के हिप्नोटिक कला के द्वारा अपना प्यार समझाता है । पर रंजन का मन जब वीरेन्द्रसिंह की पत्नी शोभना भाभी की ओर आकृष्ट होता है तब वह रंजन को छोड़कर समाज कल्याणके लिए कार्य करना शुरू करती है । वह रंजन से कहती भी है, "यह जान लो कि मेरे लिए अब तुम्हारा सारा हिप्नोटिक जादू समाप्त हो गया है ।"[1] असाधारण और विचित्र घटनाओं के चित्रण द्वारा भी जोशीजी कथा को विकसित करता है । नृपेन्द्ररंजन का मनिया के प्रति और बाद में शोभना के प्रति आकर्षण, मनिया में स्वतंत्र चेतना का विकास, मणिया को मंजुला नामक नर्स के रूप में फिर रंजन के सामने प्रत्यक्ष होना, मंजुला की प्रेरणा से रंजन अपनी सारी संपत्ति जनकल्याण के लिए छोड़ना आदि अनेक असाधारण घटनाएँ कथावस्तु को क्षीण करती हैं । रंजन और मनिया की मुख्य कथा के साथ कथा-शिल्प में वीरेन्द्रसिंह और रंजना की और फादर जेरेमिया और सिल्विया की उपकथाएँ भी है । इस उपन्यास की कथा संकीर्ण है और कथा फलक विस्तृत है । यहाँ कहानी का क्षेत्र मसूरी, कलकत्ता और अमरीका तक फैल जाने से कथानक विश्रृंखलित है ।

"जिप्सी" की कथा प्रश्नांत है । रंजन मनिया को नये रूप और नाम में फिर मिलता है । वह उसे स्वीकार करने केलिए

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.474

R
894.4.09
A31

G 8221

तैयार भी है । लेकिन मनिया तैयार नहीं होती । रंजन बीमार होने पर स्वास्थ्य लाभ केलिए अकेले मसूरी चला जाता है । वास्तव में कथा के इस अंतिम भाग से उपन्यास प्रारंभ होता है । उपन्यास के अंत में रंजन और उपन्यासकार के बीच चर्चा होती है । रंजन कहता है "मैं ने आप को एक योग्य श्रोता पाकर मनिया से पहली बार मिलने से लेकर आज तक की अपनी कथा सुना डाली । इस बात की मुझे खुशी ही है । साथ ही मैं समझता हूँ कि आप को अपने नये उपन्यास के लिए कुछ न कुछ मसाला अवश्य ही मिला होगा ।"[1] जोशीजी के अब तक प्रकाशित ग्यारह उपन्यासों से बिलकुल भिन्न उपन्यास है "कवि की प्रेयसी" ।

कवि की प्रेयसी

1976 में प्रकाशित "कवि की प्रेयसी" जोशीजी का अंतिम उपन्यास है । यह इतिहास की पृष्ठभूमि में एक फैंटसी के रूप में लिखा गया है । इस उपन्यास का कथा शिल्प भी आत्मकथात्मक है । महाकवि कालिदास ने अपने नाटक "मालविकाग्निमित्रम्" में एक अज्ञात कवि सौमिल्लक का उल्लेख किया है । "ज्ञानोदय" के महानगर विशेषांक में इसी सौमिल्लक को केन्द्र बनाकर जोशीजी ने "उज्जयिनी की दो रातें" शीर्षक अपनी रचना प्रकाशित की थी । "कवि की प्रेयसी" वस्तुत: उसी का औपन्यासिक विस्तार है । लेकिन जोशीजी ने इस उपन्यास के कथा-शिल्प में उस पुरातन कालखंड और समाज को कहीं भी विश्वसनीय रूप में अंकित करने का प्रयास नहीं किया है । इस उपन्यास के बारे में जोशीजी का कथन है "कवि की प्रेयसी न तो

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.724

ऐतिहासिक चित्र है न फैन्टसी । यह मेरे पूर्वजन्म से परिचित एक कवि मित्र के जीवन की सीधी-सादी कहानी है, जिसे सच्ची सीधी-सादी भाषा में ही मैं ने लिखना चाहा है । इ स में वर्णित चित्रों की सटीकता प्रामाणित करने के लिए पुरातत्ववेत्ता की खोजी दृष्टि को व्यर्थ प्रयत्न करने का कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा । यह कल्पना प्रधान उपन्यास है और इस की परख शुद्ध कवि कल्पना ही कर सकेगी ।"[1]

उपन्यास के प्रारंभ में सौमिल्लक कथा सुनाता है, "मेरे पितामह चार भाई थे । चारों उज्जयिनी के बडे पराक्रमी यशस्वी और प्रख्यात श्रेष्ठ थे ।"[2] सौमिल्लक पहले अपने पितामहों और इज्जा के बारे में बताता है । युवक सौमिल्लक शिरीषा से प्रेम करता है । सौमिल्लक शिरीषा को अभिनय कला सिखाने के लिए उज्जयिनी में मित्र प्रचेतवर्मा के पास ले आता है । प्रचेत की बहन रत्नप्रिया का मन सौमिल्लक की ओर आकृष्ट होता है । लेकिन जैनेन्द्र के उपन्यासों के कथा शिल्प की तरह यहाँ त्रिकोणात्मक प्रेम नहीं है । रत्नप्रिया अपना प्रेम प्रकट नहीं करती । शिरीषा के अभिनय में इज्जा आकृष्ट होती है और वह इज्जा और सौमिल्लक के विवाह का नेतृत्व लेती है ।

उपन्यास का केन्द्र पात्र सौमिल्लक के चारों ओर ही पूरी कहानी घूमती रही है । सौमिल्लक और इज्जा की पूर्व कथा प्रासंगिक कथा के रूप में आती है । उपन्यास की कथा सत्ताईस परिच्छेदों में विभक्त है और अंत में उपसंहार भी है । उपन्यास का अंत प्रसादपूर्ण है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - कवि की प्रेयसी - प्रस्तावना - पृ.13
2. वही - पृ.15

सौमिल्लक और शिरीषा का विवाह धूम-धाम से होता है । रत्नप्रिया अपना प्रेम मन में छिपाकर शिरीषा के मार्ग से हट जाती है । शिल्प की दृष्टि से "कवि की प्रेयसी" का कोई विशेष महत्व नहीं है । जैनेन्द्र और जोशी के उपन्यासों की तरह अज्ञेय के "शेखर : एक जीवनी" का आधार भी पात्र की मूलवृत्ति या विशिष्ट मनोभाव ही है ।

शेखर : एक जीवनी

"शेखर : एक जीवनी" दो भागों में प्रकाशित विशालकाय उपन्यास है । प्रथम भाग की भूमिका में स्वयं उपन्यासकार ने घोषित किया है, "तीनों भाग एक ही कथा सूत्र में गुंथे होकर भी अलग-अलग प्राय: संपूर्ण भी हैं । कहा जा सकता है कि जीवनी वास्तव में तीन स्वतंत्र उपन्यासों का अनुक्रम है । ऐसा न भी होता, तब भी उन्हें अलग अलग छापा जा सकता था, ऐसा होने पर तो विशेष सफाई देने की ज़रूरत नहीं है । जो एक भाग पढ़ने के बाद दूसरा पढ़ना नहीं चाहेंगे, उन को यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि उन्होंने अधूरी कहानी पर वक्त बरबाद किया, वे एक को ही पूरा उपन्यास मान सकते हैं और उसी पर अपनी राय भी कायम कर सकते हैं ।"[1] कथा शिल्प की नवीनता उपर्युक्त घोषणा से ही व्यक्त होती है ।

प्रमुख पात्र शेखर के जीवन की विविधता एवं विद्रोही भावना ही इस उपन्यास के कथानक का आधार है । डॉ॰सत्यपालचुघ की राय में "कार्य-कारण परंपरा के रूप में जीवन का विज्ञान संगत आत्मनिरीक्षण - प्रेरणाओं सहित व्यक्तित्व का क्रमिक विकास-

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ॰5

निदर्शन - शेखर का मुख्य विषय है ।"[1] कथा का मूल आधार शेखर का बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व है । शेखर की अहंभावना, बौद्धिक जागरूकता और अदम्य शक्ति उसे विद्रोही बना देती है । उस के किशोर और यौवन का सूक्ष्म चित्रण करते हुए मानसिक विद्रोह एवं व्याकुलता को भी यहाँ व्यक्त किया गया है । संक्षेप में कहें तो "शेखर : एक जीवनी" का कथानक व्यक्तिवैचित्र्यवाद पर आधारित है ।

अज्ञेय के शब्दों में शेखर : एक जीवनी घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए विशन को शब्द-बद्ध करने का प्रयास है । उपन्यासकार का दावा है कि इस की कथा काल्पनिक नहीं है । शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज़ है । वह युग-संघर्ष का प्रतिबिंब भी है । कथा की सत्यता व्यक्त करने का यह परिश्रम वास्तव में उस का शिल्प कौशल ही है । अज्ञेय ने विद्रोही शेखर की कथा को जीवनी रूप में स्मृति-चित्रों के सहारे प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास का प्रारंभ "फांसी" से होता है । नायक शेखर जीवन की अंतिम अवस्था में पहुंचकर विगत जीवन का प्रत्यावलोकन करता है । शेखर अपने को फांसी की सज़ा मिलने का कारण बताने के बजाय अपने विगत जीवन के बारे में कहता है । इसलिए उपन्यास के अंत तक फांसी का कारण खुलता नहीं । इस तरह पाठकों को भावात्मक खिंचाव प्रदान कर के अज्ञेय ने अपनी शिल्प-कुशलता का परिचय दिया है । उपन्यास में शेखर स्वयं को प्रथम और अन्य पुरुष में बाँटकर कहानी सुनाता है । यह शिल्प-विशेषता उपन्यास साहित्य को अज्ञेय जी की देन है ।

---

1. डॉ. सत्यपालचुघ - अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि - पृ.33

अज्ञेय जी ने कथा के विकास के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया है । प्रमुख रूप में पूर्वदीप्ति पद्धति के द्वारा कथा आगे बढती है । कथा को अज्ञेय ने परिच्छेदों में बाँट दिया है । उपन्यास के प्रथम भाग की कथा चार खंडों में विभाजित है, प्रत्येक खंड शीर्षक बद्ध है । प्रथम खंड "उषा और ईश्वर", द्वितीय खंड "बीज और अंकुर", तृतीय खंड "प्रकृति और पुरुष" तथा चतुर्थ खंड "पुरुष और परिस्थिति" शीर्षकों से अभिव्यक्त है । प्रथम खंड में जीवन के उषा काल की स्मृतियां संकलित है । दूसरे खंड में शेखर के मन में बीज रूप में उपस्थित विद्रोह अंकुरित होता है । तृतीय खंड में शेखर के शरीर में प्राकृतिक परिवर्तन होते हैं । चतुर्थ खंड में शेखर प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों के साथ संघर्ष के लिए संबद्ध हो जाता है । उपन्यास के दूसरे भाग के प्रथम खंड में चतुर्दिक व्याप्त परिस्थितियों के प्रति विद्रोह की कथा है । दूसरे खंड "बंधन और जिज्ञासा" में शेखर जेल में बंद होने पर भी जीवन के प्रति आस्थावान हो उठ ता है । तृतीय खंड "शशि और शेखर" में दोनों के परस्पर आकर्षण का उल्लेख है और चतुर्थ खंड "धागे और रस्सियाँ" में शशि और शेखर के परस्पर आकर्षण से उत्पन्न उलझन का वर्णन किया गया है । इस तरह शीर्षकयुक्त खंड-विभाजन द्वारा अज्ञेयजी ने कथा की एकसूत्रता और संबद्धता को सुरक्षित रखा है ।

अज्ञेय ने शेखर को कथानक का केन्द्रबिंदू मानकर उसी के स्वभाव और मनोवृत्तियों का चित्रण किया है । शेखर की विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति के साथ कथा आगे बढती है । उस के जीवन में जो शारदा, शांति, मल्लिका और शशि आती हैं, उन के प्रति आकर्षणजन्य संबंधों का स्मृतिचित्र एक एक कर के मानस-पटल पर उभरते हैं । कथा शिल्प में भावि घटनाओं का संकेत देकर कथा को आगे बढाने की तकनीक भी यहाँ है । कथा के विकास में अज्ञेयजी पत्रों का सहाय भी लिया है ।

शेखर के नाम पर शशि ने जो पत्र लिखे हैं, उन में उल्लिखित घटनाएँ कथा विकास के लिए सहायक बनती हैं । शशि लिखती है, "भविष्य क्या है, नहीं जानती और मैं ने जो मार्ग अपने लिए निर्धारित किया है उस में भविष्य न होने का प्रश्न भी नहीं है । वह इतना ज्वलित है, पर इतना मैं आज तुम्हें कहती हूँ कि तुम ने जो मुझे दिया वह मैं उस में नहीं भूलूंगी । ..... ।"[1] शशि के पत्रों से उस का विवाह, वैवाहिक जीवन से मुक्त होने की आकांक्षा जैसी भावि कथा की रूपरेखा स्पष्ट हो उठती है ।

उपन्यास का अंत स्वाभाविक विकास पर आधारित है । अज्ञेय ने शेखर के विद्रोही मनोभाव का उत्तरोत्तर विकास दिखाते हुए स्वाभाविक रूप में उसे अन्तिम परिणमि तक पहुँचा दिया है । शेखर अंत तक परिस्थितियों से लड़ता है और भविष्य के प्रति आश्वस्थ रहता है ।

4. दृष्टकेन्द्र शिल्प विधि

उपन्यास के कथा-शिल्प की इस विधि में उपन्यासकार उपन्यास की समग्र कथा को विभिन्न पात्रों के नाम पर लघु लघु खंडों में विभाजित कर देता है । प्रत्येक खंड में प्रत्येक पात्र अपनी कथा कहता है और अपने दृष्टिकोण के द्वारा दूसरे पात्रों को प्रकाशित करता है । "हेनरी जेम्स" ने इस कथा प्रविधि को दृष्टकेन्द्र विधि कहा है । इस विधि में विविध पात्रों का दृष्टकोण अलग होता है । प्रत्येक पात्र अपने अपने दृष्टकोण की विचित्रता के कारण घटनाप्रवाह के उस अंश को देखता है जो दूसरा पात्र देख नहीं पाता । ये पात्र घटना के विशेष अंग पर ही प्रकाश डालते हैं । इसलिए अधिकांश

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - भाग-II - पृ.77-78

भाग अप्रकाशित ही रह जाता है । ये भाग आगे चक्कर दूसरे पात्रों से उद्भासित होते हैं ।

इलाचन्द्रजोशी के पर्दे की रानी, जैनेन्द्र का तपोभूमि, अज्ञेय के नदी के द्वीप और अपने अपने अजनबी के क्या शिल्प इस विधि के अंतर्गत आते हैं ।

पर्दे की रानी

1941 में प्रकाशित "पर्दे की रानी" में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का सुन्दर निरूपण हुआ है । इस की कथा व्यक्तिप्रधान और मनोवैज्ञानिक सूत्रों पर आधारित है । नायक इन्द्रमोहन एक ओर बल और छल से निरंजना को भ्रष्ट करने का यत्न करता है तो दूसरी ओर निरंजना वेश्या-माता और खूनी पिता से प्राप्त वासनामय और हिंस्र संस्कारों के कारण विचित्र मनोग्रंथि से ग्रसित होती है । संपूर्ण उपन्यास रंजना की मनोग्रंथि और इन्द्रमोहन की प्रतिहिंसा पर आधारित है । कथावस्तु में वैयक्तिक कुंठाएं, मानसिक विकृतियां, मानव प्रकृति के विरोधाभास, नारी सुलभ ईर्ष्या, प्रेम, पुरुषों की अमित कामवासना, व्यक्तिगत तथा समाजगत अहंभावना एवं स्वार्थपरता आदि पर प्रकाश डाला गया है । इस उपन्यास की कथा शीला और निरंजना के सीमित दृष्टिकोण में प्रस्तुत की गयी है । चार भागों में विभक्त कथावस्तु को अनेक परिच्छेदों में बाँटा है । पहला और तीसरा भाग "शीला की कहानी" शीर्षक में है और दूसरा तथा चौथा भाग "निरंजना की कहानी" है । लेकिन पहले और तीसरे भाग में शीला अपनी कहानी से अधिक निरंजना के बारे में कहने को अधिक उत्सुक है । उपन्यास के प्रारंभ में शीला अपनी कहानी यों आरंभ करती है

"मेरी संगिनी चन्द्रप्रभा ने आकर मुझ से कहा, आज एक बहुत ही सुंदर लड़की (निरंजना) होस्टल में भरती होने आई है ।"[1]

जोशीजी ने भावि घटनाओं के संकेत को कथा शिल्प में स्थान दिया है । वेश्या माता और सूनी पिता की पुत्री निरंजना हीनताग्रंथि का शिकार बनकर सहेली शीला से कहती है कि विवाह न करना ही अच्छा है । नहीं तो एक दिन पति उस की हत्या करेगा । बाद में यह सत्य बनता है । शीला का पति इन्द्रमोहन निरंजना को अपनाने के लिए शीला की हत्या करता है । एक और बार निरंजना के संकल्प से कथा के भावि विकास का संकेत मिलता है । वह इन्द्रमोहन के बारे में सोचती है "मेरे मन में मेरे सामने बैठे हुए उस नवाविष्कृत साँप को अपनी मुट्ठी में कर के उस से खेलने की अदम्य इच्छा उत्पन्न हो गई ।"[2] बाद में निरंजना शीला के पति इन्द्रमोहन को अपनी ओर आकर्षित करती है । उस की प्रेम-जाल में फँसकर इन्द्रमोहन का जीवन समाप्त होता है। इन्द्रमोहन द्वारा पत्नी शीला की हत्या, इन्द्रमोहन की आत्महत्या, निरंजना द्वारा इन्द्रमोहन का गर्भ सहर्ष स्वीकार करना आदि असाधारण घटनाएँ कथाशिल्प को दुर्बल बनाती हैं ।

यहाँ भी प्रारंभ, मध्य और अंत का कोई क्रम नहीं है । परख, लज्जा आदि उपन्यासों के कथा शिल्प की तरह इस उपन्यास में भी कथाकार का पूरा ध्यान मुख्य कथा पर ही है । गुरू चन्द्रशेखर और उस की पत्नी के परामर्श के अलावा "पर्दे की रानी" में कोई प्रासंगिक कथा नहीं है । इस उपन्यास का कथा फलक छोटा है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.7
2. वही - पृ.52

फिर भी इस में निरंजना की माँ का खून, इन्द्रमोहन का निरंजना पर बलात्कार और गुरूजी की हत्या का भ्रम, मनमोहन की काम चेष्टा, शीला की हत्या, निरंजना का आत्मसमर्पण, इन्द्रमोहन की आत्महत्या आदि अनेक घटनाएं हैं । छोटे फलक में अनेक घटनाओं का चित्रण इस उपन्यास की वस्तु-विन्यास की विशेषता है ।

उपन्यास का अंत पश्चातापपूर्ण होते हुए भी सुखपूर्ण है । इन्द्रमोहन की आत्महत्या से निरंजना को उसके विरुद्ध प्रेम का प्रमाण मिलता है । इसलिए वह इन्द्रमोहन के गर्भ को सहर्ष स्वीकार करने का निर्णय लेती है । गुरु चन्द्रशेखर उस से कहता है "आज तक तुम्हारा जीवन घृणा, प्रतिहिंसा और हत्या के वातावरण से घिरा रहा है, अब चूंकि तुम माता बनने जा रही हो, इसलिए अब से स्नेह, प्रेम और कल्याण की भावनाएँ तुम्हारे जीवन के चारों ओर मंगल वितान तानना आरंभ कर देंगी - यह मेरा आंतरिक विश्वास और आशिर्वाद है ।"[1] यहाँ जोशीजी का तात्पर्य यह है कि अहं की विजय को प्रामाणित करने केलिए व्यक्ति आत्मविनाश के लिए भी तैयार हो जाता है ।

कथाशिल्प की विशेषता की दृष्टि से "पर्दे की रानी" उत्तम कृति ही है । सीमित दृष्टिकोणवाले कथाशिल्प का और एक श्रेष्ठ उपन्यास है "तपोभूमि" ।

तपोभूमि

तपोभूमि जैनेन्द्रकुमार और ऋषभचरण जैन की रचना है । शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास अज्ञेय के "नदी के द्वीप" के निकट है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.225

इस उपन्यास की कथा मानव की मूल प्रेरणा काम पर आधारित है । इसमें कथानक नवीन की कहानी, धरिणी की कहानी, सतीश की कहानी और शशि की कहानी जैसे चार भागों में विभक्त है । उपन्यास के चार प्रमुख पात्र नवीन, धरिणी, सतीश और शशि के दृष्टिकोण से कथा का विकास होता है । कथा का प्रारंभ नवीन और धरिणी की बातचीत से होता है । धरिणी नवीन से कहती है, "तुम्हें शशि के पास जाना होगा ।"[1] यह सुनकर नवीन के मन में सभी विगत घटनाएँ लौट आती हैं । पूर्व दीप्ति की सहायता से कथा विकास होता है । विधवा और निराश्रय धरिणी की रक्षा करने केलिए नवीन ने प्रेमिका शशि को छोड़कर धरिणी को स्वीकार किया है । कथा के दूसरे खंड में धरिणी की दुखपूर्ण पूर्वकथा है । तीसरे खंड में धरिणी का भाई सतीश और शशि के विवाह जीवन की पराजय का चित्रण है । सतीश अपनी पत्नी शशि और नवीन के संबंध पर संदेह करता है और उसी वजह से वह नवीन की हत्या करता है । अंतिम खंड "शशि की कहानी" है । संक्षेप में जीवन की तपोभूमि में शशि, नवीन, धरिणी, सतीश सब पराजित हो जाते हैं ।

इस के कथा शिल्प में समय विपर्यय का प्रयोग हुआ है । इसलिए कथा में घटनाओं का कोई क्रम नहीं है । उपन्यास के प्रारंभ में नवीन वर्तमान से अतीत की ओर जाता है । लेकिन धरिणी को स्वीकार करने की घटना के विवरण के बाद वह फिर वर्तमान में आ जाता है । वह कहता है, "मेरी कहानी का यहाँ अंत आ गया है । पहले अध्याय के आज के अब हम समीप आ गये हैं ।"[2] समय विपर्यय

---

1. जैनेन्द्रकुमार - तपोभूमि - पृ.11
   ऋषभचरण जैन
2. वही - पृ.81

द्वारा घटनाओं के उलटने-पलटने के कारण कथाशिल्प में नवीनता है । कथा का अंत दुखपूर्ण है । शशि के शब्द में "नवीन, सतीश, धरिणी, मैं ..... सभी फेल गये ।"[1] व्यक्ति के अहं और काम के दुष्परिणाम को प्रस्तुत करने में यहाँ जोशीजी सफल निकले हैं । अज्ञेयजी के "नदी के द्वीप" में भी कथा शिल्प दृष्टिकेन्द्रित विधि पर आधारित है ।

नदी के द्वीप

1951 में प्रकाशित "नदी के द्वीप" वैयक्तिक अनुभूतियों की गाथा है। "नदी के द्वीप" की शिल्पविधि के बारे में डा॰सत्यपालचुंघ का कथन है "विषयवस्तु का अपेक्षाकृत दौर्बल्य, विभिन्न पात्रों के सीमित दृष्टिकोण से कथा-कथन तथा सानुकूल विभाजन, पत्र शैली के उत्कर्ष से कथा का सांकेतिक अनुबंधन, सत्यावलोकन, अन्तर्विवाद, स्वप्न-विश्लेषण उद्धरण प्रतीक तथा चलचित्रात्मक पद्धतियों का सम्मिलित सौष्ठव, संवाद वैचित्र्य तथा भाषा-शैली का प्रोन्नत अभिजात वैशिष्ट्य "नदी के द्वीप" को शिल्पप्रधान उपन्यासों के वर्ग में रखने की अनुशंसा करते हैं ।"[2]

नदी के द्वीप वैयक्तिक द्वन्द्व तथा व्यष्टि-समष्टि के द्वन्द्व को नैतिक धरातल पर रूपायित करनेवाला उपन्यास है । काम भावना को विस्तार प्रदान करते हुए लिखा गया उपन्यास शृंगार वर्णनों से भरा हुआ है । अज्ञेय ने जीवन के सूत्र विशेष को पकड़ा है और उसी के सहारे कथानक का निर्माण किया है । इस उपन्यास में कथा का आधार भुवन और रेखा का प्रणय है । जिस प्रकार काल के प्रवाह में नदी के द्वीप बनते और बिगड़ते हैं, उसी प्रकार रेखा और भुवन के संयोग-वियोग की स्थितियाँ हैं जो कथा का आधार है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार, ऋषभचरण जैन - तपोभूमि - पृ॰204
2. डा॰सत्यपालचुंघ - अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्प-विधि - पृ॰93

उपन्यास की कथा छोटी है । भुवन और चन्द्रमाधव जैसे दो प्रतिद्वन्द्वियों में रेखा की प्रणयप्राप्ति में भुवन ही सफल होता है । आगे चलकर वह गौरा के प्रति समर्पित हो जाता है ।

भुवन यात्रा के क्षणों में पूर्वस्मृतियों में खो जाता है । रेखा के प्रति उस के स्वाभाविक आकर्षण संबंधी घटनाएं स्मृति में एक एक कर के आती है । कथा का प्रारंभ इन्हीं पूर्वस्मृतियों के प्रत्यावलोकन से होता है । "नदी के द्वीप" में कथा ग्यारह अध्यायों में बाँटा है । प्रत्येक पात्र के नाम दो अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय के उपरान्त अंतराल हैं । दो अध्याय अन्तराल शीर्षक में ही हैं जिन में भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमाधव ही उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं । इन चारों पात्र से संबन्धित विभिन्न कथासूत्रों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य अंतराल में किया है । इस के अलावा उपसंहार शीर्षक एक भाग भी है ।

"शेखर : एक जीवनी" में एक ही पात्र के सीमित दृष्टकोण से कथाधारा प्रवहित है तो यहाँ चार पात्रों के व्यक्ति केन्द्रित दृष्टकोण से कथा विकसित हुई है । शेखर : एक जीवनी में अज्ञेय के तटस्थ रहने पर भी नायक का, निजी दृष्टकोण ही अधिक मिलता है । क्योंकि लेखक जिसे तटस्थ चित्रण कहता है, उस पर भी शेखर का दृष्टकोण है । लेकिन "नदी के द्वीप" के कथा शिल्प की विशेषता यह है कि इस के प्रत्येक पात्र का आत्मगत उद्घाटन तो हो ही जाता है, साथ ही उस के प्रति अन्य तीनों पात्र के अलग-अलग दृष्टकोण व्यक्त होते हैं । इसी तरह चार पात्रों के दृष्टकोण की भिन्नता के कारण एक पात्र किसी घटना के जिस अंश को देखता है उसे दूसरा नहीं देख पाता और कथा पुनरावृत्ति के दोष से मुक्त रहती है । इस के संबंध में देवराज उपाध्याय का कथन है "नदी के द्वीप के चार दृष्टकोणों की सीमा में कथा को घेर देने से उपन्यास में एक विचित्र व्यवस्था, निखार और

संगठन की योजना संभव हो सकी है और यह उपन्यास हिन्दी का एक अत्यंत गठित और सौष्ठव युक्त उपन्यास हो सका है ।"[1]

कथा शिल्प में प्रसाद, टी·एस· इलियट, शैल्ली, ब्राइनिंग, क्रिस्टीना आदि कवियों की कविताओं का उद्धरण देख सकते हैं । भावात्मक कथा से ये उद्धरणियां पूर्ण रूप से सही रहती हैं । समय विपर्यस्तता से घटनाओं के क्रम को बदलने का शिल्प कौशल इस में भी देख सकते हैं । इस पद्धति में अतीत और वर्तमान के पार्थक्य को मिटाकर काल-क्रम से घटनाएं प्रस्तुत नहीं की जातीं ।

कथा विकास के लिए अज्ञेय ने चलचित्र की तरह "क्लोज़अप" पद्धति का प्रयोग किया है । उपन्यास के प्रथम पृष्ठ में रेखा भुवन की कोहनी छूकर गाडी पर चढ़ती है । रेखा के उस स्पर्श के कारण भुवन अपनी कोहनी पर अजीब तरह की चुनचुनाहट का अनुभव करता है । भुवन की यह चुनचुनाहट उपन्यास के चालीस पृष्ठों तक किसी न किसी रूप में चलती रहती है । लेखक ने इस छोटी सी घटना को अपनी कल्पना द्वारा अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है ।

यह एक सुखांत उपन्यास है । कथा के अंत में नियति के चक्र में चक्कर काटती हुई रेखा भुवन से बिछुड कर डा॰ महेन्द्र के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेती है तो भुवन भी अपनी मानसिक कुंठा त्यागकर स्वस्थ भाव से गौरा में आसक्त हो जाता है । भुवन और रेखा दोनों ही अपने प्रणय भाव की असफलता को स्वीकार कर नवीन द्वीपों की रचना में संलग्न होते हैं । इस अध्ययन के लिए चुने गए

1· देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान - पृ·18।

उपन्यासों में कथा शिल्प की दृष्टि से प्रथम स्थान "नदी के द्वीप" को ही देना उचित है । क्योंकि "प्रस्तुत उपन्यास शिल्प के क्षेत्र में एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है ।"[1] अज्ञेय के "अपने अपने अजनबी" का कथा शिल्प भी दृष्टिकेन्द्र विधि पर आधारित है ।

अपने अपने अजनबी

अज्ञेय का यह उपन्यास भी व्यक्तिवैचित्र्य पर आधारित है । उन्होंने मानव-जीवन को संचालित करनेवाली मूल प्रवृत्तियाँ अहं, सेक्स और भय को क्रमश: शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप और अपने अपने अजनबी में कथा का आधार बनाया है । मृत्यु से साक्षात्कार की अनुभूति को विविध कोणों से इस उपन्यास में चित्रित किया गया है । बर्फ की कैद में पड़े सेल्मा और योके का सूक्ष्म मनोविश्लेषण इस उपन्यास में किया गया है । अज्ञेय ने यहाँ बौद्धिक विश्लेषण और तत्वचिंतन पर ही बल दिया है । इस उपन्यास की कथा के बारे में डा॰केदारशर्मा की राय है "उपन्यास की कथा वैचारिकता से आच्छादित दो भिन्न व्यक्ति-चरित्रों की लघु सीमाओं में आबद्ध है, जहाँ कथा विस्तार भले ही हो गया हो परन्तु कथा प्रकृति की सूक्ष्म गंभीरता और व्यंजना इस उपन्यास की ऐसी बडी उपलब्धियाँ है, जिन्होंने हिन्दी के नये कथा साहित्य में "कथाहीन उपन्यास" की परंपरा का मंगल प्रारंभ किया है ।"[2] कथा वास्तविक घटना पर आधारित है । अज्ञेय अपने पुराने मित्र मार्टिन आलदुड के निमंत्रण पर स्वीडन में रहे और वहाँ लैपलैंड में बर्फ पर यात्रा करते करते एक बार भटक गए । इस पर स्वीडी लेखिका सारालीडमैन ने ने बर्फ में कैद हो जाने की एक

---

1. डा॰ प्रेमभटनागर - हिन्दी उपन्यास : शिल्प - बदलते परिप्रेक्ष्य पृ॰293
2. डा॰केदारशर्मा - अज्ञेय साहित्य : प्रयोग और मूल्यांकन - पृ॰277

वास्तविक घटना की बात सुनायी । उन्होंने यह भी बताया कि ऐसी परिस्थिति की अंतिम परिणति असहिष्णुता होती है । उपन्यास की कथा को तीन खंडों में विभाजित किया है । प्रथम खंड "योके और सेल्मा", द्वितीय खंड "सेल्मा" और तृतीय खंड "योके" है । प्रथम खंड में उपन्यासकार ने बर्फ के नीचे दबे काठ के बंगले में रह रही योके और सेल्मा के कार्यकलाप तथा मन:स्थितियों का चित्रण किया है । द्वितीय खंड में सेल्मा स्मृति के द्वारा कथा को आगे बढाती है । इस में सेल्मा की अट्ठाइस वर्ष पूर्व की कथा है और यान एकलोफ़ तथा फोटोग्राफर के साथ हुई मृत्यु के साक्षात्कार की अनुभूतियों का चित्रण है । इस खंड में सेल्मा को ही स्थान दिया गया है । उसी के दृष्टकोण से घटनाओं को देखा गया है । तृतीय खंड में योके अपनी मनोव्यथा का वर्णन करती है ।

कथा के पहले भाग "योगे और सेल्मा" में उपन्यासकार अन्यपुरुष में कहानी प्रारंभ करता है "एकाएक अन्नाटा छा गया । उस सन्नाटे में ही योके ठीक से समझ सकी कि उस से निमिष भर पहले भी कितनी ज़ोर का धमाका हुआ था - बल्कि धमाके को मानो अधबीच में दबाकर ही एकाएक सन्नाटा छा गया था ।" लेकिन प्रारंभ के 13 पन्ने के बाद उपन्यासकार तटस्थ रहता है और फिर सेल्मा और योके के दृष्टकोण से कथा विकसित होती है ।

अज्ञेय ने कथा विकास के लिए पात्र की मूल प्रवृत्ति - भय - का विकास किया है । यहाँ हर क्षण उपस्थित मृत्युभय से कथा का विकास होता है । उपन्यासकार ने यह भी दिखाया है कि मृत्यु को सामने पाकर कैसे प्रियजन भी अजनबी बन जाते हैं ।

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.9

कथा शिल्प में फिल्मी तकनीक भी देख सकते हैं । उदाहरण केलिए योके पॉल से बिछुडने के बहुत समय बाद सोचती है, "ढाई महीने - तीन महीने ! कब्रगाह - क्रिसमस ! पाताल-लोक में देव-शिशु का उत्सव ! नगर में भगवान ! पॉल ढूँढ निकलेगा - पर किस को, या मेरी .... ।"[1] यहाँ उपन्यासकार ने समय या काल का चित्रण सुन्दर रूप में किया है । इस उपन्यास के कथा शिल्प में "क्लोज़-अप" का प्रयोग भी किया है । सेल्मा से योके खाना खाने को कहती है तो वह ऐसा उत्तर देती है "मुझे जितने ज़रूरत है उतना मैं ने ले लिया ।"[2] यह वाक्य कथा के बीच बीच वह दुहराती भी है । इस छोटे से वाक्य को लेकर पूरे उपन्यास में मृत्यु एहसास भरने में उपन्यासकार सफल निकले हैं ।

उपन्यास का अंत अवसादपूर्ण है । पाठकों को द्रवित करने की तरह यह दुखांतकी सफल है । सेल्मा की मृत्यु बर्फ के नीचे होती है । योके का सतीत्व जर्मन सैनिकों द्वारा भंग कर दिया जाता है । जीवन के अंतिम क्षणों में योके एक भारतीय युवक जगन्नाथ के निकट पहुंचती है । मृत्यु के समय वह अजनबी योके को प्रिय बनता है । दोनों प्रमुख पात्रों का अंत में मर जाना इस उपन्यास की विशेषता है । इस उपन्यास के कथा-शिल्प के बारे में डा॰ राधेश्याम कौशिक की राय है "कथा के विभाजन में "अपने अपने अजनबी", "नदी के द्वीप" की तरह की रचना है, किन्तु एक ही अनुभूति की विवृति के कारण पृथक प्रकार की भी है ।"[3]

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ॰13
2. वही, पृ॰35
3. डा॰ राधेश्याम कौशिक - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास - पृ॰91

कथा-शिल्प के इस विस्तृत अध्ययन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास व्यक्ति के बहिर्जगत की अपेक्षा अन्तर्मन की सूक्ष्म जटिलताओं क्रिया-प्रतिक्रियाओं, घात-प्रतिघातों के चित्रण को प्रमुखता देते हैं । परिमाणत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथानक स्थूल व क्रमबद्ध न होकर अत्यंत सूक्ष्म एवं रहस्यात्मक है ।

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के आलोच्य उपन्यासों से स्पष्ट है कि इन्होंने मानव-जीवन को संचालित करनेवाली मूल वृत्तियाँ अहं, भय और सेक्स को कथा का आधार बनाकर कथा-शिल्प में आश्चर्य-जनक नवीनता उपस्थित की है । इसलिए व्यक्ति वैचित्र्य पर आधारित इन उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यास कहने में कोई आपत्ति नहीं है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कथा में आदि मध्य अंत का कोई क्रम नहीं है । कथा कहीं से प्रारंभ होकर किसी भी बिंदु पर समाप्त हो सकती है । आलोच्य उपन्यासों में कथा प्रस्तुत करने केलिए आत्मकथात्मक पद्धति का प्रयोग अधिक किया गया है । कहीं कहीं उपन्यासकार ने स्वयं कथा कहने का प्रयत्न किया है तो कहीं अन्य पुरुष में । कुछ उपन्यासों में गौण पात्र द्वारा कथा सुनाने की विशेष शिल्प-विधि अपनाई गई है तो कुछ उपन्यासों में सीमित दृष्टकेन्द्र विधि द्वारा भी कथा प्रस्तुत की गई है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथा से अधिक महत्व चरित्र को है । इसलिए आलोच्य उपन्यासों को चरित्रप्रधान उपन्यास भी कह सकते हैं । इन उपन्यासों में कथा विकास के लिए नये नये प्रयोग किए गए हैं । आत्मविश्लेषण, पूर्वस्मृति, भावि घटनाओं का संकेत, स्वप्न विश्लेषण,

कविताओं का उद्धरण आदि इन में से कुछ हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विशिष्ट जीवनादर्शों की व्याख्या ज़रूर हुई है । कथा की परिसमाप्ति में व्यक्ति की कुवृत्तियों के दुष्परिणाम को दर्शाया अवश्य जाता है । अत: आलोच्य उपन्यासों का उपसंहार सुखांत, दुखांत या प्रश्नांत बना है ।

जाहिर है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के सृजन के पीछे व्यक्ति के अंतरतम को उद्घाटित एवं विश्लेषित कर के उस के व्यक्तित्व के नकारात्मक अंशों को दूर कर के उसकोणों का पूर्ण बनाने का प्रयत्न दिखाई देता है । इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने वर्तमान समाज की ठोस वास्तविकता से हटकर व्यक्ति की आन्तरिक जगत को सृजन का आधार बनाया है । यह एक प्रकार से व्यक्तित्व विश्लेषण के ज़रिए व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने का सृजनात्मक प्रयत्न मालूम पड़ता है ।

****

तीसरा अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र-चित्रण

तीसरा अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास में पात्र एवं चरित्र चित्रण

उपन्यासकार पात्रों का चुनाव अपने परिवेश से ही करते हैं । लेकिन वे पात्र जीवित पात्र का यथातथ्य रूप नहीं होते । पात्र का प्रस्तुतीकरण और उन का चरित्र निरूपण उपन्यास का प्रमुख कार्य है । पात्रों की चारित्रिक विशेषता के कारण ही कथानक विशिष्ट हो जाता है । इसलिए चरित्र-चित्रण उपन्यास का प्रमुख कार्य है ।

उपन्यास का प्रत्यक्ष संबंध मानव जीवन से है । अत: चरित्र-चित्रण की कुशलता के अभाव में पात्रों के निर्जीव हो जाने की संभावना है परिणामत: उपन्यास अप्रासंगिक भी । पात्रों के गुण-दोषों तथा आचार विचारों के प्रस्तुतीकरण का माध्यम शब्द है । इसलिए चरित्र-चित्रण दरअसल शब्द चित्र है । इस से कथानक का विकास होता है । कथानक का विकास पात्रों के क्रियाकलाप के विकास से होता है । अत: कथानक और पात्रों का संबंध घनिष्ठ है ।

एडविन मूर ने कथा पात्र एवं कथानक के बीच का अभिन्न सम्बन्ध को यों व्यक्त किया है, उपन्यास के पात्र कथानक के अंग मात्र नहीं, उसी प्रकार कथानक भी पात्रों के इर्दगिर्द का ढाँचा मात्र भी नहीं बल्कि दोनों अभिन्नत: घुले मिले रहते हैं ।"[1]

हिन्दी उपन्यास में पात्र

हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ भारतेन्दुयुग से है । इस युग में चामत्कारिक पात्रों का सृजन ही अधिक हुआ है । इसलिए पात्रों का विकास किंचित मात्रा में ही हुआ था । लेकिन बालकृष्ण भट्ट के नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान जैसे उपन्यासों के पात्र कुछ विकसित ही दिखाई देते हैं । किशोरीलाल गोस्वामी के अधिकांश पात्र मध्यवर्ग के हैं । इन पात्रों पर रीतिकालीन नायक-नायिका भेद की गहरी छाप है ।

प्रेमचंद पहला उपन्यासकार है जिन्होंने चरित्रप्रधान उपन्यास प्रस्तुत किया था । उन के उपन्यासों में शोषित पीडित, किसान, मज़दूर तथा ज़मींदार आदि सभी प्रकार के पात्र हैं । उन के पात्र आदर्शवादी तथा यथार्थवादी हैं । "गोदान" को छोड़कर प्रेमचंद ने कहीं भी यथार्थ पात्रों की सृष्टि नहीं की । उन्होंने आदर्शवाद की जाल में फंसकर सूरदास, प्रेमशंकर जैसे पात्रों की सृष्टि की है । गरीबों की

---

1. 'The characters are not part of the machinery of the plot, nor is the plot merely a rough frame work around the characters, on the contrary both are in seperably knit together'
Edwin Muir - Structure of the Novel, p.41

सेवा करनेवाले ये पात्र मानव से अधिक देवता जैसे हैं । सिर्फ होरी ही इस का अपवाद है । इसलिए वह एक अमर सृष्टि बन गया है । इस युग में प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा उग्र और चतुरसेनशास्त्री के प्रकृतिवाद की दो धाराएँ ही प्रमुख रही हैं ।

प्रेमचंद युग में पात्र उपन्यासकार की इच्छा के दास होते थे । यहाँ कथानक के साथ पात्रों को भी समान स्थान दिया गया । प्रेमचंदोत्तर युग में पात्रों को कथा से ही श्रेष्ठ स्थान मिलने लगा । इस युग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आंचलिक उपन्यासों को प्रमुख स्थान मिला । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यास व्यक्ति के अंतरंग का विश्लेषण कर के उस को संपूर्णता में समझने का माध्यम बन गया ।

प्रारंभिक चमत्कार प्रधान तिलस्मी तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राचीन संस्कृत परंपरा के अनुरूप नायक या नायिका उच्चवर्ग के होते थे । शेष पात्र सखा-सखियाँ, कर्मचारी, दास-दासी वर्ग और विदूषक थे । प्रेमचंद युग के उत्तरार्द्ध में ही व्यक्ति चरित्र का निरूपण होने लगा था जो कि प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों में और अधिक मुखरित हुआ । प्रेमचंद ने पात्र एवं चरित्र चित्रण को उपन्यास का प्रमुख अंग माना और कहा "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[1]

प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों में मध्यवर्ग ही प्रमुख है । मनोविज्ञान के प्रभाव से औपन्यासिक पात्रों में मानसिक रूप से असंतुलित वर्ग भी दृष्टिगोचर होने लगा ।

---

1. प्रेमचंद - कुछ विचार - पृ.47

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र बाहर से ओढ़ी मर्यादाओं की अपेक्षा, भीतर की ईमानदारी को अधिक महत्त्व देते हैं । ये पात्र सामाजिक बंधनों के बीच अपनी स्वतंत्र सत्ता को बनाए रखने केलिए प्रयत्नरत हैं । इसलिए वे अहंवादी या विद्रोही है । अंतर्द्वंद्व के शिकार होने के कारण ये पात्र एकाकी भी हैं । लेकिन ये अजनबी या अयाथार्थ पात्र नहीं, "मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पात्र यथार्थ दुनिया के पात्र है । उन्हें देखकर अजनबीपन की अपेक्षा अपनापन अधिक लगता है ।"[1]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पात्रों के अन्तर्मन को पूर्णत: खोलने का प्रयत्न करते हैं । इसलिए ये पात्र विकासशील हैं । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग ने व्यक्तित्व के तीन रूपों पर विचार किया है - बहिर्मुखी, अंतर्मुखी और उभयमुखी । इस के अनुसार बहिर्मुखी का कार्य वस्तुनिष्ठ या बाहर का होता है । अन्तर्मुखी वृत्ति आत्मनिष्ठ या भीतर की होती है । बहिर्मुखी पात्र सदा प्रसन्नचित्त, संसार के कार्यों में अभिरुचि रखनेवाले और सामाजिक प्रवृत्ति के होते हैं । उन में कल्पना का अभाव होता है । लेकिन अन्तर्मुखी पात्र अपने विचारों में तल्लीन रहते हैं । अत: उन में कल्पना की प्रवृत्ति अधिक जागृत रहती है । वे असामाजिक अधिक होते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अधिकतर पात्र इसी कोटि में आते हैं ।

प्रेमचंदोत्तर युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में युंग के बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी पात्रों के अलावा दोनों का समन्वित उभयमुखी पात्र भी

---

1. डॉ. धनराज मानधाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - पृ.343

देख सकते हैं । जैनेन्द्र जोशी और अज्ञेय के अधिकांश पात्र अंतर्मुखी हैं । लेकिन भगवतीचरणवर्मा, राजेन्द्रयादव आदि के उपन्यासों में उभयमुखी पात्र भी देख सकते हैं ।

उपन्यास में चरित्र चित्रण

उपन्यास में चरित्र-चित्रण पात्र से संबद्ध रहता है । उपन्यास चाहे किसी भी युग का हो उस में चरित्र-चित्रण का अंश अनिवार्यत: मिलता है ।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास "परीक्षागुरु" में व्यापारी वर्ग के पात्रों का चरित्र-निरूपण है । इस युग के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र उनके नामों कथोपकथनों और क्रियाकलापों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । इस में चरित्र चित्रण की उपेक्षा तो नहीं है, परंतु वह उस का लक्ष्य नहीं था । इस युग के मनोरंजक एवं उपदेशात्मक उपन्यासों में पात्र उपदेशात्मकता की बोझ से लदे हुए हैं । इसलिए उस का चारित्रिक विकास नहीं हो पाया । यह भी नहीं वह पात्रों के चरित्र चित्रण में बाधा भी बन गयी ।

प्रेमचंद के आगमन से उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया । उन्होंने पात्र एवं चरित्र चित्रण को उपन्यास का अनिवार्य अंग माना । मानव चरित्र के सूक्ष्म प्रतिपादन और सामाजिक वास्तविकता के विशद एवं मार्मिक अभिव्यक्ति के द्वारा प्रेमचंद ने हिन्दी कथा साहित्य में चरित्र चित्रण की क्रांति उपस्थित की ।

उन के प्रारंभिक उपन्यासों में घटना बाहुल्य दिखाई पड़ते हैं । पर बाद के सभी उपन्यास चरित्रप्रधान है । चरित्र-विकास के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रणाली का भी सहारा लिया है । इस युग के उपन्यासकारों ने चरित्र चित्रण के लिए पात्रों की आकृति, वेशभूषा, कथोपकथन जैसी बाह्य क्रिया-कलापों का भी सहरा लिया है ।

प्रेमचंदोत्तर युग में भगवतीचरणवर्मा, जोशी, अज्ञेय आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के धरातल पर नवीन चरित्रों की सृष्टि अवश्य की है किंतु समकालीन समस्याओं से वे बचते रहे । पर यशपाल, अश्क आदि ने इस मानसिकता से मुक्त होकर मार्क्सवादी यथार्थ के तहत नये चरित्रों का सृजन किया । संक्षेप में कहें तो प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में दर्शन, मनोविज्ञान एवं साम्यवादी विचारधारा ने चरित्र विकास को प्रभावित किया ।

चरित्र-चित्रण की प्राय: दो विधियाँ अपनाई गयी हैं - बहिरंग प्रणाली या प्रत्यक्ष विधि और अंतरंग प्रणाली या अप्रत्यक्ष विधि । बहिरंग प्रणाली में उपन्यासकार आरंभ में ही पात्र की गहरी रेखाएं अंकित कर देते हैं । यहाँ पाठक को किसी पात्र को समझने के लिए श्रम नहीं करना पड़ता है । इस विधि में पात्रों के क्रिया-कलाप अथवा वार्तालाप द्वारा उन की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय दिया जाता है । अंतरंग प्रणाली या परोक्ष विधि में उपन्यासकार पात्र के क्रिया कलाप का अन्य पात्रों पर पड़े प्रभाव का चरित्रांकन कीता है । इस प्रकार के चरित्र चित्रण के अंतर्गत पात्र के अन्त:प्रेरणा, अन्तर्द्वन्द्व, अन्तर्विवाद, स्वप्न विश्लेषण आदि आते हैं ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र-चित्रण

मनोविज्ञान के प्रवेश से चरित्र-विकास का नया द्वार खुला और कला-सौन्दर्य में वृद्धि हुई । कथाकार तटस्थ होकर चरित्रों का विश्लेषण करने लगा । वे चरित्र विश्लेषण पर इतना आकृष्ट थे कि कभी कभी कहानी या कथा शिल्प को ही भूल जाते थे । जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय आदि ने व्यक्ति-केन्द्रित जीवन दर्शन के आधार पर मानवीय संवेदना और चरित्र-निष्ठा पर ज़ोर दिया । उन्होंने मानव मन की चेतन तथा अचेतन स्थितियों के चित्र उपस्थित किये ।

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय ने अपने अधिकांश पात्रों के चरित्र-चित्रण केलिए अंतरंग प्रणाली का प्रयोग किया है । इस प्रणाली की प्रथम सीढ़ी अन्त:प्रेरणाओं का चित्रण है । फ्रायडीयन सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति जो कार्य करता है उस के पीछे उस के अचेतन का हाथ रहता है । इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार सिर्फ किया - प्रतिक्रियाओं के चित्रण तक सीमित न रहकर उस के मानसिक संघर्ष बाह्य परिस्थितियों के प्रति बदलता दृष्टिकोण तथा प्रत्यक्ष व्यवहार की अन्तप्रेरणाओं को भी प्रकाश में लाने की चेष्टा करते थे । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्रों को आत्मबल और इच्छाशक्ति कम होने के कारण वे अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो जाते हैं । पात्रों के चरित्र चित्रण केलिए उपन्यासकार प्रमुख रूप से अन्तर्मन के इस संघर्ष का सहारा लेते हैं । समाज के विधि-निषेधों के प्रति उदासीन, पारिवारिक मर्यादाओं के बंधन से मुक्त, मूल नैतिकता से जिज्ञासू तथा स्वतंत्र व्यक्ति सत्ता की उद्भावना हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम जैनेन्द्र के उपन्यासों में हुई है ।

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र

उपर्युक्त तीनों की रचनाओं में पात्रों की संख्या बहुत कम है । वे कम से कम पात्रों से काम चलाना चाहते हैं । पात्रों के चयन के बारे में जैनेन्द्र का कहना है, "तीन चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है । इस विश्व के छोटे से छोटे खंड को लेकर हम अपना चित्र बन सकते हैं ।"[1]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण के अन्तर्गत उनके मानसिक उथल-पुथल, द्वन्द्व अथवा विकृति के विश्लेषण को मुख्य स्थान दिया गया है । "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामान्य पात्रों की अपेक्षा विचित्र व्यक्तित्व संपन्न पात्रों के चित्रण को प्रधानता देने के कारण असाधारण प्रवृत्तियोंवाले पात्रों का सृजन सब से पहली ज़रूरत है ।"[2] ये पात्र सोसल कम और मानसिक अधिक है ।

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के पात्रों को अध्ययन की सुविधा केलिए बहिर्मुखी पात्र और अंतर्मुखी पात्र जैसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं ।

1. बहिर्मुखी पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बहिर्मुखी पात्रों का स्थान कम महत्वपूर्ण है । इसलिए आलोच्य उपन्यासों में बहिर्मुखी पात्र नाममात्र

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.7
2. डा. श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ.234

के लिए मिलते हैं । जैनेन्द्र के उपन्यास "परख" में सत्यधन एक बहिर्मुखी पात्र है । वास्तव में सत्यधन आत्मप्रवंचक पुरुष है । स्वयं आदर्शवादी मानते हुए भी वह बाल विधवा कट्टो से प्रेम करता है । लेकिन उस में समाज की परंपरागत रूढ़ियों को तोडने की शक्ति नहीं है । इसलिए वह कट्टो को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता । सत्यधन के चरित्र के संबंध में स्वयं लेखक का कथन है, "···· उस के (परख) सत्यधन की व्यर्थता मेरी है और बिहारी की सफलता मेरी भावनाओं की है ।"[1] इस उपन्यास का सत्यधन एक साधारण व्यक्ति से कुछ भी भिन्न नहीं है । धन और मान्यता के पीछे जाकर वह गरिमा से शादी कर लेता है ।

"कल्याणी" में डा॰ असरानी का व्यक्तित्व भी बहिर्मुखी है । समाज के सामने वह आदर्श पति है और अपनी पत्नी से बहुत प्यार भी करता है । लेकिन घर में वह कल्याणी को खूब पीटता है और उंगली में नचाने का प्रयत्न करता है । उपन्यास में डा॰ असरानी को खलनायक का स्थान दिया जा सकता है ।

"अनामस्वामी" में अनामस्वामी का व्यक्तित्व समाज से जुडा हुआ है । उस के जीवनदर्शन गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित है । सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि से अनामस्वामी का व्यक्तित्व उज्ज्वल बन जाता है । उपाध्याय उन से शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने पर भी अनाम के मन में उस के प्रति घृणा नहीं है । वे उपाध्याय, दयाल, वसुंधरा आदि को सच्चे मन से अपने आश्रम में स्वीकार करते है और सभी के उलझनों को सुलझाने की कोशिश भी करते हैं ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - साहित्य का श्रेय और प्रेय - पृ॰13।

इसी तरह "अनंतर" उपन्यास के प्रसाद के व्यक्तित्व में आदि से अंत तक पूर्णता का प्रकाश है । बहिर्मुखी व्यक्तित्ववाला प्रसाद जीवन का हर कदम विवेक तथा ध्यानपूर्वक रखता है । प्रसाद अपरा के साथ ट्रेन में आबू जाते समय वह प्रसाद की पत्नी का स्थान लेकर असाधारण व्यवहार करती है । लेकिन प्रसाद संयम के साथ अपरा से कहता है, "बेक्कूफी छोडो । एण्ड बिहेव युअरसेल्फ ।"[1] प्रसाद के व्यक्तित्व की पूर्णता यहा दिखाई पड़ती है ।

इलाचन्द्रजोशी के उपन्यासों में जैनेन्द्र की अपेक्षा गौण पात्र अधिक है । इन में अधिकांश बहिर्मुखी पात्र हैं । "लज्जा" में माधवी, प्रो· किशोरी मोहन, लज्जा का पिता लज्जा की बहिन लीला, "सन्यासी" में बलदेव, नंदकिशोर के भैया और भाभी, नंदकिशोर के मित्र, कमलिनी, "पर्दे की रानी" में शीला और गुरूजी, "मुक्तिपथ" में उमाप्रसाद सक्सेना, देशराज और रमला गिडवानी, "सुबह के भूले" में बैजनाथ, झमिया, हेमकुमार, "जिप्सी" में वीरेन्द्रकुमार, कन्हाईलाल, फादर जेरेमिया, सिलविया, "जहाज का पंछी" में धोबी रामदास, करीमचाचा, पहलवान, मजीद, इब्राहीं, "ऋतुचक्र" में दादा, प्रतिमा, रामबाबू और गिडवानी, "भूत का भविष्य" में शेरसिंह और भूतनाथ की दीदी, "कवि की प्रेयसी" में सौमिल्लक, इज्जा, रत्नप्रिया, प्रजेतधर्मा आदि पात्रों को बहिर्मुखी पात्रों की कोटि में रख सकते हैं ।

अज्ञेय के उपन्यासों में भी कुछ गौण पात्र बहिर्मुखी हैं । "शेखर : एक जीवनी" में कुमार, शेखर का भाई ईश्वरदत्त, बाबा मदन सिंह, शशि का पति रामेश्वर, "नदी के द्वीप" में गौरा, "अपने अपने अजनबी" में फोटोग्राफर आदि इस के अंतर्गत आते हैं ।

1· जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ·15

2. अंतर्मुखी पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अधिकांश पात्र अंतर्मुखी हैं । अंतर्मुखी पात्रों को अहंग्रस्त पात्र, हीनताग्रस्त पात्र, कुंठाग्रस्त पात्र, वासना परिचालित पात्र, आत्मसमर्पित पात्र, आत्मपीडक साधिकाएं, विद्रोही पात्र, जटिल पात्र, मनोरोगग्रस्त पात्र, पत्नीत्व और प्रेयसीत्व एकसाथ निभानेवाले पात्र जैसी विभिन्न श्रेणियों में रख सकते हैं ।

अहंग्रस्त पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र प्राय: समाज का या सामाजिक मूल्यों का परवाह न कर के अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं । इसलिए स्वाभाविक रूप में अहंग्रस्त बन जाते हैं । जैनेन्द्र के "सुखदा" में नायिका सुखदा अकेली होकर, रोगिणी बन कर अस्पताल में रहती है । उस समय उस से एक बार मिलने की इच्छा प्रकट करते हुए पति की चिट्ठी आती है । लेकिन सुखदा का अहं उसे रोकता है । इसलिए सुखदा पति को जवाब दिए बिना माँ को देती है "उन का पत्र आये तो लिख देना कि मेरी हालत ठीक होती जा रही है । उन के आने की ज़रूरत नहीं है । यह भी कि अगर उन से बने तो यहां मुझे कृपा कर पत्र न भेजा करें ।"[1]

सुखदा अपने पति के व्यक्तित्व को अपने अहं के वश में दबाकर रखना चाहती है । उस की वाणी में हमेशा गर्व है । सुखदा के पति उस से कहते हैं, "तुम्हारे ख्याल बड़े हैं सुखदा, योग्यता बड़ी है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ.6

सिर्फ आमदनी छोटी है, जिस का संबंध मुझ से है ।"[1] सुखदा के अहं के सामने पति का व्यक्तित्व फीका पड जाता है ।

"व्यतीत" का नायक जयंत अहंग्रस्त पात्र है । वह अपने को किसी के सामने समर्पित नहीं करता और न किसी के समर्पण को स्वीकार भी । जयंत का अहंभाव प्रेम की राह में बाधा बनता है । इसलिए वह आत्म-व्यथा में घुल-घुल कर जीवन की व्यर्थता का अनुभव करता है । इन पात्रों के द्वारा व्यक्ति के अहं के दुष्परिणाम को चित्रित करने की कोशिश जैनेन्द्र करते हैं । व्यक्ति के अहं को तोड़ना जैनेन्द्र का लक्ष्य है । शशि गुप्ता के शब्दों में जैनेन्द्रकुमार ने जीवन का मूल ध्येय अहं का विगलन माना है, इसी को अपने उपन्यासों का प्रधान उपजीव्य बनाया है ।"[2]

लेकिन इलाचन्द्रजोशी ने अपने उपन्यासों में अहं को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषित किया है । "लज्जा" की नायिका लज्जा काम और अहं के कारण जीवन-मार्ग पर आंखें मूंद कर चली जाती है । इस के फलस्वरूप उस का जीवन निराशापूर्ण और विषादमय बन जाता है । स्वयं जोशीजी के शब्दों में "मेरे सभी उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य व्यक्ति के अहंवाद की ऐकान्तिकता पर निर्मम प्रहार करने का रहा है । .... छायामयी, सन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित इन पाँचों उपन्यासों में मैं ने इसी दृष्टि को अपनाया है ।"[3]

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ.67
2. शशि गुप्त - प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास - नए नैतिक - पृ.64
3. इलाचन्द्र जोशी - विवेचन - पृ.124

प्रोफसर किशोरीलाल के बारे में ल ज्जा कहती है "किशोरी-लाल मेरे रूप के भक्त हैं । ऐसे भक्तों की मूझे आवश्यकता है ।"[1] लज्जा का अहं उसे विनाश के भंवर की ओर ले जाता है । अंत में अपने पिता और भाई राजू के मौत के बाद ही लज्जा का अहंपूर्ण व्यवहार बदल जाता है ।

"पर्दे की रानी" में अहं के कारण इन्द्रमोहन विचित्र रूप में व्यवहार करता है । निरंजना इन्द्रमोहन को अपने गुरू चन्द्रशेखर का परिचय देकर कहती है कि गुरू ने हिन्दी में एम·ए· किया है । तब इन्द्रमोहन की प्रतिक्रिया है "हिन्दी और एम·ए·! हा: हा: हा: यह बडे मज़े की बात रही । हा: हा: हा: ! अब तो साहब एम·ए· की डिग्री बडी सस्ती हो गई है ।"[2] इन्द्रमोहन का अहं ही उस का सर्वनाश करता है । वह निरंजना को भोगने के लिए अपनी पत्नी शीला को विष देता है । ट्रेन में निरंजना के कौमार्य का खंडन कर के वह विजयी बनता है । अंत में निरंजना का घृणापात्र बनने के कारण वह गाडी से कूदकर आत्महत्या करता है ।

"जिप्सी" में अहंग्रस्त पात्र नृपेन्द्ररंजन जिप्सी लड़की मनिया की ओर आकृष्ट होकर उसे अपने सम्मोहन से सदा के लिए अपनाने की कोशिश करता है । लेकिन यह समझ कर मनिया उस से कहती है, "अपने अहं की तृप्ति और ऐकांतिक सुख साधना के लिए तुम ने मेरे प्रति उदारता का ढोंग रचा, जिस से मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञता के मज़बूत बंधनों में बंधकर जीवन भर ऊपर से पालिश की हुई दासता को अपनी इच्छा से

1· इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ॰34

2· इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ·63

खुशी के साथ स्वीकार कर लूं । ..... बाहर से थोपा हुआ कोई भी भ्रमजाल अब मुझे धोखे में नहीं रख सकता ... ।"[1] लेकिन रंजन अपनी समस्त संपत्ति "जनसंस्कृति समन्वय केन्द्र" के लिए समर्पित करता है और अपने अहं से भी मुक्त होता है ।

"जहाज का पंछी" का नायक सत्ताईस वर्ष का शिक्षित बेकार युवक अहंग्रस्त पात्र है । उपन्यास के प्रारंभ में ही नायक के स्वाभिमान का परिचय हमें मिलता है । अस्पताल के डाक्टर जब सहानुभूतिपूर्वक उसे दस रूपये देने का प्रस्ताव रखता है तो वह उधार के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो जाता है । नायक का अहं परिष्कृत कोटि का है । अस्पताल के बडे डाक्टर के अमानुषिक व्यवहार पर और पुलीस कर्मचारियों के लोमहर्षकारी अत्याचार की पुनर्वृत्ति की धमकी पर दो-एक लंबे भाषण देकर नायक अपने अहं की तृप्ति प्राप्त कर लेता है । नायक एक स्टाल में पुस्तकों का निरीक्षण करते समय दूकानदार उसे गिरहकट समझकर भगाने की कोशिश करता है तब नायक के अहं को चोट लगती । वह अपने पास के पाँच रूपयों में से चार रूपये देकर पुस्तक खरीदता है । "जीवन की असफलता के कारण नायक को अपनी भावनाओं का दमन करना पड़ा है और इसलिए उस का मन कुंठित है तथा अहम विकृत हो गया है ।"[2] अपने व्यक्तिगत अहं के कारण नायक न तो सामाजिक अथवा आर्थिक परिस्थितियों के आगे झुकता है और न ही उन से समझौता करता है । लेकिन अहंग्रस्तता के कारण नायक हमेशा अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.473
2. जे.हरिकुमार - इलाचन्द्रजोशी का कथा साहित्य - पृ.124

जोशीजी के "ऋतुचक्र" नामक उपन्यास में मिसिस चित्रा कटारा, नकुलेश, लिली आदि पात्र अहंग्रस्त है । "कवि की प्रेयसी" में नायिका शिरीषा अहं के कारण अपनी बहन मदनसेना को भी प्रतिद्वन्द्वी समझ लेती है । जोशीजी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इस में अहं का सैद्धांतिक विश्लेषण बहुत कम है ।

जैनेन्द्र और जोशी से भिन्न होकर अज्ञेय ने अहं के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उसे मानव जीवन को गति देनेवाली प्रेरक शक्ति मानी है । "शेखर : एक जीवनी" में शेखर एक असाधारण आत्मान्वेषी जटिल एवं अहंग्रस्त पात्र है । शेखर कहता है "मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिए, मुझे मूर्ति-पूजक चाहिए ।"[1] इस कथन में उस का अहंग्रस्त मन प्रतिबिंबित है । शेखर व्यक्ति है "टाइप" नहीं । "मूल रचना" है, किसी की "प्रतिलिपि" नहीं । लगातार चोट खा कर शेखर का अहं स्फूर्त और विद्रोह प्रबल हो जाता है । हिन्दी उपन्यास जगत में शेखर जैसा पात्र दूसरा नहीं है । मानव की मूल प्रेरणाओं अहं, भय और सेक्स का मिलन शेखर के व्यक्तित्व में भी है । वह अपूर्ण होते हुए भी पूर्ण है । शेखर के बारे में डॉ॰ अरविन्दाक्षनजी का कहना है "वह सब से पहले एक आत्मान्वेषी पात्र के रूप में है । वह अहंवादी है, इस अर्थ में कि वह अपने को खोजता है । खुद अपने जीवन को प्रयोगात्मक कर के देखता है ।"[2]

"अपने अपने अजनबी" में वृद्धा सेल्मा का चरित्र भी ऐसा चरित्र है जो जीवन से नितांत निरपेक्ष, आत्मकेन्द्रित, दमित, अहंपूर्ण,

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी (भाग-1) - पृ॰154
2. डॉ॰अरविन्दाक्षन - अज्ञेय की उपन्यास यात्रा - पृ॰49

अत: समाज के साथ स्वयं केलिए भी व्यर्थ है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति की स्वतंत्र सत्य का स्थान देने के कारण अहंग्रस्त पात्रों को भी महत्वपूर्ण स्थान मिलते हैं ।

हीनताग्रस्त पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अधिकांश पात्र असाधारण आचरण करनेवाले हैं । कभी कभी पात्रों की हीनता ग्रंथि इस असाधारणता का कारण बनती है । "पर्दे की रानी" की नायिका निरंजना एक हीनता ग्रस्त पात्र है । निरंजना की प्रबल चेतना निरंतर अनुभव करती है कि वह एक वेश्या माता और हत्यारे पिता की पुत्री है । इसलिए उस के मन में एक गाँठ बनी हुई है । उस का अन्तर्मन सोचता है कि जो समाज उसे नीचा समझता है उस का प्रतिकार करना होगा । निरंजना के अचेतन मन में पिता के स्थान पर प्रेमी इन्द्रमोहन और माँ के स्थान पर शीला का रूप है । इन्द्रमोहन का सर्वनाश निरंजना के मन का लक्ष्य बन जाता है । वह कहती है "मेरे मन में भी मेरे सामने बैठे हुए उस नवाविष्कृत साँप (इन्द्रमोहन) को अपनी मुठ्ठी में कर के उस से खेलने की अदम्य इच्छा उत्पन्न हो गई ।"[1] इन्द्रमोहन की मृत्यु के बाद ही निरंजना हीनताग्रंथि के प्रभाव से मुक्त हो जाती है ।

"प्रेत और छाया" में पारसनाथ भी हीन भावना के कारण असाधारण व्यवहार करता है । पारसनाथ को जारज संतान जानकर संसार भर की नारियों के प्रति घृणा करता है । वह स्वयं पूछता है

---

1. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.52

"व्यभिचारिणी माता और क्रूर और कपटी पिता ने जो सबक मुझे सिखाया है, उस का असर कहाँ जाएगा ?"[1] पारसनाथ एक एक स्त्री के सतीत्व का अपहरण कर के पूरे स्त्री जाति से अपनी घृणा प्रकट करता है । लेकिन अंत में वह पिता बैजनाथ से ही जान लेता है कि पिता पहले झूठ बोला था और वह जारज संतान नहीं है । "बैजनाथबाबू की बातों ने पारसनाथ के भीतर युगों से बंद पडी हुई एक निराली ही दुनिया का दरवाज़ा खोल दिया था, जिसे देखकर वह भ्रांत, चकित और पुलकित हो रहा था ।"[2] इस हीनभाव से मुक्त होने के बाद वह हीरा के साथ सुखपूर्ण जीवन बिताता है ।

"निर्वासित" के नायक महीप में अच्छी कोटि की कवित्व शक्ति है । किन्तु अपने "बबुआ रूप" के कारण उसे निरंतर विषम-स्थितियों का सामना करना पड़ता है । वह कहता है "मेरे शरीर का लघु आकार मुझे बराबर कोंचता रहा है और उसके कारण एक तीव्र आत्म-ग्लानि की अनुभूति निरंतर, प्रतिदिन, प्रतिपल मुझे पीड़ित करती रही है । .... ।"[3] महीप, रमा, सुषमा और नीलिमा को चाहता है । लेकिन किसी के मन में उस को स्थान नहीं मिलता । निराश होकर वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो जाता है । हीनताग्रंथि से युक्त पूर्ववर्ती पात्रों की तुलना में महीप अधिक मानवी और निरीह है । "प्रेत और छाया" के पारसनाथ का व्यवहार केवल मनोवैज्ञानिक नियमावली का प्रदर्शन मात्र लगता है । लेकिन हीनताग्रंथि के शिकार बनने पर भी महीप एक प्रचंड विस्फोटक और विनाशक सत्ता के रूप में हमारे सामने प्रकट नहीं होता ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.45
2. वही - पृ.378
3. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.350

"मुक्तिपथ" में नायक राजीव बचपन में ही माता-पिता और बहनों के खो जाने के कारण अकेला बन जाता है । इसलिए उसके मन में सहज प्यार के स्थान पर कठोरता एवं यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति आ जाती है । वह अपनी परिस्थितियों से तंग आकर जीवन से विरक्त हो उठता है । सुनंदा अपने आप को राजीव के सामने पूर्ण रूप से समर्पित करती है । लेकिन राजीव उसे सिर्फ "साथिन" के रूप में ही स्वीकार करता है । राजीव की मशीन की तरह कार्य करने की प्रवृत्ति उस के विगत जीवन की देन है । उस के विगत जीवन की निराशा और अकेलापन उसे हीनताग्रंथि का शिकार बनाते हैं । इसलिए राजीव के मन में व्यक्ति संबंधों और कोमल भावुकताओं को कोई स्थान नहीं है । इसी कारण से वह सुनंदा को समझने में भी असमर्थ हो जाता है ।

"सुबह के भूले" में नायिका गुलबिया निम्नवर्ग की दूधवाली लड़की है । बंबई की गंदी गली में वह रहती है । शहर के कालेज में उच्चवर्ग के फैशनबिल लड़कियों से मिले तो गुलबिया को अपने प्रति और अपने वर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न होती है "गुलबिया नाम की ध्वनि मात्र से वह, न जाने क्यों अपने को एक अत्यंत दीन-हीन, अनाथ और पीड़ित लड़की समझने लगती थी, जिस की आंखों में सब समय कीच लगा हो, मुख पर मक्खियां बैठती हो और जो फटे, मैले कपडे पहने, सिमटी, सिकुडी सी घर के एक कोने में निपट उपेक्षित अवस्था में पडी रहती हो ।"[1] इसलिए वह स्वयं अपना नाम बदलकर "गिरिजा" रखती है । हीनग्रंथि का शिकार होने के कारण उस का व्यवहार जटिल और दुष्टपूर्ण होता है । वह अपनी माँ, चाचा और किशन से भी घृणा करती है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले - पृ.67

लेकिन अंत में वह अपनी भूल समझ लेती है और तब उसके मन की गाँठ खुलती है और घर लौट आती है ।

"जिप्सी" की नायिका मणिया का स्थान हीनताग्रस्त पात्रों में है । मनिया के तिबत्ती पिता की हत्या भारतीय माँ द्वारा होती है । माँ भी आत्माघात कर लेती है । इसलिए वह बचपन से ही एकाकी है । आर्थिक संकट और अकेलापन के कारण उसमें हीनता ग्रंथि विकसित होती है । इसलिए उपन्यास के अंत तक उस का चरित्र जटिल रहता है । अचानक तेज़ाब से वह कुरूप हो जाती तो उसके अंतर में हीन भावना प्रबल हो उठती है । अमरीका जाकर इलाज कर के मणिया को नया सुन्दर रूप मिलता है । तब से वह मंजुला है । मंजुला हीन भावनाओं से मुक्त नारी है । वह अपना जीवन समाज कल्याण केलिए समर्पित करती है ।

जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में हीनताग्रस्त पात्र नहीं हैं । क्योंकि वे जोशीजी की तरह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के पीछे नहीं हैं । जैनेन्द्र का ध्यान कभी कभी उस की ओर जाता तो है पर अज्ञेय का रास्ता ही अलग है ।

कुंठाग्रस्त पात्र

व्यक्ति की इच्छापूर्ती में प्रकृति या व्यक्ति द्वारा व्यवधान उपस्थित करने पर कुंठा का जागरण होता है । इस तरह के कुंठित पात्रों के व्यवहार असाधारण हैं ।

अज्ञेयजी के उपन्यास "अपने अपने अजनबी" में योके एक कुंठाग्रस्त पात्र है । योके अपने अस्तित्व को बनाए रखने में असमर्थ होने के कारण विकृत वृत्तियों से ग्रस्त उन्मादिनी हो जाती है । वह बरफ से दबे काठघर में बंदी होने के कारण आतंकित स्थिति में है । वह मृत्युभय से आक्रांत है और अपना प्रेमी पॉल के ना आने पर निराशाग्रस्त है । इस तरह असुरक्षा भाव ही उस को कुंठाग्रस्त चरित्र बनाता है । योके की विफलता-हताशा ही उस की आक्रामक वृत्ति का कारण है । इसीलिए वह सेल्मा की हत्या करने का प्रयास करती है । वह स्वयं अपने प्रति भी आक्रमणशील बन जाती है "उस के सामने ही नहीं, अपने सामने भी कभी मेरा मन होता है कि चीख पड़ूँ कि अपने बाल नोच लूँ कि आईने के सामने खड़ी होकर अपने को मारूँ, छोटी कैंची उठाकर अपने गालों में चुभा लूँ.... ।"[1]

जोशीजी के "लज्जा" में लज्जा का भाई राजू कुंठाग्रस्त पात्र है । राजू और लज्जा डाक्टर से प्रेम करती है और राजू के प्रति उस का भातृप्रेम कम हो जाता है । बहन का प्रेम नष्ट हो जाने के कारण उस के मन में निराशा, विषाद घृणा आदि भाव उभर आते हैं । परिणामत: वह हीनताग्रंथि का शिकार बन जाता है । वह सोचता है "मैं अकेला हूँ । मुझे जीवन का एक भी साथी कहीं कोई नहीं मिला ।"[2] अंत में राजू आत्महत्या कर लेता है । मानव मन की हीनताग्रंथि की जटिलता का चित्रण यहाँ मिलता है ।

"सुबह के भूले" का नायक किशन "कुंठित पात्र है । किशन और गुलबिया बचपन के दोस्त थे । उच्च शिक्षा के उपरांत गुलबिया

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.31
2. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ.147

अपना नाम बदलकर गिरिजा बनती है । तब से वह किशन से दूरी भी रखती है । गिरिजा का यह उपेक्षा भाव किशन को कुंठाग्रस्त बना देता है । इस तरह कुछ भटकने के उपरांत उच्चवर्ग के छकोंसले को समझकर वह किशन के पास गुलबिया बनकर लौट आती है । तब किशन अपनी कुंठा से मुक्त होकर कठिन परिश्रम कर के शिक्षा प्राप्त कर लेता है और अच्छे अभिनेता भी बन जाता है । अंत में किशन गिरिजा से शादी कर लेता है ।

"पर्दे की रानी" में निरंजना का प्रेम न पा सकने के कारण मनमोहनसिंह कुंठित हो जाता है । बाद में उस की कुंठा प्रति-हिंसा के रूप में बदल जाती है । इसी तरह "भूत का भविष्य" में भूतनाथ की व्यक्तिगत कुंठा उसे जीवन से पथ-भ्रष्ट करा देती है । भूतनाथ शिक्षित, परोपकारी तथा सेवा निपुण भी है । लेकिन हरिजन होने के कारण उसे समाज में आत्माभिमान के साथ जीना मुश्किल हो जाता है । वह सामाजिक विषमताओं एवं तिरस्कारों से कुंठित हो जाता है ।

जैनेन्द्रजी के "त्यागपत्र" में अथ से इति तक कुंठाग्रस्त होकर प्रमोद तडपता रहता है । बचपन से ही प्रमोद के मन में अपनी बुआ मृणाल के प्रति प्रेम है । लेकिन सामाजिक नियमों को तोड़कर बुआ को पत्नी के रूप में स्वीकार करने का साहस उस में नहीं है । सामाजिक डर उसे पीड़ित एवं कुंठित बनाता है । अंत में बुआ वेश्या बनकर मर जाती तो प्रमोद पूर्ण रूप से टूट जाता है । वह निराश होकर अपना जजी पद का त्याग करता है । एक कुंठाग्रस्त व्यक्ति का आत्मसंघर्ष जैनेन्द्रजी ने यहाँ बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कुंठित पात्रों का व्यवहार एक जैसा नहीं है । कुछ पात्र कुंठा को प्रतिहिंसा के रूप में विकसित करते हैं तो कुछ अपने आप को इससे मुक्त करने की कोशिश करते हैं । "विवर्त" में कुंठाग्रस्त नायक जितेन अपने आप को मिटाना चाहता है, "कुंठित प्रेमी जितेन, मोहिनी का घर नहीं मिटाना चाहता है और न मिट पाता है, वह स्वयं मिटता है ।"[1] यहाँ जितेन भुवनमोहिनी को बहुत चाहता है । लेकिन आर्थिक कठिनाई उसे कुंठित बनाती है । वह भुवनमोहिनी से कहता है "तुम ठहरी अमीरजादी मैं मेहनत कर के खाता हूँ ।"[2] मानसिक दबाव और कामगत कुंठा उसे आत्मपीड़ित बनाता है । बाद में वह विद्रोही बन कर पुलीस के समक्ष आत्मसमर्पण करता है ।

"अनामस्वामी" के शंकरउपाध्याय का मानसिक संतुलन कुंठा-ग्रस्त होने के कारण पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है । उपाध्याय की प्रेमिका वसुंधरा का विवाह कुमार के साथ होने से उस के मन में निराशा, वेदना एवं कुंठा पैदा होते हैं । "कुंठाजन्य प्रतिहिंसा भाव उसे पागल बनाता है । कालांतर में वह अपनी पत्नी तथा वसुंधरा की हत्या करता है और आत्महत्या भी । "तपोभूमि" के सतीश भी उपाध्याय के अधिक निकट है । कुंठा और प्रतिहिंसा के कारण सतीश का व्यवहार भी अस्वाभाविक बन जाता है । वह अपनी पत्नी शशि के पूर्वप्रेमी नवीन का खून करता है ।

वासनापरिचालित पात्र

वासना पर नियंत्रण न रख पानेवाले पात्र दुर्बल होते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विशेषत: जैनेन्द्र के उपन्यासों में इसी तरह के पात्र साधारण है ।

---

1. डा॰शशिभूषण सिंहल - हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - पृ॰203
2. जैनेन्द्रकुमार - विवर्त - पृ॰7

"सुनीता" में श्रीकांत इस कोटि का पात्र है । वह अपने मित्र हरिप्रसन्न के जीवन को सोद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए अपनी पत्नी सुनीता को माध्यम बनाता है । वह लाहौर जाकर हरिप्रसन्न और सुनीता को एकांत में मिलने का मौका प्रदान करता है । वासना के प्रति उदास श्रीकांत का दुर्बल चरित्र ही शायद सुनीता के मन में हरि प्रसन्न के प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है । "सुखदा" में सुखदा के पति इस से भी आगे बढ़कर लाल और सुखदा को एक ही कमरे में सोने की व्यवस्था तक कर देता है । "प्रेत और छाया" का भुजेरिया स्वयं को नपुंसक इसलिए सिद्ध करता है कि राजा महाराजा की अंकशायिनी बनने में भी वह हिचकता नहीं है ।

"अनंतर" का आदित्य वासना का शिकार होने के कारण दुर्बल बना पात्र है । आदित्य पत्नी और परिवार को छोड़कर अपरा की ओर आकर्षित होता है । लेकिन आदित्य और अपरा के संबंध का प्रत्यक्ष रूप उपन्यास में नहीं मिलता । अपरा के शब्दों से ही उन दोनों के संबंध का चित्र व्यक्त होता है । अपरा आदित्य के पिता से कहती है "सुनिए, आप के आदित्य मुझे चाहने लग गए हैं - वजह मैं नहीं जानती ।"[1] बाद में अपरा उन दोनों के संबंध का विश्लेषण आदित्य की पत्नी को भी देती है । "..... जानती हो, उसका मन क्यों मेरी तरफ झुका ? ..... झुका इसलिए कि मैं अपने मन की हूँ और किसी का ज्यादा प्रभाव नहीं लेती .... तुम उन की हो और सुलभ हो । मैं किसी की नहीं हूँ और दुर्लभ ..... हो सकती हूँ ।"[2] अपरा के शब्दों से आदित्य का वासनामय चित्र उभर आता है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ.106
2. वही - पृ.138

अज्ञेय के "नदी के द्वीप" का चन्द्रमाधव भी इसी तरह वासना का शिकार है। चन्द्रमाधव को नारी के मूक समर्पण की अपेक्षा उस का छोड-छाड अधिक पसंद था । इसलिए वह पत्नी की अपेक्षा नौकरानी को छेडता है । बहुत कोशिश के बावजूद भी रेखा को मिलता नहीं तो वह गौरा की ओर झुक जाता है । उसे भी न मिलने पर वह अंत में पत्नी की ओर लौट जाता है । वहाँ से भी दिल न भरा तो बंबई की फिल्म अभिनेत्री को अपना बनाकर उपन्यास की भूमि से हट जाता है ।

जोशीजी के "निर्वासित" में ठाकुर लक्ष्मीनारायण वासना परिचालित पात्र है । वह गौरा और समिधा के साथ प्रेम-नाटक करने के बाद नीलिमा से शादी करता है । बाद में उस की नज़र शारदादेवी और रूपा पर पड़ जाती है । काम से पागल होकर वह रूपा के प्रेमी की हत्या करता है । काम लालसा की पूर्ती के लिए वह कोई भी नीच कार्य करने केलिए तैयार है । वासनाग्रस्त मानव कैसे दानव बनता है इस का सही चित्र यहाँ मिलता है ।

जटिल पात्र

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जटिल व्यक्तित्ववाले पात्र भी होते हैं जिन के चरित्र को समझना आसान कार्य नहीं होता । क्योंकि उनके व्यवहार विचित्र और प्रतिक्रियाएँ असामान्य होते हैं । जैनेन्द्र के "अनंतर" में अपराजिता एक जटिल पात्र है । शादी के आठ वर्ष विलायत में बिता कर तलाक जीतकर आई हुई अपरा पहले प्रसाद से पत्नी की तरह प्रेमपूर्ण व्यवहार करती है । बाद में वह प्रसाद का बेटा आदित्य को अपने पास खींचती है । अपरा के चरित्र के बारे में

वन्या कहती है "बट शी इज़ इंपौसिबिल ।"[1] अनंतर के पूर्वार्द्ध में पाठकों को पता चलता है कि अपरा एक वासना परिचालित पात्र है । लेकिन उत्तरार्द्ध में उस का व्यवहार देखकर पाठक को बिलकुल उल्टा सोचना पड़ता है । "दशार्क" में नायिका रंजना का चरित्र जटिल और रहस्यमय है । वह पारिवारिक जीवन में आर्थिक दबाव के कारण पैसे के लिए वैवाहिक वेश्यावृत्ति करती है । लेकिन शरीर उस का मूलधन है । वह किसी पुरुष को शरीर देने के लिए तैयार नहीं है । "रंजना के अनुसार वह "फामिली कन्सलटैंट के रूप में समाज कल्याण के लिए कार्य करती है । इसी तरह "मुक्तिबोध" की नायिका नीलिमा का व्यवहार भी हमेशा पाठकों के पूर्वग्रह को तोड़कर आगे बढ़ती है । दर की पत्नी होने पर भी नीलिमा सहाय से प्रेम करती है । लेकिन वह सहाय को अपनाकर उस का परिवार तोडना नहीं चाहती । "जयवर्धन" में नायक जयवर्धन स्वातंत्र्योत्तर भारत का शासक है । जयवर्धन के बारे में दुर्गेश नंदिनी प्रसाद का कथन है "जय एक अंतर्मुखी पात्र है । जैनेन्द्र ने उस की मनःस्थिति के प्रत्येक पर्दे को बडी सावधानी से खोला है । वह बाहर से भोला, स्नेहशील और सरल भीतर से व्यापक कठोर, संयत और जटिल है।"[2] जयवर्धन का दोनों रूप राजनीतिज्ञ का और प्रेमी का हमारे सामने है । वह इला से प्रेम करता है । बीस वर्ष से दोनों प्रेम प्रेमिका के रूप में ही साथ रहते हैं । विवाह वह तभी करेंगे जब कि इला के पिता की अनुमति प्राप्त हो जाएगी । क्योंकि उस के अनुसार प्रेम व्यष्टि सत्य है और विवाह सामाजिक । जयवर्धन के व्यक्तित्व की प्रथम छाप विलवर हूस्टन पर ऐसी पड़ी है "जयवर्धन को देखा, मिला,

---

1. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ.50
2. दुर्गेश नंदिनी प्रसाद - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र - पृ.90

बात हुई । व्यक्ति नहीं वह घटना है । कह दो, व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं । कहीं भीड में वह खो भी सकता है ।"[1]

अज्ञेय के उपन्यास "नदी के द्वीप" में प्रमुख नारी पात्र रेखा और गौरा का चरित्र भी जटिल है । रेखा पति से अलग होकर रहती है । भुवन और गौरा का संबंध जानकर भी रेखा भुवन से प्रेम करती है और उस से अपने को "फुलफिल्ड" पाती है । रेखा सिर्फ उस का प्रेम चाहती है उस का भविष्य नहीं मांगता । पेट में भुवन के बच्चे को लेकर रेखा उस से विदा मांगती है । वह भुवन से कहती है "हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप है - ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरंतर उस का भाग्य गढती चलती है, द्वीप अलग अलग होकर भी निरंतर घुलते और पुन: बनते रहते हैं - नया घोल, नए अणुओं का मिश्रण, नई तल-छट, एक स्थान से मिटकर दूसरे स्थान पर जमते हुए नए द्वीप ... ।"[2] रेखा और गौरा की चारित्रिक विशेषता है कि उनके मन में नारी सहज ईर्ष्या भाव नहीं है । गौरा बचपन से ही भुवन को बहुत चाहती है । लेकिन वह उस के सामने विवाह का प्रस्ताव कभी नहीं रखती । इन दोनों नारी पात्रों का जटिल व्यक्तित्व पाठकों में आकांक्षा भरती है ।

आत्मपीडक साधिका

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विशेषत: जैनेन्द्र के उपन्यासों में आत्मपीडक साधिकाओं को देख सकते हैं । जोशीजी के "निर्वासित" में

---

1. जैनेन्द्रकुमार - जयवर्धन - पृ.17
2. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.315

नायिका नीलिमा इस श्रेणी में आती है । नीलिमा अपनी माँ की इच्छापूर्ती केलिए ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह से शादी करती है । ठाकुर के साथ नीलिमा का जीवन अत्यंत कष्टमय था । ठाकुर से अपमानित और पीड़ित नीलिमा के बारे में सुषमा कहती है "सब से बड़ा आश्चर्य भी मुझे इस बात पर है कि इतने दिनों तक वह आत्महत्या करने से बची कैसे रह गयी । इस का एक कारण शायद यह है कि उसकी आत्मगलानि ने उस की आत्मा को इस तरह छा लिया है कि आत्म हत्या की बात सोचने का अवकाश ही उसे नहीं मिला है । और आत्मपीडन द्वारा अपनी भूल का प्रायश्चित करने में ही उसे अपना त्राण दिखाई दे रहा है।"[1] नीलिमा का पूर्व प्रेमी महीप उस समय भी नीलिमा के अपमानित हृदय की पीडा का साझी बनने को तैयार है । लेकिन वह इनकार करती हुई कहती है "मुझे इस अंधकूप में रौख में ही पडे रहने दो ।"[2]

जैनेन्द्र के "त्यागपत्र" की मृणाल का बूढा पति और कोयलेवाले के साथ समझौता जीवन पर एक तीखा व्यंग्य है । यह उसका आत्मपीडन है । "कल्याणी" की कल्याणी का आत्मपीडन उस के मानसिक संघर्ष की प्रतिक्रिया है । उस के मन में पूर्वप्रेम जन्य निराशा और आदर्श पत्नी बनने की इच्छा का संघर्ष निरंतर चलता रहता है । डॉ॰ लक्ष्मीकांतशर्मा के शब्दों में "कल्याणी के सम्मुख एक ओर विलायती वैभव विलास और शिक्षा संस्कृति की भौतिक चकाचौंध है और दूसरी ओर भारतीय गृहस्थी का प्राचीन आदर्श । इन दोनों विरोधी आदर्शों की विषमता के संघर्ष में पिसते हुए वह स्वयं समाप्त हो जाती है ।"[3]

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ॰399
2. वही - पृ॰431
3. लक्ष्मीकांत शर्मा - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक शैली - तात्त्विक अध्ययन - परिच्छेद-1 - पृ॰6

"जयवर्धन" की नायिका इला भी आत्मपीड़क साधिका है । इला में प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व है । उस के चरित्र की मुख्य भूमिका सेक्स है । कठोर संयम और साधना उस की पीड़ा का कारण है । इला को अपने प्रेमी जय की निकटता, प्रेम, विश्वास सब प्राप्त हैं । जय उस के प्रति पूर्ण समर्पित है । इसलिए वह सारी कष्टताएँ मुस्कुराती हुई सह लेती है । वह अपने प्रेमी के साथ कुमारी ही रहती है । भारत के रूढ़िग्रस्त समाज के लिए यह बड़ी चुनौती है जिस का परिणाम भी उसे झेलना पड़ता है । वह सब कुछ झेल लेती भी है । उस की यह विशेषता उसे साधिका का स्थान प्रदान करती है ।

अज्ञेय के नारी पात्र भी जैनेन्द्र के नारी पात्र की भाति आत्मपीड़ित, प्रेमी के उन्नयन के लिए सर्वस्व न्योछावर करने और आत्मोत्सर्ग करनेवाले हैं । "शेखर : एक जीवनी" की शशि प्रेम की सार्थकता के लिए आत्मबलिदान करती है । वह स्वयं टूटकर शेखर को आगे बढ़ने की सतत प्रेरणा देती रहती है ।

"नदी के द्वीप" की रेखा भी शशि की तरह प्रेमी भुवन के लिए आत्मबलिदान करती है । वह प्रेम को ही जीवन की प्रेरक शक्ति मानती है, "वह अपने चरित्र के माध्यम से प्रेम, प्रेमी के उन्नयन केलिए आत्मोसर्ग, उन्मुक्त, स्वच्छंद जीवन इत्यादि जैसे नैतिक मूल्यों को व्यंजित करती है ।"[1] उसे लगता है कि भुवन के प्रेम से उस ने सब कुछ पा लिया है । वह इसी अनुभूति की स्वीकृति भुवन के सम्मुख करती है "भुवन, जाने से पहले एक बात कहना चाहती हूँ । आइ एम फुलफिल्ड । अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के प्रकृति के प्रति

---

1. शशिगुप्ता - प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास - नए नैतिक मूल्य पृ.123

यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैं ने कोई भी फुलफिल्मेंट नहीं जाना कृतज्ञ भाव ही लेकर जाऊँगी - परमात्मा के प्रति और भुवन तुम्हारे प्रति ।"[1] रेखा भुवन के उन्नयन के लिए अहं को त्यागकर आत्मपीडा के मार्ग को अपनाती है । भुवन के जीवन की खुशी के लिए रेखा अपनी खुशियों को न्यौच्छावर कर देती है और प्रतिदान में कुछ भी नहीं चाहती । इसी तरह गौरा का प्रेम भी आत्मसमर्पण से युक्त है ।

पत्नीत्व और प्रेयसीत्व

जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री पात्र एक की पत्नी होते हुए दूसरे की प्रेयसी भी बन जाते हैं । वैयक्तिक और सामाजिक चिंतन की टकराहट इस का कारण है । उनमें हृदय और बुद्धि का संघर्ष निरंतर बना रहता है । विवेक तथा सामाजिक चिंतन उसे पति को छोडने में असमर्थ बनाती है । लेकिन हृदय तथा व्यक्ति चिंतन उसे प्रेम की ओर ले जाते हैं । इस अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्तिचिंतन को ही स्थान मिलता है । जैनेन्द्र का पहला उपन्यास "परख" में कट्टो सत्यधन के चरणों में अपना प्रेम समर्पित करती है । लेकिन कट्टो और बिहारी विवाह प्रतिज्ञा लेते हैं कि "हम दोनों एक दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं । हम एक होंगे - एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा ।"[2] यहाँ जैनेन्द्र ने कट्टो और बिहारी के परिणय में एक नूतन आदर्श प्रस्तुत किया है ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.159
2. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ.104

"सुनीता" की सुनीता श्रीकांत की पत्नी है और हरिप्रसन्न की प्रेमिका भी । सुनीता हरिप्रसन्न के सामने हमेशा समर्पण भाव प्रकट करती है । वह हरिप्रसन्न के साथ आधी रात में सुनसान जंगलों में जाने के लिए भी तैयार हो जाती है । स्त्री का यह निरीह आत्मसमर्पण भृगामय है । "विवर्त" की नायिका भुवन मोहिनी में भी पत्नी और प्रेयसी का सहअस्तित्व देख सकते हैं । भुवन मोहिनी पति परायण होते हुए भी प्रेमी जितेन से कहती है, "मैं सब कुछ हूँ तुम्हारी ।"[1] उपन्यास के अंत में जितेन के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए भी वह तैयार होती है । "व्यतीत" की नायिका अनीता जयंत से प्रेम करती है लेकिन शादी पुरी से । विवाह के बाद भी अनीता जयंत के पीछे जाती है । स्त्री का निरीह आत्मसमर्पण उस के शब्दों में भी प्रकट है । वह जयंत से कहती है "मैं सामने हूँ मुझ को तुम ले सकती हो । समूची को जिस विधि चाहे ले सकती हो ।"[2] इसी तरह "मुक्तिबोध" में दर की पत्नी होने पर भी नीलिमा सहाय से प्रेम करती है ।

जोशीजी के "भूत का भविष्य" के राकेश की पत्नी नंदा के मन में भूतनाथ के प्रति प्रेम और आकर्षण का भाव है । लेकिन जैनेन्द्र की नायिकाओं के समान वह प्रेम को खुलकर प्रकट नहीं कर पाती । वह उस का दमन करती है और यह दमित काम वासना उसे मानसिक रोगी भी बनाती है ।

अज्ञेय के "शेखर : एक जीवनी" में शशि पत्नी होकर भी शेखर की प्रेमिका है । वह स्वयं को मिटाकर शेखर के बिखरे हुए

---

1. जैनेन्द्रकुमार - विवर्त - पृ.16
2. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.85

व्यक्तित्व को स्वस्थ एवं सुनिश्चित पथ की ओर उन्मुख करने में योग देती है । वह पति का मारपीट निरंतर झेलती है । क्योंकि उस ने माँ की मान रक्षा करने मात्र के लिए विवाह किया था । विवाह के बारे में वह कहती है "मैं ने तो ब्याह किया नहीं था, मेरे तो ब्याह हुआ था ।"[1] यह अतृप्ति उसे शेखर की ओर अधिक खींच लेती है । लेकिन अंत में शशि प्रेमिका और पत्नी दोनों के रूप में सफल नहीं हो पाती है । "नदी के द्वीप" में रेखा भी पत्नीत्व और प्रेयसीत्व साथ साथ निभाती है ।

मनोरोगग्रस्त पात्र

जैनेन्द्र और जोशी के कुछ उपन्यासों में मनोरोगग्रस्त पात्र भी मिलते हैं । जोशीजी के "भूत का भविष्य" में नंदा मनोरोगी पात्र है । नंदा को बार बार चक्कर आती है । डाक्टरिनी कहती है कि नंदा का रोग शारीरिक नहीं मानसिक है । इस का कारण ढूंढने पर नंदा डाक्टरीनी से कहती है "एक कारण तो स्पष्ट ही यह है कि जो व्यक्ति अपनी रोटी का ही कोई प्रबंध कर सकने में अक्षम हो उस से इस ज़माने में कैसी चाहत ! दूसरे कारण का अनुमान आप ठीक ही लगा रही है - मैं इधर एक दूसरे व्यक्ति को चाहने लगी हूं ।"[2] नंदा अपने प्रेमी राकेश को कायर और निकम्मा जानकर निराश हो जाती है । उसी समय नंदा का मन भूतनाथ की ओर आकर्षित भी होती है । उस के मन का घोर संघर्ष उसे मनोरोगी बनाता है । डाक्टरीनी

---

1. अज्ञेय - शेखी : एक जीवनी - पृ.115
2. इलाचन्द्रजोशी - भूत का भविष्य - पृ.115

कहती है कि नंदा की असंतुलित मानसिक अवस्था ही उसके चक्कर का कारण है । जैनेन्द्र के "कल्याणी" में कल्याणी भी मानसिक संघर्ष के कारण "हैल्यूसिनेशन" नाम्क मनोरोग का शिकार बनती है । कल्याणी के मन में एक ओर पूर्व प्रेम की निराशा और कुंठा है तो दूसरी ओर आदर्श भारतीय पत्नी बनने की प्रबल इच्छा । इन दोनों का संघर्ष उस के मन में निरंतर चलता रहा है । इस के अलावा पति का मार-पीट भी कल्याणी को सहन करना पड़ता है । यह पृष्ठ-भूमि उसे मनोरोगी बनाती है । "सुनीता" में हरिप्रसन्न "शिज़ोफ्रेनिया" या मनोविघटन से ग्रस्त पात्र है । हरिप्रसन्न के जीवन में काम पूर्णतया उपेक्षित है । उस ने अपनी काम भावना का दमन किया है । फलस्वरूप वह असामान्य, असंतुलित अपने आप में खोया सा होता है । "शिज़ोफ्रेनिक" रोगी होने के कारण उस में सामाजिक भावना की कमी होती है । इसलिए वह एकाकी रहता है । असामाजिक चिंतन के कारण वह भाभी सुनीता को केवल स्त्री के रूप में पूर्ण रूप से पाना चाहता है ।

इस तरह के मनोरोगग्रस्त पात्रों को मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में स्थान मिला है । लेकिन अज्ञेय के उपन्यासों में ऐसे पात्र नहीं है । क्योंकि अज्ञेय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विश्लेषण के पीछे नहीं । उपन्यास व्यक्ति के अन्तर्मन को चित्रित करने के कारण या व्यक्ति वैचित्र्यवाद पर आधारित होने के कारण मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अंतर्गत आते हैं ।

चरित्र चित्रण

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों के मानसिक उलझनों को यथार्थ रूप में चित्रित करने के लिए तथा उन की यौन कुंठाओं को उखाडने के लिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने आधुनिक मनोविज्ञान की

नवीनतम खोजों से लाभ उठाया है । पात्रों के अचेतन को पकड़ने की मूल प्रवृत्ति जैनेन्द्र की "सुनीता" में पहली बार हुई । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र चित्रण के लिए बहिरंग और अंतरंग दोनों प्रणालियों का प्रयोग किया है ।

1. बहिरंग चरित्र चित्रण प्रणाली

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र चित्रण की बहिरंग प्रणाली का महत्व कम है । पात्र के नाम, प्रथम परिचय, अनुभाव चित्रण, आकृति या वेशभूषा आदि बहिरंग प्रणाली के अंग है । जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों में बहिरंग चरित्र चित्रण प्रणाली के बहुत सारे अंगों का प्रयोग हुआ है ।

पात्रों का नामकरण

कुछ उपन्यासों में पात्रों के चरित्र की कोई-न-कोई विशिष्टता उनके नामकरण का आधार बना है । जैनेन्द्र के आरंभिक उपन्यासों में तो यह प्रवृत्ति बहुत प्रबल रही है । उन के पात्रों के नाम ही उन की चारित्रिक विशिष्टताओं पर प्रकाश डालते हैं । "परख" के नायक का नाम सत्यधन है । वास्तव में वह सत्य का उपासक है । उस का फैसला है कि "झूठ के बिना वकालत नहीं, तो मैं वकालत करना ही नहीं ।"[1] इस उपन्यास में "कट्टो" के नाम के बारे में जैनेन्द्र स्वयं कहता है "यह नाम बिलकुल निरर्थक नहीं है । कट्टो गिलहरी को कहते हैं । उस की ठोडी गिलहरी के मुंह जैसी है वैसी ही नौकदार ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ.10

उस के चेहरे से भी गिलहरी का भाव टपकता है । झटपट यहाँ दौड, वहाँ दौड, इधर देख उधर देख - ये सब भाव उस में है ।"[1] "त्यागपत्र" की नायिका मृणाल के नाम तथा चरित्र में अत्यधिक समानता देख सकते हैं । "कमल - नाल के समान वह आँधियों और लहरों के थपेडों के अनुरूप ही मुड्कर स्वयं पंक में गहरी धँसकर भी समाज व्यवस्था के कमल को धारण किये रहती है, उसे चोट से बचाये रहती है ।"[2]

"व्यतीत" के नायक जयंत का व्यक्तित्व भी उस के नाम के अनुसार विजयी ही रहा है । इसी प्रकार सुखदा, कल्याणी, चन्द्री, सुनीता, जयवर्धन, स्वामी चिदानंद आदि के नामों में उन के चरित्र की किसी न किसी विशेषता की झलक है ।

जोशीजी ने "जिप्सी" में क्रांतिकारी पात्र को वीरेन्द्रकुमार नाम रखा है । वह पूंजिपति होते हुए भी सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है । वीरेन्द्र दलित और पीड्ति के उन्नयन के बारे में रंजन से कहते समय उसकी "आँखें जैसे जल रही थीं । उस समय जैसे उस के सामने उस का मित्र नृपेन्द्र रंजन नहीं बैठा हुआ था । बैठा था मूर्तिमान शोषक समाज - अपने विचारों की समस्त संकीर्ण स्वार्थपरायणता, गंदगी और सडन लिए हुए । और वह स्वयं जैसे वीरेन्द्र नहीं था । वह था सदियों से सताये और लौहचक्र में पिसे हुए दलित वर्गों की युग-युग संचित प्रति-हिंसा का पुंजीभूत प्रतीक ।"[3] "भूत का भविष्य" में भूतनाथ का नाम बिलकुल सार्थक और अपने चरित्र का पारदर्शी है । हरिजल होने के कारण

---

1. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ.2।
2. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ.37
3. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.294

भूतनाथ को अनेक सामाजिक विषमताओं का सामना करना पड़ता है । इसलिए हीनताग्रंथि का शिकार बनकर वह एक भूतहा - मकान में भूत की तरह रहता है । वह उस मकान के किरायेदारों को डराकर भगाता है । राकेश ने एक अफवाह सुना था कि भूतनाथ की मृत्यु हो चुकी है । इसलिए बाद में भूतनाथ से मिलने पर वह कहता है, "तुम ने तो अपना नाम सार्थक कर दिया, मित्र । आज लग रहा है कि "भूतनाथ" तुम्हारा बहुत ही उपयुक्त नाम है । मैं तो इस चक्कर में हूँ कि मेरे आगे जो व्यक्ति बैठा है वह जीवित लोक का प्राणी है या भूत लोक का ? तुम्हारे चेहरे में मैं भूत-लोक की सी एक अजीब-सी छाया साफ़ देख रहा हूँ ।"[1]

"सन्यासी" में शांति का चरित्र भी नाम के अनुरूप है । बलदेव शांति के बारे में नंदकिशोर से कहता है "भाई साहब, आप की शांतिदेवी सचमुच एक स्वर्गीय शांति की प्रतिछाया हैं ।"[2] शांति अपने व्यवहार से सब को प्रभावित करती है । इसी तरह पात्र का नाम उस के चरित्र विशेष के आधार पर रखना परंपरागत रीति है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लिए यह उचित नहीं है ।

प्रथम परिचय

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कुछ पात्रों के प्रथम परिचय के आधार पर उस के भावी "आचार-व्यवहार" का या चरित्र का फीका सा चित्र मिल जाता है । लेकिन यहाँ उपन्यासकार वास्तव में उपयुक्त

---

1. इलाचन्द्रजोशी - भूत का भविष्य - पृ.27
2. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.193

समय के पूर्व ही उन की चारित्रिक विशिष्टताओं को प्रकाश में लाकर उन के चरित्र विकास के प्रति पाठकों के औत्सुक्य को मंद कर देता है । "सुनीता" में पाठकों को पात्रों के बारे में स्वयं कुछ जानने का अवसर प्रदान किये बिना ही उपन्यासकार उन पर अपनी धारणाएँ लाद देते हैं । उपन्यास के आरंभ में ही जैनेन्द्र श्रीकांत और हरिप्रसन्न की चारित्रिक विशेषताओं का विस्तृत तुलनात्मक परिचय देते हैं "श्रीकांत खुले मन, पुष्ट देह, संपन्न परिस्थिति, सुन्दर वर्ण और धार्मिक वृत्ति का पुरुष था ····· हरिप्रसन्न वृत्ति से कुछ संदेहशील, चतुर, कर्मकुशल, तीक्ष्ण बुद्धि और परिस्थिति से असंपन्न था ।"[1] "परख" में "थोडा कट्टो से परिचय करें" कह कर जैनेन्द्र उस का परिचय देता है । कई बार पात्रों का चरित्र-विकास उन के प्रथम परिचय से काफ़ी दूर जा पड़ता है । इसलिए उपन्यासकार का मत निरर्थक हो जाता है । "कल्याणी" में जैनेन्द्र एक साथ ही कई आवश्यक अनावश्यक पात्रों का प्रवेश करा के उन का परिचय देता है । पात्रों के प्रवेश के बारे में फोस्टर का मत है "उपन्यास में पात्रों का प्रवेश तब तक नहीं होना चाहिए जब तक कि उन को करने केलिए कोई विशेष काम न हो ।"[2] सुखदा में सुखदा अपना परिचय स्वयं देती है । "व्यतीत" में जयंत भी अपना परिचय देता है । यहाँ उपन्यासकार पात्र और पाठकों के बीच न आने के कारण पात्र का प्रथम परिचय अधिक स्वाभाविक होता है ।

"शेखर : एक जीवनी" में शेखर से जब पाठक की पहली भेंट होती है तब शेखर का व्यक्तित्व परिपक्व हो चुका होता है । शेखर हमें पहली बार फाँसी की कोठरी में मिलता है । वास्तव में उस का परिचय तो उपन्यास के प्रथम खंड, "उषा और ईश्वर" से ही मिलना आरंभ होता है । चरित्र चित्रण की यह नाटकीय शैली अधिक

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.2
2. Aspects of the Novel - E.M. Froster, p.51

प्रभावी है । जोशीजी भी पात्रों का प्रथम परिचय नाटकीय ढंग से देता है । जैनेन्द्र की तरह वे भी पात्रों को पाठकों के सामने लाने से पहले वातावरण के निर्माण में जुडे नहीं रहते । "जहाज का पंछी" में भादुडी महाशय की पुत्री दीप्ति का प्रथम परिचय ऐसा मिलता है "मुझे दीप्ति का व्यक्तित्व, जाने क्यों बहुत ही प्रिय लगता था । वह बडी ही हंसमुख, ढीठ स्वस्थ और सुन्दर लड़की थी । अपनी माँ से उस ने थोडी सी मोटाई पाई थी और अपने पिता से लंबाई । उस का गोरा सा चेहरा भी उपयुक्त अनुपात में गोलाई लिए हुए लंबा था । ..... किसी विशेषज्ञ दर्शक पर गहरा प्रभाव छोडे बिना न रहती ।"[1] लेकिन "पर्दे की रानी" में निरंजना का प्रथम परिचय अरोचक रूप से लंबा हो गया है ।

अनुभाव चित्रण

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पात्रों को समझने के लिए उन के अनुभावों की सहायता लेते हैं । ये पात्र कभी कभी आंतरिक विस्फोट को नियंत्रण में लाने की कोशिश करते हैं । लेकिन कुछ क्षण के लिए उन के भीतर का हाल उन के मुख-भाव में प्रतिबिंबित होती है । इन अनुभावों से पात्र की मानसिक अवस्था समझ सकते हैं ।

जैनेन्द्र के पात्र कभी कभी आंतरिक भावों को दबाकर चेहरे पर विपरीत भाव ले आने का प्रयत्न करते हैं । कल्याणी का डॉ॰ भटनागर के घर जाने के विषय को लेकर डॉ॰ असरानी उस से झगडा करता है । पर कल्याणी खिल खिलाकर हंसते हुए यह घटना वकील

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ॰158

साहब को सुनाती है । वकील साहब उस हँसी में छिपी व्यथा समझ लेते है । वह उस के बारे में कहता है "पर वह हँसी मुझे हास्यजनक किसी तरह न हो सकी । मेरे मन में उस से व्यथा ही पैदा हुई । जैसे उस के भीतर हँसी से दारुण कुछ और रहे ।"[1] "सुनीता" की सुनीता हरिप्रसन्न के साथ क्रांतिकारी दल में जाने के पहले सत्या उस से पूछती है कि कहाँ जा रही है ? तब सुनीता की आखें भर आयी । उस ने कहा, "सत्या, मेरी बहन, तू रहने दो । मैं क्या बताऊँ कि कहाँ जा रही हूँ ।"[2] सुनीता के इन शब्दों से उस की विवशता स्पष्ट हो उठती है । "सुखदा" के क्रांतिकारी गंगासिंह के प्रति सुखदा की सहानुभूति पति के प्रति घृणा के रूप में फूट पड़ती है । पात्र के विचार और भाव को उन के बाह्य व्यवहार से पकडना आसान नहीं है । फिर भी जैनेन्द्र इस में समर्थ है ।

जोशीजी के "मुक्तिपथ" का राजीव बंजर भूमि में कठिन प्रयत्न कर के करीश्मा दिखाना चाहता है । वह सुनंदा से कहता है "तुम देख लेना ! केवल धैर्य-लोहे की चट्टान की तरह अडिग धैर्य - की आवश्यकता है ।"[3] उस समय सुनंदा राजीव की आँखों में सपनों की छाया देखती है । स्पष्ट है कि मनुष्य का आंतरिक भाव उस के मुख में विशेषत: आखों में ही अधिक प्रकट होता है । "जिप्सी" का नायक भी सोई हुई मनिया के पास बैठकर उस के मुख पर व्यक्त होनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन करता है, "वह प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी, किंतु उस के कपोल की नसें, पलकों का स्नायुतंत्र, होठों की त्वचा जैसे किसी अशांत अनुभूति से प्रतिपल नयी नयी चेष्टाओं के साथ चालित हो रहे थे । कभी वह अपनी भौंहों को सिकोडती थी,

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.42
2. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.211
3. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ.244

जैसे किसी निर्मम पीडा से कराहना चाहती हो ।"[1]

जोशी के "पर्दे की रानी" जिप्सी, ऋतुक्र आदि उपन्यासों में भी अनुभावों के माध्यम से पात्रों के अन्तर्मन को झाँकने का कार्य किया है । अज्ञेय के "अपने अपने अजनबी" में योके सेल्मा के चेहरे का स्थान स्थान पर अनोखा अध्ययन करती है । योके को बुढिया के अंतर के अध्ययन में आखें और भी अधिक योग दे सकती थीं, "वह कहती भी है कि उन आखों से पूछ लेती कि बुढिया के जीवन का रहस्य क्या है पर यदि अटिकल भाव से बुढिया से आखें मिलाने की हिम्मत कर सकती, और उस को अपनी आखों में छिपे विरोध भाव के दीख जाने का डर न होता ।"[2]

शेखर : एक जीवनी और नदी के द्वीप में भी अनुभाव चित्रण के उदाहरण मिलते हैं ।

आकृति या वेश-भूषा चित्रण

हिन्दी के प्रारंभ कालीन उपन्यासों में उपन्यासकार रीति-कालीन कवियों की भाति पात्रों के नख-शिख वर्णन में उत्सुक थे । कदाचित इस प्रवृत्ति की व्यर्थता को देखकर ही प्रेमचंद ने कहा था, "किसी चरित्र की रूपरेखा करते समय हुलियानवीसी की जरूरत नहीं । दो चार वाक्यों में मुख्य-मुख्य बातें कह देनी चाहिए ।"[3] लेकिन स्वयं

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ·63
2. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ·17
3. प्रेमचंद - कुछ विचार - पृ·48

प्रेमचंद भी इस में असमर्थ निकले हैं । जैनेन्द्र , जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों में इस प्रकार के आकृति चित्रण का प्रभाव अदश्य पड़ा है ।

"शेखर : एक जीवनी" में शेखर की वेश-भूषा का परोक्ष संकेत नहीं मिलता । वे भी उस के चरित्र विकास को व्यक्त करते हैं, "दक्षिण लाहौर में बी·ए· केलिए आने पर, उस ने वहाँ के विद्यार्थी समाज में प्रवेश पाने केलिए सूट-टाई, हैट आदि को विशेष सफलता से अपनाया । वेश के सहारे ही उसे आसानी से चारों ओर रास्ता मिलने लगा ।"[1] व्यक्ति की अपेक्षा वर्गगत विशेषता से युक्त पात्रों की वेश-भूषा वर्णन भी अज्ञेय ने किया है "शेखर के पिता लंबे कद के, गौर वर्ण, गठे हुए और उद्यमी शरीर के थे । उन की तीखी आँखें, बंकिम नाटक, मोटा किंतु दबा हुआ अधरोष्ठ उन के उस अभिमानी और गुस्सैल आर्यत्व का परिचय देते थे ।"[2] "नदी के द्वीप" में भुवन के रोमांटिक मन को व्यक्त करने के लिए अज्ञेय ने भुवन द्वारा रेखा की वेश-भूषा का वर्णन कराया है । रेखा के विविध वर्ण के कपडे बदलने का उल्लेख लगभग छः सात स्थानों पर किया है ।

जैनेन्द्र ने अपने प्रारंभिक उपन्यासों में पात्रों की आकृति और चरित्र-चित्रण को विशेष स्थान दिया है । "सुनीता" का श्रीकांत अपने मित्र हरिप्रसन्न को इस प्रकार देखता है "उस के बडे बडे बाल हैं और वह खद्दर का लंबा-सा कुरता पहन रहा है ।"[3] उस ने सोचा कि वह कोई साधु हो । श्रीकांत के साथ पाठक भी सोचते हैं कि यह व्यक्ति साधु हो गया होगा । क्योंकि इस प्रकार के आकृति-वाला आदमी साधु हो सकता है या सनकी । हरिप्रसन्न के अंतर्मुखी चरित्र की ओर प्रकाश डालने केलिए उपर्युक्त आकृति-वर्णन पर्याप्त है ।

1· अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - भाग - 1 - पृ·12-13
2· वही - पृ·126
3· जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ·20

"त्यागपत्र" का प्रमोद अपनी बुआ की स्थिति उस की देश-भूषा से समझ लेता है । कोयले व्यापारी के साथ रहती मृणाल को प्रमोद ने इस वेश में पाया, "देह दुबली थी, मुख पीला था । गर्भवती थी । एक धोती में अपनी सब देह ढाके बैठी थी ।"[1] इसी तरह "व्यतीत" और "विवर्त" में भी चरित्र चित्रण के लिए आकृति या देश-भूषा का सहारा लिया गया है । "जयवर्धन" के आचार्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "पैंसठ वर्ष के जैसे कोई युवा पुरुष समक्ष हों, चेहरे पर शांति, शरीर सूता हुआ और संयत बदन पर सिर्फ एक उपरना पड़ा था और छुटने तक की धोती पहने थे ।"[2]

कुछ उपन्यासों में जोशी ने आकृति और देश-भूषा के लंबे-लंबे विवरण से पाठकों को नीरस किया है । उदाहरण केलिए "मुक्तिपथ" में राजीव का परिचय ऐसा देता है, "उस का शरीर न इकहरा था न दुहरा । संतुलित कद का, अच्छा गठा हुआ सा लगता था । रंग उस का गोरा था । दाढ़ी के काले काले घुंघराले बालों से मुँह ढका था । सिर के बडे-बडे बाल रूखे और बिना सँवारे थे । उस की आंखों में कभी निर्विकार, उदासीन भाव झलकता था, कभी वे एक अज्ञात तीव्र आवेग से प्रदीप्त हो उठती थीं ..... ।"[3] जोशी अपने अपन्यासों में पात्रों की आकृति और देश-भूषा का वर्णन उन के प्रथम प्रवेश के समय करते हैं । "जिप्सी" का नायक नृपेन्दरंजन, नायिका मणिया आदि का वर्णन भी इस प्रकार करते हैं । "जिप्सी" में कांची का नख-शिख वर्णन यों मिलता है "पहाडी खूबानी की तरह

---

1. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ·50
2. जैनेन्द्रकुमार - जयवर्धन - पृ·32
3. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ·3

उस का खोल मुख स्वास्थ्य और सरसता से भरपूर था । उस के सिर के घने काले और चिकने बाल, सुडौल भौंहें, न बहुत छोटी, न बहुत बडी आँखों की घनी और लंबी बरौनियां, न बहुत चिपटी और बहुत तीखी नाक, लंबे-पतले, रंगे हुए से ओठ, सब मिलकर उसके प्रसन्न मुख को एक अनोखा आकर्षण प्रदान करते थे ।"[1]

आकृति और वेश-भूषा के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुमान करना कभी कभी भ्रामक हो जाता है । इस का उदाहरण "जहाज का पंछी" में मिलता है । इसके नायक "सिर के रूखे-सूखे, अस्त-व्यस्त बाल, घनी घास से भरी क्यारियों की तरह दो गलमूछें और उन गलमूछों के अगल-बगल और नीचे फैले हुए, एक हफ्ते से न छीले गये, फसल कर जाने के बाद शेष रह जानेवाले सूखे खूँटों की तरह छितराए हुए दाढी के कडे बाल, क्षयरोग के रोगियों की तरह मुरझाया हुआ दुबला-पतला, धुले हुए कपडों की तरह रक्तहीन सफेद चेहरा, धँसी हुई आँखें, गड्ढे पड़े हुए गाल और गालों की ओर उभरी हुई नुकीली हड्डियां, तिस पर कई दिनों से धुलने की सुविधा न होने से मैला कुर्ता और मैली धोती"[2] को देखकर लोग उसे गिरहकट सांचते हैं । इसी वेश-भूषा के कारण ही पहले उसे भादुड़ी महाशय के घर से बाहर निकाल दिया गया था । पर बाद में जब स्वस्थ शरीर और उजले कपडों के साथ पहुँचता तो उसे वहां नौकरी भी मिल जाती है ।

2· अंतरंग चरित्र चित्रण

इन उपन्यासों में बहिरंग चरित्र चित्रण प्रणाली की अपेक्षा अंतरंग चरित्र चित्रण प्रणाली को ही प्रमुख स्थान है । पात्र के

1· इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ·38

2· इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ·10

अचेतन के विश्लेषण द्वारा उन की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाश में लाने केलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने इस प्रणाली का प्रयोग किया है ।

अन्तर्द्वन्द्व

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र जीवन भर संघर्ष की चक्की में पिसते रहते हैं । लेकिन यह संघर्ष बाहरी शक्तियों से नहीं, अपने ही भीतर से है । ज़िन्दगी भर वे इतने व्यग्र रहते हैं कि क्षण भर के लिए उन्हें चैन नहीं मिलता जैसा कि एडलर ने सूचित किया है, "जीवन में गलत दृष्टि अपनाने से व्यक्ति के चेतन और अचेतन में लगातर संघर्ष चलता रहता है ।"[1]

जैनेन्द्र की नायिकाएँ किसी की पत्नी होने के साथ ही किसी की प्रेमिकाएं भी हैं । इसलिए वे पूर्णत: अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त रहती हैं । उन की नायिकाएं पति से अधिक प्रेमी को चाहती हैं । लेकिन पति से पूर्णत: अलग हो जाने में वे असमर्थ भी हैं । "सुखदा" के हरीश दादा द्वारा आयोजित क्रांतिकारी दल की बैठक में भाग लेने के लिए घर से निकलते समय सुखदा ने अपने पति से यों कहा "स्त्री के भी हृदय होता है और वह भी दायित्व रखती है । मैं इस सभा में जाऊंगी, तुम रोक नहीं सकते ।"[2] जिस सुखदा को अपनी निर्णायक बुद्धि पर इतना विश्वास था वही जब हरीश से इस प्रकार कहते तो आश्चर्य होता है,

---

1. Frued - Beyond the Pleasure Principles, p.5
2. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ.31

"मैं तो साथ हूँ, पर पदाधिकारी न बनावें । और अभी "उन" से पूछना भी ..... ?"[1] इसी तरह "विवर्त" में भुवन मोहिनी जितेन से कहती है, "मैं सब कुछ तुम्हारी हूँ और पति की केवल पत्नी ।"[2] वही भुवनमोहिनी "पति के प्रति विश्वासाघात करने की बात सोचते ही मानों उसे बिच्छू डंक मारने लगते हो ।"[3] अनामस्वामी का प्रमुख पात्र शंकर उपाध्याय उपन्यास के आरंभ से अंत तक अन्तर्द्वन्द्व का शिकार है । उस के मन में वसुंधरा के प्रति प्रेम और निराशाजन्य प्रतिशोध का घोर संघर्ष चलता है । उस के अहंग्रस्त और अबनार्मल व्यवहार के पीछे यही आत्मसंघर्ष सक्रिय है । इसी तरह "परख" का सत्यधन, "सुनीता" की सुनीता और "त्यागपत्र" की मृणाल भी तीव्र मानसिक संघर्ष से पिसते रहते हैं ।

जोशीजी के "सुबह के भूले" में निम्न वर्ग की गुलबिया संपन्न व्यक्तियों के ठाठदार रहन-सहन देखकर, अपनी हीन अवस्था से जल-भुनकर सारा क्रोध अपने घरवालों पर उतारती है और भीतर ही भीतर द्वन्द्व का अनुभव करती है "वह अपने व्यवहार के लिए स्वयं ग्लानि का अनुभव करने लगी । उस ने नाहक अपनी भोली अम्मा और स्नेही चाचा का जी दुखाया । ..... अपना सारा क्रोध उस ने उन निरपराधों पर क्यों उतारा .... ?"[4] गुलबिया का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यासकार के हस्तक्षेप के बिना ही स्वयं खुल जाता है । "प्रेत और छाया" का पारसनाथ अपनी मानसिक ग्रंथि के कारण स्त्री के प्रति प्रेम और घृणा का संघर्ष झेलता है । पर जब वह जान लेता है कि उस की माँ पतिव्रता थी

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ.33
2. जैनेन्द्रकुमार - विवर्त - पृ.27
3. जैनेन्द्रकुमार - विवर्त - पृ.39
4. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले - पृ.139

तब उस का अन्तर्द्वन्द्व साधारण है । "पर्दे की रानी" की निरंजना के हृदय में शीला के प्रति सच्ची ममता है, फिर भी वह उस के सर्वनाश के लिए तुली रहती है । क्योंकि वह नहीं चाहती कि शीला के पति को मार कर वह उस के सर्वनाश का कारण बने । लेकिन वही घटित होती है जो वह करना नहीं चाहती थी । अपने स्वभाव की इस विचित्रता पर वह स्वयं आश्चर्य प्रकट करती है, "मैं ने जानकर या अनजान में तुम्हारे साथ भयंकर अन्याय किया है, कर रही हूँ और बहुत संभव है भविष्य में भी करती रहूँगी । फिर भी तुम यह निश्चित रूप से जान लो कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में एक सच्ची ममता वर्तमान है । तिस पर भी मैं तुम्हारे सर्वनाश के लिए क्यों तुली हुई हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जानती । अपने स्वभाव की इस विचित्र विकृति पर मुझे स्वयं आश्चर्य होता है ।"[1] "मुक्तिपथ" की सुनंदा और "भूत का भविष्य" की नंदा जैनेन्द्र की नायिकाओं की तरह पति और प्रेमी के कारण मानसिक संघर्ष झेलती है । "जहाज का पंछी" के नायक के कानों में हमेशा समाज के शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षितों की आवाज़ गूंज उठती है । लीला जैसे संपन्न वर्ग की सुख-सुविधा में उस के मन को खुशी नहीं मिलती । लीला का प्रेम और सहृदयतापूर्ण व्यवहार उसे प्रतिपल लीला का तरफ़ खींच लेते हैं । पर समाज कल्याण की उपेक्षा कर के लीला के साथ सुखपूर्ण जीवन बिताना उस के लिए असंभव है । वह लीला से कहता है "अवश्य मैं द्वन्द्व युद्ध की बात सोच रहा था, पर वह द्वन्द्व अपने से था, किसी दूसरे से नहीं ।"[2] वास्तव में यहाँ नायक का अहं लीला के प्रेम के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं होता । इसलिए वह मानसिक द्वन्द्व का शिकार बन जाता है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.165
2. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.326

"शेखर : एक जीवनी" में बचपन से ही शेखर के मन में काम भावना तथा बौद्धिक अंत:संघर्ष चलता रहा है । कभी कभी पात्र का अचेतन संघर्ष अन्तर्विवाद के रूप में फूट पड़ता है । शशि से मन ही मन प्रेम करनेवाला किंतु उसे प्राप्त करने में असफल शेखर जेल से मुक्त होकर विवाहिता शशि के घर पहली बार आता है तो शशि और उस के पति के मनोभाव जानने की प्रबल आकांक्षा शेखर में होती है । इसलिए बाहरी स्तर पर शशि और पति के साथ संवाद होते समय ही शेखर में अन्तर्विवाद भी चलता है । इसी तरह "नदी के द्वीप" में चन्द्रमाधव का अंतसंघर्ष भी अंतर्विवाद के रूप में परिवर्तित होता है । भीतरी द्वन्द्व मानव-जीवन का अविकल अंग है । इसलिए चरित्रांकन में अंतर्द्वन्द्वों का अंकन स्वाभाविक है । "अपने अपने अजनबी" में योके में अंतर्द्वन्द्व सर्वाधिक मिलता है । योके जब सेल्मा की हत्या के प्रयास में विफल होकर आत्म-ग्लानि का अनुभव करती है तो सेल्मा के इस कथन में योके के अन्तर्द्वन्द्व का आधार स्पष्ट हो उठता है "..... मैं ने ही तुम्हें ऐसे संकट में डाला कि तुम्हें अपने भीतर ही दो हो जाना पडे । .... ।"[1] इस तरह योके का अंतर सर्वत्र दो की स्थिति में रहकर परस्पर झगड़ता रहा है । कुछ स्थानों में इस अंतर्द्वन्द्व ने अंतर्विवाद का रूप भी धारण किया है ।

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के पात्र समाज से अलग होकर अपने में सिकुड़ते रहने के कारण और अपने अहं को प्रमुख मानने के कारण वे हमेशा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त रहते हैं । इस अन्तर्द्वन्द्व के विश्लेषण के बिना उन के चरित्र को समझना नामुमकिन होगा ।

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.32

स्वप्नविश्लेषण

फ्रायडवादी मनोविश्लेषकों के अनुसार स्वप्न दमित आग्रहों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है । उन के अनुसार हमारे अचेतन प्रेरक जो जाग्रतावस्था में प्रकट नहीं हो पाते कई बार स्वप्न में अभिव्यक्ति पाते हैं । यदि वे प्रेरक असामाजिक या दुखद हों, सुषुप्तावस्था में भी हम उन्हें स्वीकार न कर सकते हैं तो वे स्वप्न में सीधे न व्यक्त होकर रूप बदलकर आते हैं । इसलिए उस का कहना है कि किसी व्यक्ति के स्वप्न-विश्लेषण द्वारा उसे अव्यवस्थित रखनेवाले अचेतन-कारणों को पकडा जा सकता है । अत: अपने पात्रों की असंगत प्रतीत होनेवाली चेष्टाओं के अचेतन कारणों को व्यक्त करने केलिए उपन्यास में पात्रों के स्वप्न-विश्लेषण किया करते हैं । "सुखदा" की सुखदा के स्वप्न-विश्लेषण से हम उसे अपने अचेतन की इच्छापूर्ती हेतु प्रयत्नशील पाते हैं । "परख" का बिहारी गाँव जाते समय रेल में बैठे-बैठे आनेवाले जीवन का चित्र बनाता है । वह जाग्रतावस्था में भी कट्टो को लेकर तरह-तरह के दिवास्वप्न देखता है ।

"सन्यासी" के नंदकिशोर का स्वप्न इस प्रकार का है । वह कार्निवल में जीतकर, बहुत सारे पैसे के साथ घर आता है तो वह देखता है कि घर में उस की पत्नी शांति और बलदेव हँसकर बातें करते रहते हैं । शांति और बलदेव ने उसे धोखा दिया समझकर नंदकिशोर नाराज़ होकर सारे पैसे उन को देता है । शांति और बलदेव बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ से चले जाते हैं । इतने में नंदकिशोर का स्वप्न टूट जाता है । इस स्वप्न से नंदकिशोर का मानसिक संघर्ष व्यक्त हो जाता है । शांति और बलदेव का प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर नंदकिशोर के मन में ईर्ष्या और जलन है । उस के अचेतन मन का भय और आकांक्षा

उस के स्वप्न में प्रतिबिंबित होते हैं । जयंती के प्रति नंदकिशोर का आकर्षण दिवास्वप्न द्वारा चित्रित किया है । नंदकिशोर तांगे में बैठकर जयंती के बारे में सोच सोच कर राजकुमार और राजकुमारी के सुंदर स्वप्न में विलीन हो जाता है । उपन्यास के लगभग चार पृष्ठों तक (पृ॰50-54) इस का विस्तृत वर्णन है ।

"कवि की प्रेयसी" का सौमिल शिरीषा के हठी स्वभाव से आहत रत्नप्रिया से परिचित हो जाता है । रत्नप्रिया के सरल स्वभाव और व्यवहार कुशलता पर वह मुग्ध हो जाता है । इसी अवसर पर सौमिल ने एक सपना देखा । उसे एक अलबेली युवति के साथ शिप्रा नदी में तैरनेवाले एक ठाठवाले बजरे में बिठाकर कहीं ले जा रहा था । वह देखता है कि उस की वह साथिन शिरीषा ही है, पर उस का स्वर शिरीषा का नहीं बल्कि रत्नप्रिया का है । स्वप्न का संकेत यह है कि सौमिल शिरीष के सौन्दर्य पर आकृष्ट है और रत्नप्रिया की वाक्चातुरी एवं स्वभाव पर । आगे वह देखता है कि वे शिप्रा नदी के शांत तरंगों को पारकर के किसी समुद्र की ओर बढ़ते जा रहे हैं, जो सौमिल की मानसिक आकुलता का द्योतक है ।

"नदी के द्वीप" में भुवन को लिखे पत्र में रेखा ने अपने स्वप्न का वर्णन इस प्रकार किया है "देखा कि तुम (भुवन) हमारे घर आए हो ..... हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति में, और सब से मिले हो, पिता तुम्हें बाहर नदी के किनारे की रौंस पर मेरे पास बैठा गये हैं, फिर हम लोग कागज़ की नावें बनाकर नदी में डालते हैं और उन का बह जाना देखते हैं । नावें कभी दूर-दूर तक चली जाती है, कभी नदी में बहते हुए शैवाल से उलझ

जाती हैं । सहसा देखती हूँ कि उन्हें हमारी कागज़ की नावों में हम भी बैठे हैं ..... रौंस पर बैठे देख भी रहे हैं, पर नावों में भी है, फिर नावें एक बालू के द्वीप में जा लगती है, जहाँ हम उतरकर नावों को खींच भी रहे हैं और रौंस पर बैठे देख तो रहे ही है । सहसा नदी का पानी बहती हुई बालू हो जाती है, और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहीं, कोई और चेहरा है, तुम मुस्कुराते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है, पर नहीं भी है, मैं कहती हूँ, यह सपना है, जागोगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जाएगा, तुम कहते हो सपना थोडी देर और देखो न, फिर चेहरा बदल नहीं सकेगा । फिर मैं मुस्कान देखती रही, थोडी देर में जग गई ..... ।"[1]

इसी तरह मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने पात्रों के चरित्र चित्रण केलिए सपनों का सहारा लिया है । पात्रों के अचेतन को समझने के लिए उन्होंने हैल्यूसिनेशन, मुक्त आसंग प्रणाली, शब्द सहस्मृति परीक्षण, बाधकता विश्लेषण, सम्मोह विश्लेषण आदि का भी प्रयोग किया है ।

हैल्यूसिनेशन

जैनेन्द्र और जोशी ने अपने दो तीन उपन्यासों में हैल्यूसिनेशन के आधार पर पात्रों के अचेतन के संघर्ष को व्यक्त करने का कार्य किया है ।

"कल्याणी" उपन्यास की नायिका कल्याणी है । वह हैल्यूसिनेशन रोग का शिकार है । उसे जो निराधार प्रत्यक्ष हुआ उसका

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.305

वर्णन जैनेन्द्र ने इस प्रकार दिया है "कोई एक महीने से गुसलखाने से सिसकी की आवाज़ उन्हें सुन पड़ती थी । जैसे कोई मुँह दबाकर रोता हो । ..... पहले तो वह सुनती रही और टालती गई । सोचा कि होगा कुछ । कहीं मन का भ्रम न हो । .... कई बार झपटकर वह वहाँ गई । पर देखें तो कहीं कुछ नहीं, एक रोज़ आधी रात बीते वह सपने से चौंककर जगी । ..... तभी सुनती क्या है कि जैसे गुसलखाने में कुछ फुस-फुस की आवाज़ हो रही है ।"[1] कल्याणी की इस मानसिक स्थिति के पीछे और कुछ कारण है । उस के मन में पूर्वप्रेम की निराशा और कुंठा ज़रूर है । आदर्श भारतीय पत्नी बनने की प्रबल इच्छा के कारण उसे पति की मार-पीट भी सहनी पड़ती है । इन दोनों ने कल्याणी के मन को विचलित किया था । कल्याणी का "ईगो" ही उस स्त्री के रूप में प्रकट हुआ है ।

वैवाहिक जीवन का विघटन, आदर्श पत्नी बनने की प्रबल इच्छा, पति की मार-पीट, मृत्यु भय, शराब पीने की आदत आदिने मिलकर उसे हैल्यूसिनेशन का शिकार बना दिया था ।

"प्रेत और छाया" के पारसनाथ के अचेतन की ग्रंथि निराकार प्रत्यक्षीकरण (हैल्यूसिनेशन) के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है । पारसनाथ मंजरी का गर्भ गिराने के लिए उसे छल से दवा देता है । लेकिन मंजरी तो शीशि में लेबल न होने के कारण दवा नहीं लेती । इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से बाधा उपस्थित होने पर पारसनाथ का अपराधी मन अत्यंत भीत और चिंतित हो उठता है "उस के भीतर

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.93-94

आत्म-ताडना की प्रवृत्ति फिर एक बार प्रबल रूप से जग उठी, और वह अपनी पापवृत्ति से अत्यंत भीत हो उठा । मंजरी की मृत माता की जो विकराल प्रेतात्मिका छाया इधर कुछ दिनों से - जब से नंदिनी से उस का घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ - तब से - अपना कोप शांत किए हुए थी, वह आज फिर पारसनाथ कुछ क्षणों तक शून्य दृष्टि से उस भयावनी छाया की ओर देखता रह गया । वह जानता था कि यह सब उस का भ्रम है, "हैल्यूसिनेशन" है और उस के अन्तस्तल में जमी हुई पाप-प्रवृत्ति और भय की भावना की काल्पनिक प्रतिच्छाया के सिवा वह और कुछ नहीं है । पर यह सब जानते हुए भी वह जैसे कुछ भी नहीं समझ पाता था और भय की वह काल्पनिक छाया जीवित और प्रत्यक्ष सत्य की तरह उस की आत्मा को बुरी तरह जकड लेती थी ।[1]"

"निर्वासित" की शारदादेवी के अचेतन की ग्रंथियाँ उस के निराधार प्रत्यक्षीकरण के रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं । शारदादेवी सोचती है कि उस की बहन गौरी के प्रति और समिधा के प्रति ठाकुर द्वारा किए गए अन्याय का बदला लेने के लिए प्रकृति ने शारदादेवी को चुना है । इस का कारण वह नहीं जानती है । वह कहती है "संभव है यह मेरे अपने ही स्वभाव की प्रतिक्रिया हो और यह भी बहुत संभव है कि किसी रहस्यमय कारण से मुझे यह प्रेरणा मिली हो । कभी कभी रात में जब मैं मन और मस्तिष्क की भ्रांत अवस्था में जगती रही हूँ, मुझे ऐसा बोध हुआ है जैसे कभी दीदी और कभी समिधा की अस्पष्ट अशरीरी छाया मेरे सामने आ खड़ी हुई हो और अपने मुख की अत्यंत करुण अभिव्यक्ति से मेरे भीतर एक मार्मिक अनुभूति जगाकर मुझे उस भयानक कर्तव्य के लिए प्रेरित कर रही हो, जो मेरी अपेक्षा किसी

---

1. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.260-261

सबल प्राण पुरूष के लिए अधिक उपयुक्त है ।"[1] लेकिन वह जानती है कि ये सब उस की अन्तर्भावनाओं की प्रतिच्छायाएँ हैं ।

स्वप्नों के समान निराधार प्रत्यक्षीकरण भी निरी मनोरचना है । स्वप्न और निराधार प्रत्यक्षीकरण में अंतर केवल इतना है कि स्वप्न सुषुप्तावस्था में होता है तो हैल्यूसीनेशन या निराधार प्रत्यक्षीकरण जाग्रतावस्था में । इसलिए अधिक स्पष्ट है । यह चरित्र चित्रण में एक नया प्रयोग है ।

मुक्त आसंग प्रणाली (फ्री एसोसिएशन)

यह एक फ्रायडीय मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली है । इस प्रणाली के द्वारा पात्र के अचेतन के विचारों एवं ग्रंथियों को बाहर ला सकते हैं । मुक्त आसंग प्रणाली में, पात्र को आराम से लेटाकर कहा जाता है कि वह अपनी आलोचनात्मक शक्ति को दबाकर अपने विगत जीवन की घटनाओं और अनुभूतियों को अपनी स्मृति में लाता जाये और जिस रूप में कोई घटना या कोई बात उस की स्मृति में लाता जाये और जिस रूप में कोई घटना या कोई बात उस की स्मृति में आये, वह अपनी ओर से कुछ मिलाये बिना उसे कहता जाये ।"[2] मुक्त आसंग पात्र के अचेतन की ग्रंथि को चेतन में ला देता है.। इस प्रकार स्मृतियों के स्वत: प्रवाह में व्यक्ति के अचेतन की ग्रंथियों के कारणों की खोज भी आसान हो जाता है । जैनेन्द्र और जोशी ने अपने कुछ उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के लिए इस प्रणाली का लाभ उठाया है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.167
2. रणवीर रांग्रा - मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की बृहत्रयी - पृ.108

"त्यागपत्र" में आंशिक रूप में मुक्त आसंग प्रणाली का प्रयोग मिलता है । प्रमोद कभी कभी मृणाल के अचेतन को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देता है । लगभग चार पृष्ठों तक फैले अपने विगत जीवन की कथा सुनाने के उपरांत मृणाल प्रमोद से कहती है "प्रमोद, मैं न जाने क्या क्या बकती रही । कहनी - अनकहनी न जाने क्या-क्या कह गई हूँ । दुनिया में मेरे एक तुम हो कि जिस से दुराव मुझ से नहीं रखा जाएगा ।"[1] "सुनीता" के हरिप्रसन्न के अचेतन को पकड पाने के लिए सुनीता सचेष्ट रहती है । वह हरिप्रसन्न के रहस्य जानने केलिए उस के साथ के संपर्क को बनाए रखती है । इस में वह सफल भी निकलती है । "व्यतीत" में पैंतालीसवीं वर्षगांठ पर जयंत के गत जीवनी की घटनाएँ चलचित्र के समान उस के सामने आती हैं । जयंत के मुक्त आसंग आबाध फैलते गये हैं "आज सोचता हूँ, अनीता कौन थी ? लेकिन कौन किस का क्या होता है ? मन से मान लेने की ही सब बात है । कानून तो नियम रखता है और वहाँ दस्तावेज़ होते हैं । ..... ।"[2]

"जयवर्धन" में हूस्टन मनोविश्लेषक की सी शैली में जय से कहता है, "मुझे आप का कर्म विवरण नहीं चाहिए । वह तो उजागर है ही । आया हूँ तो अंतरंग लेने आया हूँ ।"[3] जय उस में रोक उत्पन्न करता है क्योंकि पात्र एकाएक निर्देशनीय नहीं बनता । इसी प्रकार इला भी प्रारंभ में रोक उत्पन्न करती है और हूस्टन समझ लेता है कि उस समय प्रश्न नहीं करना ही अच्छा है । पूर्ण रूप में तो नहीं परंतु आंशिक रूप में जैनेन्द्र के अधिकांश उपन्यासों में मनोविश्लेषक की उपस्थिति विद्यमान है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ.69
2. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.52
3. जैनेन्द्रकुमार - जयवर्धन - पृ.28

"निर्वासित" का धीराज महीप के पास अपने हृदय की बोझ हल्का करने के लिए स्वयं तैयार हो उठता है । उस समय उसके मुख-भाव में भी परिवर्तन होने लगता है "उस की आँखें चमक रही थीं और उस के मुख पर एक उत्तेजनापूर्ण आवेगमय भाव की प्रतिच्छाया व्यक्त हो रही थी । वह स्पष्ट ही हृदय खोलकर बातें करने की मानसिक स्थिति में था ।"[1] इसलिए उस के मन की बातें जानने का कौतूहल होते हुए भी महीप एक चतुर मनोविश्लेषक की भाँति उसे उकसाता नहीं, केवल जिज्ञासु भाव से उस की ओर देखता रहता है । धीराज क्षण भर केलिए चुप रहा और फिर मुक्त आलाप के रूप में उस की वाग्धारा फूट निकली जो आगे के तीन पृष्ठों तक (पृ॰84-87) प्रवाहित रही ।

उस के बाद पुन: जब महीप ने धीराज से पूछताछ आरंभ की तो उस ने देखा कि धीराज उस समय अपने अंतर की बहुत सारी बाधाओं को पार नहीं कर पा रहा है । तब महीप एक मनोविश्लेषक की भाँति धीराज से सारी बाधाओं को दूर करके बिना किसी संकोच के हृदय खुलने को कहता है । महीप के उस कथन से धीराज का संकोच बहुत कुछ दूर हो जाता है और वह अपने मन की बातें प्रस्तुत करने लगता है । धीराज की बातें सुनने के उपरांत महीप कहता है "मुझे ऐसा लगता है कि ठाकुर साहब की तीव्र इच्छा-शक्ति का आकर्षण रूपा के लिए प्रबल सिद्ध हुआ है कि उस का प्रतिरोध करना उस केलिए संभव नहीं रहा है, और कोई दूसरा चारा न देखकर उस ने अपनी क्षीण इच्छा शक्ति को उस प्रचंड प्रवेगशील इच्छा-शक्ति के आगे अर्पित कर दिया है ।"[2] रूपा का ठाकुर के प्रति आकर्षण की व्याख्या महीप इस प्रकार देता है । यद्यपि इस से धीराज को पूरी मानसिक शांति नहीं मिली तो भी वह बस बात को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता कि महीप ने उसे

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ॰84
2. वही - पृ॰101

जो बात सुझायी है, वह जाँच गयी है । वह कहता है "आप का अनुमान ठीक ही जान पड़ता है । मुझे भी आप की यह बात जाँचने लगी है ।"[1] धीराज को आश्चर्य है कि जिस वास्तविकता को महीप केवल आधे घण्टे की बातचीत से समझ गया, उसे वह तीन वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव से भी नहीं पकड़ पाया था । उस की यह स्वीकारोक्ति उसे एक "मनोवैज्ञानिक केस" बना देती है और महीप को मनोविश्लेषक ।

इसी तरह अट्ठाईसवें परिच्छेद से शारदादेवी का मुक्त आलाप कई पृष्ठों तक फैला हुआ है । शारदादेवी की बातें सुनकर महीप सोचता है "क्या आप वर्षों बाद एक अपेक्षाकृत सहृदय व्यक्ति के आगे अपने हृदय को उँडलने का सुयोग प्राप्त होने के कारण उन के भीतर की दयनीयता का बरसाती बादल फटकर साफ़ हो गया है ।"[2] "जहाज का पंछी" के एक स्थान पर नायक करीमचाचा की भेद भरी ज़िन्दगी के बारे में पूछता है । तब वह कहता है "मेरी ज़िन्दगी बडे ही सीधे-सादे ढंग से बीती है । उस में न कोई भेद रहा है न कोई राज़ । पर इतना ज़रूर कहूंगा दोस्त, ज़िन्दगी के जो मज़े जो लुत्फ मैं ने उठाये हैं वे सब को मुयस्सर नहीं हो सकते ।"[3] यहाँ से छः सात पन्ने में करीम चाचा के अतीत जीवन की विस्तृत कहानी है । यह सब सुनने के बाद नायक कहता है "मुझे इतनी देर तक ऐसा लग रहा था जैसे मैं एक बीते हुए विचित्र युग की पौराणिक गाथा सुन रहा होऊं, जिस की यथार्थता का तनिक भी अनुभव या अनुमान मुझे नहीं हो सकता था ।"[4] इसी तरह "ऋतुचक्र" में दादा प्रतिमा के विवाह करने का निश्चय करता है । उस अवसर पर अचानक उनके मन में अपने बीते हुए जीवन की सारी बातें

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.102
2. वही - पृ.173
3. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.96
4. वही - पृ.102

सभी अनुभव, सभी घटनाएँ, सभी धन-प्रतिष्ठानों की स्मृतियाँ एक एक कर के उभरती चली जा रही थी । "मुक्तिपथ" में सुनंदा का मुक्त आसंग भी कई पन्नों तक फैल गयी है । सम्मोहन-क्रिया से पात्र की अचेतन-गाँठ कुछ समय के लिए ही खुल सकती है । लेकिन मुक्त आसंग में मन की गाँठ हमेशा के लिए खुलती हैं । इसलिए चरित्रोद्घाटन के लिए या चरित्र विश्लेषण के लिए यह प्रयोग प्रशंसनीय है । लेकिन अज्ञेय को मनोविज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष पर रुचि न होने के कारण उन के उपन्यासों में ऐसा प्रयोग नहीं के बराबर है ।

शब्द सहस्मृति परीक्षण (वर्ड एसोसिएशन टेस्ट)

जोशी और अज्ञेय ने चरित्र चित्रण के लिए इस मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली का सहारा लिया है । शब्द सहस्मृति परीक्षण में कोई विशेष शब्द सुनने पर पात्र के मन में प्रतिक्रिया होती है । इस प्रतिक्रिया के विश्लेषण से उस का चरित्राध्ययन संभव हो पाता है ।

"प्रेत और छाया" उपन्यास की मंजरी पारसनाथ से विवाह की बात करती है.। लेकिन "विवाह" शब्द सुनते ही पारसनाथ का मुँह अत्यंत गंभीर हो आया, यहाँ तक कि उस पर एक हल्की सी कालिमा पुत गई । पता नहीं क्यों, यह शब्द वर्षों से उस के अन्तर्मन केलिए एक हौवा बना हुआ था ।" पारसनाथ ने अपने माता-पिता के वैवाहिक जीवन का जैसा रूप देखा था उस ने उस के अचेतन में एक ऐसी गाँठ डाल दी थी कि वह "विवाह" शब्द से भी घृणा करने लग गया था । "जिप्सी" के नायक रंजन के लिए "नीरू" शब्द जादू का

---

1. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.174

असर रखता था । बड़ी कठिनाई के बाद इस का कारण उस के आगे स्पष्ट हुआ था "उस के नाम का पहला अक्षर "नृ" है और छुटपन में उसकी माँ उसे "नीरू" कहकर पुकारा करती थी । नीरू की पुकार से उस के शंकित मन को ऐसा लगा, जैसे उस की माँ की आत्मा उस महिला के स्वर में उसे सावधान कर रही हो ।"[1] यहाँ तात्पर्य यह है कि शोभना भाभी की ओर रंजन के मन में खिंचाव है । लेकिन शोभना भाभी "नीरू" कह कर पुकारती तो वह माँ की याद में चौंक जाता है । "जहाज का पंछी" में "गंगा-यमुनामें आँसू जल" पंक्ति सुनते ही लीला की आंखों से आंसू उमड आये थे । इस के बारे में वह स्वयं कहती है "जब कभी मैं पंतजी का यह गीत, खासकर "गंगा-यमुना में आंसू-जल" यह पंक्ति सुनती हूं तब न जाने क्यों, मेरे भीतर से भावों का उच्छ्वास पूरे ज़ोरों से उमडने लगता है और मेरी आंखों से उसी समय आंसू निकल जाते हैं ।"[2]

"नदी के द्वीप" में एक स्थान पर रेखा के चरित्रोद्घाटन के लिए इस प्रणाली का उपयोग किया है । दिल्ली में जंतर मंतर की सैर के अवसर पर वापस चलने के लिए कहनेवाली रेखा को जब भुवन तनिक रुकने और सान्ध्य तारा देख कर चलने की कामना करता है तो रेखा "तारा" शब्द सुनकर सहसा बेहद तीखे कांपते स्वर में "चलिए चलिए" कहने लगती है । तब भुवन ने चौंककर देखा "उस का स्वर ही नहीं, वह स्वयं भी कांप रही" थी । आगे भुवन के आग्रह पर रेखा वह पुरानी बात सुनाती है । पहले उस का पति हेमेन्द्र वहां अपने "एक युवा बंधु को लेकर आया था" और "तारे को देखकर दोनों ने वफ़ा की कसमें खायी थीं । इस प्रकार चरित्र चित्रण के क्षेत्र में "शब्द सहस्मृति परीक्षण" एक नया कदम बन गया ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.42।
2. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.378

सम्मोह विश्लेषण (हिप्नो-ऐनेलिसिस)

जोशी ने अपने एकाध उपन्यासों में प्रेमी अथवा प्रेमिका को या एक-दूसरे को आकृष्ट कराने केलिए इस क्रिया का आश्रय लिया है । जोशीजी के उपन्यासों में इस प्रक्रिया का प्रयोग पात्रों के अचेतन में दबी पडी अनुभूतियों को प्रकाश में लाने के लिए इतना नहीं हुआ, जितना कि एक पात्र का दूसरे पात्र को सम्मोहित कर के उन्हें अपनी इच्छानुकूल चलाकर स्वार्थसाधन के लिए ।"[1]

"जिप्सी" का नायक नृपेन्द्र जिप्सी मनिया को अपनी ओर आकृष्ट कराने केलिए उस पर सम्मोहन-क्रिया का प्रयोग करता है । उसे सम्मोह-निद्रा की अवस्था में लाकर आत्मविश्वासपूर्ण दृढ आदेशों और संसूचनाओं द्वारा उस के विद्रोही भावों को जीत लेता है । जब मनिया सम्मोहन-निद्रा में आ जाती है तब वह एक कुशल सम्मोहक की तरह उस से कहता है "तुम्हारा छुटकारा तभी मिलेगा जब मैं चाहूँगा । मैं चाहे काल होऊँ या कुछ और पर हर हालत में तुम्हारा प्यार चाहता हूँ - मुझे प्यार करो । उसी में डूब जाओ और उसी में अपनी सारी ज़िन्दगी खपा दो । बोलो, करोगी मुझे प्यार ?"

"हाँ ।"

"फिर बोलो प्यार करोगी और खुश रहोगी ?"

"हाँ, प्यार करूँगी और खुश रहूँगी ।"

"अब तो मैं काल की तरह नहीं लगता ?"

"नहीं ।"

"तब नींद से उठ बैठो ।"[2]

---

1. डा॰ रणवीररांग्रा - मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की बृहत्रयी पृ॰104

2. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ॰52

मनिया पर सम्मोहन का यह पहला प्रयोग था और उस पर इस का प्रभाव भी यथेष्ट पड़ा । लेकिन सम्मोहन क्रिया में किसी पात्र पर सम्मोहक का प्रभाव उसी मात्रा में पड़ता है, जिस मात्रा में पात्र के हित सम्मोहक के आश्रय में सुरक्षित है । किसी पात्र की हानी सोचकर उस पर स्थायी प्रभाव डालने का प्रयास व्यर्थ है । अपनी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालता हुआ नृपेन्द्र स्वयं इस बात को स्वीकार करता है "तब मेरी सफलता का कारण यह था कि तब मैं मणिया की सच्ची मंगलकामना से प्रेरित होकर सच्चा आत्मिक बल पाकर उस के मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था, पर आज मैं उस की वास्तविक कल्याण कामना से प्रेरित न होकर, अपनी स्वार्थ - हानि की आशंका से ईर्ष्यादग्ध होकर, कृत्रिम मानसिक बल के प्रयोग से "हिप्नाटाइज़" करने चला था ।"[1]

सम्मोहन प्रक्रिया के बारे में जोशी "जिप्सी" में अपना विचार प्रकट करता है "हिप्नाटिज़्म" की जो कला वास्तविक रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध होती है वह किसी के सिखाये से आयताधीन नहीं होती, कुछ विशिष्ट बाह्य नियमों के यथारूप पालन से वह सच्चे रूप में फलित नहीं होती । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ विशेष असाधारण क्षण ऐसे आते हैं जब अन्तश्चेतना का कोई विशेष सुप्त भाग सहसा स्वत: जाग्रत हो उठता है । और इस उदात्त अवस्था में वह इच्छित व्यक्ति पर जैसा भी प्रभाव डालना चाहता है, उस में निश्चित रूप से सफल होता है । तब जो भी आदेश उस के भीतर से निकलता है उसे अमान्य करने की शक्ति किसी विरले योगनिष्ठ व्यक्ति में ही होती है ।"[2] जोशी के इस उद्धरण के संदर्भ में जब हम उन के इसी

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.283
2. वही - पृ.49-50

उपन्यास के नायक नृपेन्द्र से यह बात करते हैं तो आश्चर्य होता है "तब क्या सिलविया भी हिप्नाटिज़्म की कला में प्रवीण है ? निश्चय ही यही बात है । केवल इतना ही नहीं, उस का अभ्यास इस कला में इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि उस ने मणिया के अन्तर्मन में बहुत गहरी खुदाई कर के अपना अभीष्ट बीज बोया है ।"[1]

"प्रेत और छाया" में भी सम्मोलन क्रिया का उल्लेख मिलता है । पारसनाथ जब बिना कुछ खाये-पिये ही नंदिनी के यहाँ से जाने लगा तो "वाह, यह कैसे हो सकता है, बिना खोये आप नहीं जा सकते"[2] यह कहकर नन्दिनी यों उठी जैसे बलपूर्वक उस का रास्ता रोकने के लिए खडी हुई हो और आँख के एक अनोखे घूर्णन से पारसनाथ की ओर देखने लगी । पारसनाथ को जैसे बिजली की एक झलक में मंजरी की याद आयी । पर उस ने बरबस मन की आँखें मूँद लीं और एक उत्सुक, मोहक और पागल दृष्टि से नंदिनी की ओर देखा । उस एक झलक में उस ने नंदिनी के मुख पर किस रूप का आभास पाया । जादूगरनी । कुछ भी हो, वह नंदिनी की उस रहस्यमयी दृष्टि के मोहक आकर्षण का प्रतिरोध न कर सका, और "हिप्नाटाइज़" किये गये व्यक्ति की तरह चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया । नंदिनी शासन की छडी की तरह अपनी तर्जनी को पारसनाथ की ओर हिलाती हुई और अपनी रहस्यमयी दृष्टि में रहस्यमय मुस्कान झलकाती हुई, शासन के नकली स्वर में बोली "देखिए, मेरे आने तक उठिएगा नहीं ? "यह कह कर वह नीचे चली गयी ।"

बाधकता विश्लेषण (ऐनालिसिस आफ़ रेसिस्टन्स)

"मुक्त आसंग प्रणाली" में पात्र के अचेतन का स्वत: प्रवाह होता है तो "बाधकता विश्लेषण" में पात्रों के अन्तर्भावों के प्रवाह में

1. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ.145
2. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.238-239

कभी कभी प्रतिबन्ध होता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार पात्रों के चरित्र चित्रण केलिए "बाधकता विश्लेषण" का प्रयोग भी करते हैं ।

"कल्याणी" की कल्याणी का भी वकील साहब पर एकदम विश्वास नहीं जम पाया था । उस की आंतरिक व्यथा तो उमड पड़ने को उद्यत रहती थी, पर मानों विश्वास का पात्र न पा रही हो । वकील साहब से यह तो वह कह देती है "मन का बोझ कब तक सहा जा सकता है"? और मैं किसी से उस मन को खोल नहीं सकती - मैं डाक्टर से भी तो कुछ कह नहीं सकती ..... । कहते कहते एकाएक रुक गई । जैसे अनकहनी कहने के किनारे जा लगी हो । अनंतर एक भरी सांस खींचकर बोली "सब भाग्य है और क्या ।" पर जब वकील साहब ने पुन: प्रश्न द्वारा बात आगे बढ़ानी चाही तो एक बार फिर वह मुक्त आलाप की स्थिति में पहुँच गई "मैं तो अपने से ही नाराज़ हूँ । सोचती हूँ, मैं ने अपना यह क्या कर डाला । कह कर वह ऐसे देखने लगी जैसे कहीं न देख रही हो । उन आंखों में जैसे दृष्टि न हो । यह समझते हुए कि अब तो उस का मुक्त आलाप आरंभ होनेवाला है, वकील साहब ने ज्यों ही उसे पूछा "क्यों- क्यों बात क्या है? एकदम बाधकता आन उपस्थित हुई और हठात् संभलती हुई वह बोली "कुछ नहीं, कुछ नहीं" और फिर अतिव्यस्त भाव से घडी की ओर देखकर कहा "ओह आठ हो गया । मैं भूली । मुझे एक जगह जाना है । अच्छा तो आप ....." कहती हुई वह उठ खडी हुई और वहाँ से चल दी ।"[2] इस प्रकार कल्याणी अपनी आंतरिक बात को प्रकट करने से अपने को बचा पायी । कई बार इस तरह बचने की कोशिश करती हुई कल्याणी को वकील साहब का धैर्य ही मुक्तआलाप की स्थिति की ओर ले आता है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.17
2. वही - पृ.18

"निदर्शित" का धीराज मुक्तआलिंग स्थिति में आकर महीप के सामने अपना हृदय खोलने के पहले उसके मन में संकोच और बाधकता अनुभव करता है । महीप ने देखा कि "यद्यपि धीराज अपने मन की बहुत गाँठें उस के आगे खोलने के लिए आरंभ से ही उत्सुक रहा, तथापि वह अभी तक अन्तर की बहुत सी बाधाओं को पार नहीं कर पा रहा है ।"[1] इस तरह अपनी स्मृतियाँ सुनाते सुनाते पात्र का स्वर बदलकर कहीं और भटक जाने का कारण यह है कि उस के अचेतन मन में कुछ घटनाएँ दबाकर रखी हुई है । वे घटनाएं उतना असामाजिक या अनैतिक है कि लज्जा या भय उसे कह देने में रोक लेता है । पात्र की इस स्थिति को फ्रायड ने बाधकता कहा । लेकिन महीप एक मनोविश्लेषक की तरह धीराज का संकोच हटाकर उस का मन खोल देता है ।

केस हिस्टरी मैथड (पूर्व-वृत्तात्मक प्रणाली)

व्यक्ति के अचेतन में छिपे हुए विचारों को बाहर लाने के लिए यह बहुत ही उपयोगी प्रणाली है । इस में मनोवैज्ञानिक पात्र की वर्तमान अवस्था को समझने के लिए उस के पूर्ववृत्त और उस की विगत अनुभूतियों को एकत्रित करता है । इस के अतिरिक्त इस में वह पात्र पर किए गए अपने विभिन्न प्रयोगों का वर्णन, उस के मनोविश्लेषण द्वारा निकले निष्कर्ष तथा विभिन्न प्रकार के आंकडों को भी सम्मिलित करता है ।

"जहाज का पंछी" में पहले तो ऐसे पूर्ववृत्त आते हैं । जो पात्रों की अपनी ज़बानी है । करीमचाचा की "आप बीती कहानी" लगभग तेरह पृष्ठ तक चलती रहती है । इस के बाद हरीपद अपने पूर्ववृत्त प्रस्तुत करता है । आगे पूर्ववृत्तों की बाढ आ जाती है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निदर्शित - पृ.96

मिस फ्लोटो के किस्से के बाद उस के चकले में देश्या का काम करनेवाली लड़कियों अमला, सुजाता, जुलेखा, सुखिया आदि का वृत्त मिलता है । इन वृत्तों से यह तो पता चलता है कि किन-किन विवशताओं के कारण इन लड़कियों ने देश्यावृत्ति स्वीकार की है । इस उपन्यास में दूसरों की ज़बानी से भी पूर्ववृत्त मिलते हैं । उपन्यास के अंतिम चरण में मानसिक अस्पताल के विभिन्न रोगियों की कहानियाँ उन के संबंधियों से सुनी-सुनाई बातों पर आधारित हैं । इसलिए इन पूर्ववृत्तियों की विश्वसनीयता और भी संदिग्ध हो उठती है । लेकिन इन पूर्ववृत्तों से पता चलता है कि स्त्री-पात्रों के पागलपन का मूल कारण उन की अतृप्त कामवासना है और पुरुष पात्र की समस्या आर्थिक कठिनाइयाँ । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इस प्रणाली का प्रयोग बहुत कम ही हुआ है ।

आखिर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र एवं चरित्र-चित्रण प्रणाली के विस्तृत विश्लेषण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि इन उपन्यासों ने अपनी अभिव्यक्ति शैली के निरालेपन के ज़रिए व्यक्ति मन की गहराईयों को तलाशने का महत्कार्य किया है । इस के परिणाम स्वरूप प्रेमचंदयुगीन समस्यामूलक स्थूल अभिव्यक्ति प्रणाली के स्थान पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म चरित्र विश्लेषण प्रणाली के ज़रिए व्यक्ति के अंतरंग सत्य को उस की पूरी गहराई एवं समग्रता के साथ अभिव्यक्त करने में ये उपन्यासकार सफल निकले हैं । यह नि:सन्देह औपन्यासिक शिल्पदृष्टि का विकास मात्र नहीं बल्कि अभिव्यक्ति क्षमता के सतत विकास का सूचक भी है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

चौथा अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यास की भाषा

चौथा अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यास की भाषा

उपन्यास के प्रारंभिक युग में उसके भाषापरक अध्ययन का विशेष महत्त्व नहीं था। लेकिन आधुनिक संदर्भ में यह स्वीकार किया जा चुका है "उपन्यास की भाषा का उस की आंतरिक संरचना तथा बाह्य स्थितियों दोनों से जटिल और गहरा संबंध होता है।"[1] उपन्यासकार शब्दयोजना, वाक्य संरचना, वाक्य विन्यास और ध्वनि-पैटर्न के प्रयोग द्वारा अपनी बात पाठकों के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। प्रारंभकालीन उपन्यासों में व्याकरण-सम्मत, सुसंबद्ध वाक्य प्रयोग होते थे तो आजकल के उपन्यासों में अपूर्ण वाक्यों विराम-चिह्नों एवं संयोजकों के प्रयोग से तथा परंपरागत वाक्य संरचना पद्धति के सुधार से भाषा में नयी अभिव्यक्ति क्षमता लाने का प्रयत्न होता रहता है। इसलिए सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक जैसे किसी भी प्रकार के उपन्यास में विषय के अनुरूप भाषा परक परिवर्तन भी नज़र आता है।

---

1. डॉ॰ शांतिस्वरूप गुप्त - उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प - पृ॰ 169

उपन्यास और भाषा

पहले पाठक कथा-आस्वादन के लिए ही उपन्यास पढ़ते थे । इसलिए भाषा पर विशेष ध्यान नहीं देता था । पर बाद में यह स्वीकार किया गया है कि उपन्यास की भाषा का उस की आंतरिक संरचना तथा बाह्य स्थितियों से गहरा संबंध होता है । इसलिए आज उपन्यास की भाषा भी एक साध्य है ।

पूर्व प्रेमचंदयुग खडीबोली गद्य का प्रारंभिक काल होने के कारण भाषा का कोई परिमार्जित रूप नहीं था । उपन्यासकार बोलचाल की भाषा पर टिके हुए थे । उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का विकृत रूप इस समय प्रचलित रहा । पर पाठकों की रुचि बढ़ाने केलिए उपन्यासकारों ने सरल एवं सुबोध हिन्दी का प्रयोग किया । "परीक्षागुरू" की भूमिका में साधारण बोलचाल की भाषा को अपनाने के बारे में लाला श्रीनिवासदास ने सूचित किया है, "इस पुस्तक में दिल्ली के एक कल्पित रईस का चित्र उतारा गया है और उस को जैसा का तैसा दिखाने केलिए संस्कृत अथवा फारसी, अरबी के कठिन शब्दों की बनाई भाषा के बदले दिल्ली के रहनेवालों की साधारण बोलचाल पर ज़्यादा दृष्टि रखी गई है ।"[1] श्रद्धाराम फिल्लौरी के "भाग्यवती" में जनसाधारण की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है । लेकिन "सौ अजान एक सुजान" जैसे उपन्यास में संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है । पूर्व प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की भाषा के बारे में डा॰ श्रीमती ओमशुक्ल का कथन है "इस काल के उपन्यासकारों ने प्रचलित तथा

---

1. लालाश्रीनिवासदास - परीक्षागुरू - पृ॰4

हिन्दी-उर्दू मिश्रित खिचडी भाषा का प्रयोग किया है । इसी कारण इन रचनाओं में भाषा का अनगढ एवं अपरिष्कृत रूप मिलता है ।"[1]

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों की भाषा वर्ग या स्थान विशेष पर आधारित न होकर समग्र समाज की थी । भाषा की सरलता और प्रभावोत्पादकता उस युग के उपन्यासों की विशेषता है । प्रेमचंद की भाषा वर्णनप्रधान है । इस के बारे में डा॰ रामरत्न भट्टनागर कहते हैं, "प्रेमचंद के वर्णन भाषा के जगमगाते हुए हीरे हैं । ये हीरे उन के उपन्यासों में बिखरे हुए मिलेंगे ।"[2] "प्रतिज्ञा" की पूर्णा की मन:स्थिति का वर्णन, "रंगभूमि" के सूरदास की निर्धनता के चित्रण केलिए उस की झोंपडी का वर्णन, "प्रेमाश्रम" का प्रकृतिवर्णन आदि उन के भाषा-प्रयोग के सुंदर उदाहरण है । प्रेमचंद की भाषा में उपमाएँ और सूक्तियाँ बहुत मिलती हैं । "कर्मभूमि" के सुखदा तथा अमर के परस्पर विरोधी स्वभाव का वर्णन करने केलिए उन्होंने उपमा दी है "दोनों आपस में हंसते बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा करते थे, लेकिन जीवन के गूढ व्यापारों में पृथक थे । दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था, जो एक क्षण के लिए मिलकर पृथक हो जाता है ।"[3] गबन और गोदान में भी असंख्य सूक्तियां भरी पड़ी हैं । प्रेमचंद की भाषा में भावुकता ही विद्यमान है । "प्रेमाश्रम" में उन की भाषा बहुत मार्मिक बन गयी है "समाज के विकृत रूप पर कटाक्ष करते समय जहाँ एक ओर प्रेमचंद की भाषा आलोचना और व्यंग्य की भरमार के कारण तीखी और कठोर हो गयी हैं, वहाँ दूसरी ओर

---

1. डा॰ (श्रीमती) ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि - पृ॰73
2. रामरत्न भट्टनागर - कलाकार प्रेमचंद - पृ॰358
3. प्रेमचंद - कर्मभूमि - पृ॰14

समाज की हीन दशा का चित्रण करते हुए उनकी भाषा में भावुकता का संचार हो जाता है ।"[1] प्रेमचंद के उपन्यासों की समस्याएँ पुरानी होने पर भी भाषा की रोचकता और ताज़गी के कारण वे पाठकों के हृदय की गहराइयों तक पहुँचती हैं । इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रसाद की भाषा काव्यमय और दार्शनिक है । उन्होंने प्रेमचंद के समान सरल व बोलचाल की भाषा अपनाने के बजाय उसे संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से लदा दिया । इस के कारण भाषा की प्रौढता अदश्य बढी है । वर्णनप्रधान होने के कारण वृन्दावनलाल वर्मा की भाषा चित्रात्मक हो गयी है । बुंदेलखंड के इतिहास को आधार बनाने के कारण उन की भाषा में बुंदेलखंडी शब्दों का प्रभाव भी है । संक्षेप में कहें तो प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों की भाषा सरल, सुबोध और वर्णन प्रधान थी पर वह साध्य नहीं थी ।

प्रेमचंदोत्तर युग में भाषा रंगबिरंगी रूपों में चमकने लगी । इस समय के आँचलिक उपन्यासकारों ने आँचलिक पद प्रयोगों से नयी भाषा को जन्म दिया । यशपाल जैसे सामाजिक उपन्यासकारों ने व्यंग्य-भाषा के प्रयोग करने के साथ साथ मार्क्सवादी शब्दयोजना और नारेबाजी का भी भरपूर उपयोग किया है । इस समय के सामाजिक उपन्यासकारों की भाषा प्रेमचंद की भाषा के अधिक निकट है । प्रेमचंदोत्तर युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने विषय के समान भाषा के संदर्भ में भी एक नये क्षितिज को खोल दिया ।

साधारणत: उपन्यास में भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं - प्रथम वह भाषा जिस में उपन्यासकार कथा कहता तथा घटनाओं एवं पात्रों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है । द्वितीय वह भाषा जिस का प्रयोग उपन्यास के पात्र वार्तालाप में करते हैं । इसे वार्तालाप की भाषा भी कहते हैं । इस का आधार पात्र का विशिष्ट व्यक्तित्व

---

1. डा॰ (श्रीमती) ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰122

होता है । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यास की भाषा इस से बिलकुल भिन्न है । वह पात्र की अन्तचेतना में प्रवेश करके नये नये शब्दों की उद्भावना करती है । वे भाषा के प्राचीन ढाँचे को सुधारते हैं । "मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार वैयक्तिकता पर अधिक ज़ोर देते हैं । इसलिए सामान्यीकृत लोकग्राह्य शब्दों को तोड मरोड अपने ढंग से जीवित शब्दों का निर्माण करते हैं ।"[1] ये मानसिक जटिलताओं का बोध कराने केलिए, चेतना-अचेतना का द्वन्द्व दिखाने के लिए, नियति के सामने मनुष्य की पराजय अनिवार्य अकेलापन और प्रेमहीनता का तीखा अहसास दिखाने के लिए गहरी संवेदनशील भाषा का प्रयोग करते हैं ।

आधुनिक उपन्यासों में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है । आज भाषा कथ्य-प्रतिपादन तथा पात्रों के चरित्र निरूपण के साथ साथ यंत्रयुग के मनुष्य की मानसिक उलझनों एवं कुंठाओं की अभिव्यक्ति को सार्थक कर रही हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव के बाह्य स्वरूप की अपेक्षा उस की आंतरिक भावनाओं, विचारों उलझनों एवं कुंठाओं का वर्णन है । इस में रूढ़ भाषा-प्रयोग के बदले नवीन युग की नयी अनुभूति के अनुरूप भाषा में नूतन प्रयोग किया गया है । मतलब कि उन्होंने भाषा को एक जीवन्त माध्यम बनाया । इस दृष्टि से जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्रजोशी और अज्ञेय के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा की परख आगे किया जाएगा ।

काव्यात्मक भाषा

जैनेन्द्र की भाषा भावात्मक, प्रौढ एवं परिष्कृत है । उन की राय है कि भाषा में भाव की अभिव्यक्ति होनी चाहिए । इसलिए

---

1. डा॰ धनराजमान धाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - पृ॰393

उन की भाषा काव्यात्मक है । भाषा में भावाभिव्यक्ति पर ज़ोर देते हुए उन्होंने कहा "कहानी उपन्यास में भाषा सिर्फ अर्थ दे कर सार्थक नहीं हो सकती । भाव को भी उसे युगपत चित्रित और आगृत करते जाना होगा ।"[1] जैनेन्द्र की भाषा भावानुगामिनी एवं काव्यमयी है । "सुनीता" की सुनीता के आन्तरिक घुमड़न को यों व्यक्त किया गया है "जैसे बत्ती सोने से पहले एक साथ विस्फारित हो अतिशय उद्दीप्त से जल उठे मानों वैसे ही सुनीता की अंगुलियों की कठोर ठोकर से दो एक अतीव सशक्त स्वर काँपते हुए तार में से निकले । गूंज से अधिक उन में चीख थी । फैले नहीं वे शून्य में भरे आकाश को चीरते हुए चढ़ते गये, चढ़ते गये । कुम रहा तब तक चढ़ते गये, कि अन्त में कुम हार वे स्वर शीर्ष से गिर कर पाताल में आ एकदम मूर्च्छित हो गये ।"[2]

प्रतीक योजना के कारण भी जैनेन्द्र की भाषा में काव्यात्मकता का पुट आ गया है । "व्यतीत" में जयंत अपना मनोभाव व्यक्त करते हुए कहता है "हूँ तो कवि पर आदमी भी हूँ । भाव-विभोर होकर बाहर की सब ठोस सत्ता की धूमिल कुहासे में परिणित कर के, उस में से सब चुनौती को छीनकर खींच रहना सब काल संभव नहीं होता है । कभी उठने और करने और जूझने को भी जी होता है । करना सब अकविता है । लेकिन क्या किया जाय ? वह भी आदमी में है । चन्द्रकला को देखकर नितांत इस मुझ सोए हुए को भी मानों चोट देती हुई चुनौती मिली ।"[3] "कल्याणी" की कल्याणी जब अपना मनोभाव व्यक्त करती है तब भाषा काव्यमय हो उठती है । क्योंकि जैनेन्द्र पात्रों के मन की गहराइयों में गोता लगाकर चरित्र विशेष के आन्तरिक

---

1. जैनेन्द्रकुमार - साहित्य का श्रेय और प्रेय - पृ.156
2. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.92
3. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.55

सत्य का उद्घाटन करते हैं । इसलिए भाषा भावुक और काव्यमय होती है । "तपोभूमि" में नवीन अपनी कहानी की शुरूआत इस प्रकार करता है "पुराने दिनों की बातें शरद् की मेघ की तरह स्मृति में जहाँ-जहाँ उड रही थीं । उड कर ज़रा देर में विलीन हो जातीं ।"[1] "मुक्तिबोध" में सहाय और नीलिमा होटल में एकसाथ बैठते समय, सहाय की भावुक मानसिक स्थिति उस की काव्यात्मक भाषा में स्पष्ट हो उठती है "देह में भरती आती हुई नीला पहले से अच्छी लग रही है । ज़रा बाह को दबाकर देखूँ, पूछूँ कि नीलिमा, तुम पर से उम्र क्या कपूर की तरह आकर उड जाती है ? सिर्फ सौंध छोड जाती है । सच, जिस्म तुम्हारा गदराया जा रहा है । ..... ।"[2] डा॰ "श्रीमती॰ ओमशुक्ल के शब्दों में "जैनेन्द्रकुमार भाषा के माध्यम से हृद्गत मनोभावों का प्रकटीकरण करना चाहते हैं, इसलिए उन के उपन्यासों की भाषा मनोभावों की अनुगामिनी बन गई है ।"[3]

इलाचन्द्रजोशी के उपन्यासों में भी काव्यात्मक भाषा के प्रयोग अधिक मिलते हैं । कथा का विकास विश्लेषणात्मक शैली में करने के कारण जोशीजी की भाषा में काव्यात्मकता जैनेन्द्र से अधिक है । उनकी भाषा में विषयानुरूप परिवर्तनशीलता भी जैनेन्द्र से अधिक है । अहंवाद, स्वार्थपरता, प्रतिहिंसा जैसी सूक्ष्म मनोवृत्तियों का उद्घाटन करने के लिए जोशीजी ने विश्लेषणात्मक और काव्यात्मक भाषा का सहारा लिया है । मिसाल के तौर पर लज्जा की नायिका लज्जा भावावेश में आकर काव्यमयी भाषा बोलने लगती है "हा-हा, हतभागिनी नारी । पुरुष के बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं है ।

---

1. ऋषभचरण - तपोभूमि - पृ॰9
2. जैनेन्द्रकुमार - मुक्तिबोध - पृ॰57
3. डा॰ श्रीमती ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰249

पुरुष को लेकर ही इस अनंतव्यापी, "ईथर प्रकंपित" सृष्टि में तुम्हारी सत्ता है अन्यथा तुम शून्य की तरह निस्तरंग, जड और निर्विकार हो । .... ।"[1] "जहाज का पंछी" का नायक अपने विगत जीवन की स्मृतियों का उल्लेख यों करता है "बचपन से ही मैं संगीत और सौन्दर्य के अपार रहस्यमय और विविध वैचित्र्यपूर्ण माया-लोक की रूप - रस - रंग - भरी, स्वप्नाच्छन्न कुंज गलियों में आंतरिक उल्लास से इस तरह भटकता रहा हूँ कि उन से अलग होने की भावना ही मेरे मन में कभी जग नहीं पाती थी ।"[2] "सन्यासी" में पहली बार जयंती की रूप-छटा देखकर नन्दकिशोर की दमित वासनाएं जाग उठती हैं और ऐसी अवस्था में जमुना नदी की तरंगें देखकर वह भाव-विभोर हो उठता है और सोचता है "जमुना की क्षीर मंथर गति, उस का अनुपम रूप-रंग, चंचल रोदन-क्रंदन, तरल-अविरल हास कृष्ण के युग में भी वैसा ही था, जब गोपियां शंकित वक्ष से, कंपित पगों से, हृदय से मूर्च्छा मधुर वेदना लेकर उस में जल भरने आती होंगी ।"[3] "भूत का भविष्य" का राकेश अपनी बेकारी के कारण बहुत निराश है । राकेश की हृदय-वेदना जोशीजी ने काव्यमय शब्दों में चित्रित किया है "बाहर की लू की लपटें अब उस के अंदर एक नये ही रंग में धधक रही थी ।"[4] "ऋतुचक्र" में प्रकृति वर्णन करते करते उपन्यासकार कवि बन जाता है, "बादलों की झीनी परतों से घिरे चाँद की चाँदनी पीली से धुमैली होने लगी थी ।"[5] "मुक्तिपथ", "सुबह के भूले" आदि उपन्यासों में भी सूक्ष्म भावों का चित्रण भाषा को काव्यमयरूप प्रदान करता है। जोशीजी की काव्यात्मक और विश्लेषणात्मक भाषा पात्रों के अन्तर्मन के सूक्ष्म भावों को चित्रित

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ.19-20
2. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.388
3. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.18
4. इलाचन्द्रजोशी - भूत का भविष्य - पृ. 40
5. इलाचन्द्रजोशी - ऋतुचक्र - पृ.12

करने में सफल हुई है । जोशीजी की भाषा के बारे में डा॰ (श्रीमती) ओमशुक्ला का मत है "पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण उन की प्रवृत्तियों की व्याख्या अथवा उन की आंतरिकता के चित्रण के प्रयास में इलाचन्द्र जोशी की भाषा भी उन्हीं रंगोंमें रंग गयी है ।"[1]

अज्ञेय मूलत: कवि होने के कारण उन के उपन्यासों की भाषा में भी इस का प्रभाव ज़रूर पड़ा है । उन के उपन्यासों में क्रियापदों का प्रयोग कम होने के कारण उन की पंक्तियां अधिक काव्यमय लगती है । उदाहरण के लिए "शेखर : एक जीवनी" का शेखर कहता है "प्रणाम यमुना, प्रणाम पूर्वदिशा, प्रणाम वैशाख के फूले हुए पलाश और बबूल, प्रणाम झाऊ के उदास मर्मर और धूल के बगूले, प्रणाम, दो पैरों से लाख बार रौंदे हुए रेतीले नदी-तट, प्रणाम, बही हुई मुट्ठी भर राख ।"[2]

अज्ञेय की भाषा अत्यधिक प्रौढ एवं समर्थ है । पात्र के मनोभावों को काव्यमयी भाषा में अभिव्यक्त करने में अज्ञेय समर्थ है । "शेखर : एक जीवनी" में फांसी की सजा मिले शेखर के मन के भाव-प्रवाह का चित्रण इस प्रकार किया गया है "फांसी ! यौवन के ज्वार में समुद्रशोषण । सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुंतल । शारदीय नभ की छटा पर, एक भीमकाय काला बरसाती बादल । इस विरोध में, इस अवानक खंडन में निहित अपूर्व भैरव कविता ही में इस की सिद्धि है ..... सिद्धि कैसी - काहे की ?"[3] "नदी के द्वीप" की रेखा अपनी मनोभावनाओं के तरंग में बहती हुई

---

1. डा॰ओम शुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास पृ॰283
2. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ॰249
3. वही - पृ॰15

कहती है "मैं एक खडा हुआ पानी थी, एक झील एक पोखर, एक छोटा ताल, शैवालों से ढका हुआ । तुम ने आँधी की तरह आकर मुझ को आलोडित कर दिया, मुझ में अनंत आकाश को प्रतिबिंबित कर दिया ।"[1] इस तरह रेखा और भुवन के मिलन का संकेतात्मक वाक्यों का चित्रण गद्यमय पद्य का सुंदर उदाहरण है "साँझ, रात, दूर टुनटनाती गोधूली की घंटियाँ, शुक्रतारा, तारे, चाँद, लहरियों पर चाँदनी की बिछलन, छोटे छोटे अभ्र खंड, ठंडी हवा, सिहरन, ऊँचाई, ऊँचाई के ऊपर आकाश में चुभता-सा पहाड का सींग, आकाश, सब का अर्थ है, सब कुछ का अर्थ है, अभिप्राय है, ठिठुरे हाथ, अवश गरमाई, रोमांच, सिकुडते कुचाग्र, कनपटियों का स्पंदन, उलझी हुई देहों का धाम, कानों में चुन-चुनाते रक्त प्रवाह का संगीत - इन सब का भी अर्थ है, प्रेष्य संदेश है ।"[2] प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन के समय अज्ञेय की भाषा और अधिक लालित्यपूर्ण एवं काव्यमयी बन जाती है । अज्ञेय की भाषा के बारे में डा॰ शांतिस्वरूप गुप्त का कथन है "जगह जगह उन की भाषा स्वतंत्र सत्ता के रूप में संवेदनशील पाठक के लिए आस्वाद्य हो उठी है । विषय और प्रसंग के अनुरूप भाषा को बदलना भी वह अच्छी तरह जानते हैं ।"[3]
अज्ञेय की भाषा अंतरंगी और काव्यगुणों से पूर्ण है । उनके उपन्यासों में भाषा के स्वाभाविक, परिष्कृत, अभिजात सादगी तथा सुन्दर सधे हुए वाक्यों का संतुलित प्रवाह देख सकते हैं ।

प्रतीकात्मक भाषा

मानव मन के आंतरिक भावों एवं विचारों के चित्रण के सिलसिले में भाषा अधिक जटिल तथा प्रतीकात्मक बन जाती है ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ॰154
2. वही - पृ॰148
3. डा॰शांतिस्वरूप गुप्त - उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प - पृ॰172

इसलिए जैनेन्द्र के वाक्य बहुत ध्वनित करते हैं । उन की भाषा थोडे-से-थोडे शब्दों में बहुत-कुछ कह डालने की अपूर्व क्षमता रखती है । जैनेन्द्र के अनंतर की अपरा चारू के पति आदित्य के साथ अपने संबंध के बारे में चारू से ही कह कर माफ़ी माँगती है । लेकिन चारू की माँ रामेश्वरी अपरा को माफ़ी देने केलिए तैयार नहीं है । अपरा के बारे में रामेश्वरी पति प्रसाद से कहती है "नागिन का तुम्हीं भरोसा करने वैसे - प्रसाद उत्तर देता है "अरे भाई, विष का दांत निकल जाए तो फिर तो नागिन से बच्चे भी नहीं डरते ।"[1] यहाँ प्रतीकात्मक भाषा द्वारा भाव अधिक प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किया है । "सुखदा" की सुखदा रोगिणी बन कर अस्पताल में रहते समय यों सोचती है "जान गई हूँ कि मैं धीरे धीरे किनारे लग रही हूँ । किनारे के आगे क्या है, पार क्या है ?"[2] यहाँ जैनेन्द्र ने आसन्न मृत्यु का प्रतीकात्मक चित्रण किया है । "कल्याणी" में कल्याणी वकील साहब से कहती है "मैं हूँ एक इन्वेस्टमेंट ।"[3] कल्याणी के पति डा॰असरानी धनोपार्जन में अपने को असमर्थ पाकर सर्वगुण संपन्न पत्नी को अनेक विधियों से लोकप्रिय बनाकर ख्याति प्राप्त करते हैं । इसलिए कल्याणी का प्रतीकात्मक पद प्रयोग "इन्वेस्टमेंट" बिलकुल सार्थक है । "त्यागपत्र" की बुआ मृणाल के मन में प्रमोद के प्रति प्यार है । सामाजिक बंधनों को तोड़कर प्रमोद के साथ जीने की इच्छा भी है । लेकिन कर नहीं पाती । इस मानसिक भाव को व्यक्त करने के लिए जैनेन्द्र ने प्रतीकात्मक भाषा का सहारा लिया है । मृणाल प्रमोद से कहती है, "हम तुम दोनों रंग-रंग पतंग उडाएँगे । ऐसी उडाएंगे कि खूब दूर ! सब से ऊँची, सब से ऊँची ! उडाएगा पतंग ?"[4]

---

1. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ॰145
2. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ॰ 5
3. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी-पृ॰ 62
4. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र-पृ॰ 10

"सुनीता" में भी प्रतीकात्मक भाषा-प्रयोग की करिश्मा देख सकते हैं । हरिप्रसन्न सुनीता को घर की चार दीवारी से बाहर निकालकर क्रांतिकारी दल की नेत्री बनाना चाहता है "कीच, मट्टी, पत्थर के नीचे दबा हुआ हीरा क्या मुकुट में अपने स्थान पर नहीं पहुंचेगा ? धरती में दबा बह तभी तक के लिए तो है जब तक पारखी की आंख उसे नहीं पाती । पारखी बह क्या है जो हीरे के प्रति अपनी जिम्मेदारी को नहीं पहचानता ? नहीं, बह अपने धर्म में नहीं हारेगा ।"[1]

इलाचन्द्रजोशी ने भी प्रतीकात्मक भाषा-प्रयोग के ज़रिए भाषा की संप्रेषणी यता को बढाया है । "सन्यासी" के नंद किशोर का भाई शंति को भूलने की बात पर ज़ोर देते हुए उससे कहता है "तुम यही समझ लो कि तुम्हारे मन से एक बडा भारी कांटा उखाड दिया गया है । कांटे के चुभे रहने से उतना कष्ट नहीं होता जितना उस के उखाडने से होता है । पर चुभे रहने की तकलीफ़ सब समय बनी रहती है, और उखाडने से जो दर्द होता है बह थोडे ही समय तक रहता है ।"[2] "जहाज का पंछी" के नायक को धोबी प्यारे के घर में चींटी "मच्छर भरे गंदे कमरे में रहना पड़ता है । उस कमरे का वर्णन प्रतीकात्मक ढंग से जोशीजी ने यों किया हैं, चींटियों में काली और गोरी दोनों जातियां विद्यमान थी । गोरे जो रक्त शोषण के कारण कुछ लाल दिखाई देते थे - अधिक क्रुर, अधिक संगठित और अधिक हिंस्क थे । उन के डंक की जहरीली शक्ति बहुत तीव्र थी । बेचारी काली चींटियों के दल हिंसक गोरों के सुदृढ और सुनियमित संगठन प्रचंड हिंसक शक्ति और संचय-संबंधी विविध कलाओं के ज्ञान से चकित थे ।"[3] यहाँ उपन्यासकार ने समाज के वर्णवैषम्य की ओर भी संकेत किया है । "ऋतुचक्र" की प्रतिमा अपनी अधेड उम्र में भी जीवन को आगे बढाने की शक्ति हीनता प्रकट करती है तो दादा उसे यों समझाता है, "तुम कभी एकांत शांति में

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.175
2. इलाचन्द्रजोशी-सन्यासी - पृ.260
3. इलाचन्द्रजोशी-जहाज का पंछी - पृ.187

इस बात का प्रयत्न करोगी तो देखोगी कि तुम्हारे भीतर राख में दबी हुई हज़ारों चिनगारियां अभी तक शेष हैं - इतनी चिनगारियाँ जिन से यदि तुम चाहे तो अपने आँसुओं के सारे रिज़र्वायर को ही पूरे का पूरा सुखा सकती हो ।"[1] जे·हरिकुमार इलाचन्द्रजोशी की भाषा के बारे में यों कहते हैं "उनकी भाषा परिष्कृत और प्रांजल भी है और उस में विषयानुकूल परिवर्तन की क्षमता है ।"[2]

"प्रेत और छाया" की नंदिनी पारसनाथ से कहती है कि उसे भूख नहीं है । तब पारसनाथ कहता है "तुम भूखी हो ! नंदिनी तुम भूखी हो ! मैं जानता हूँ तुम भूखी हो, और मैं भी भूखा हूँ । ····· मैं प्रेत हूँ नंदिनी और तुम छाया ! हाँ, तुम छाया हो और मैं प्रेत ! इसलिए तुम से मेरा मिलन हुए बिना नहीं रह सकता था ! मेरी छाया ! मेरी छाया !"[3] पारसनाथ यहाँ शरीर की भूख के बारे में प्रतीकात्मक रूप में कहता है ।

अज्ञेय ने जटिल मनोभाव और गहन दार्शनिक चिन्तन की अभिव्यक्ति के लिए भाषा में प्रतीकात्मकता का उपयोग किया है । "नदी के द्वीप" में दो व्यक्तियों के मिलन को प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है । "हम द्वीप है मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे छोटे द्वीप और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है, खासकर व्यक्ति और व्यक्ति के संपर्क का, कांटेक्ट का प्रत्येक क्षण अपरिचय के महासागर में एक छोटा किंतु कितना मूल्यवान द्वीप ।"[4] "अपने अपने अजनबी" में सेल्मा अपनी

1· इलाचन्द्रजोशी - ऋतुचक्र - पृ·54।
2· जे·हरिकुमार - इलाचन्द्रजोशी का कथा साहित्य - पृ·179
3· इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ·235
4· अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ·102

मृत्यु की ओर संकेत देकर योके से प्रतीकात्मक भाषा में कहती है, "छुट्टी तो शायद मेरी भी इतनी नहीं है - पर - ।"[1] इस उपन्यास में योके ने अनेक स्थानों पर मृत्यु को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । कभी कभी प्रतीकात्मकता के कारण अज्ञेय की भाषा बोझीली बन गयी है । "अज्ञेय की भाषा एवं शैली साधारण लोगों केलिए "अज्ञेय" ही है ।"[2]

सादृश्य विधान का प्रयोग

विषय के अनुरूप भाषा में अर्थ की गहराई लाने केलिए जैनेन्द्र,जोशी और अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में सादृश्य विधान का प्रयोग किया है । जैनेन्द्र के "विवर्त" में नरेशचन्द्र पत्नी भुवनमोहिनी के सौन्दर्य की प्रशंसा यों करता है, "इस चाँद के सामने वहाँ बाकी सब के मुँह काले पड गए तो, तो, बताइए क्या करूँगा ?"[3]

पात्र की मन:स्थिति के जीवन्त चित्रण के लिए जोशीजी और अज्ञेयजी ने सादृश्य विधान का प्रयोग किया है । "पर्दे की रानी" की निरंजना इन्द्रमोहन के प्रभावी व्यक्तित्व का वर्णन यों करती है "कोई यात्री कृष्ण पक्ष की किसी रात्री में किसी जहाज पर सवार होकर कुछ ऊँघते और कुछ सोते हुए अकूल समुद्र की यात्रा के लिए निरूदेश्य चल पडे, रात-भर उसे इस बात का पता न लगने पावे कि उस का मल्लाह उसे किस दिशा की ओर किस देश की ओर लिए चला जा रहा है,

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.10
2. डा. तहसीलदार दुबे - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास - पृ.50
3. जैनेन्द्रकुमार - विवर्त - पृ.32

और सुबह को उसे कुछ अद्भुत प्रकृति के और विचित्र रीति रस्मों को माननेवाले विजातीय मनुष्यों के बीच एक छोटे से टापू में अकेला छोड कर वह जहाज मल्लाह सहित गायब हो जाय, तो उस पथिक की जो मानसिक स्थिति होगी, मनमोहन बाबू के यहाँ आने के बाद से वही दशा मेरी भी हो रही थी ।"[1] मुक्तिपथ" की सुनंदा के मन पर राजीव की बातों के असर का चित्रण यों किया गया है "राजीव का एक-एक शब्द उस के मन की कई मोटे लोहे की चादर पर भीम की गदा के समान भारी हथोडे से चोट पर चोट करता चला जा रहा था ।"[2] "निर्वासित" की शारदा के व्यक्तित्व का चित्रण भी इस प्रकार किया गया है "मकडा जिस प्रकार अपने जाले में मक्खी को फंसाकर उसे न तो मारकर खाता है, न समूचा निगलता है, बल्कि उस के शरीर के भीतर के अदृश्य और परमाणुवत, सूक्ष्म छिद्रों से उस के समस्त सत्व चूसकर उस के शारीरिक ढांचे को ज्यों का त्यों छोड देता है, शारदा देवी की कल्पना ठीक उसी निसत्व जीव के रूप में उठा करती थीं ।"[3]

जोशी ने कहीं कहीं पात्रों की मन:स्थिति का चित्रण वैज्ञानिक उपमाओं की सहायता से भी किया है । "सन्यासी" की शांति की विस्मित दृष्टि की उपमा "एक्स-रे" के किरणों से की गयी है । "जब कभी वह अपनी स्वभावत: विस्मित दृष्टि की किरणों को किसी व्यक्ति की ओर केन्द्रित करती तो ऐसा जान पडता जैसे "एक्स-रे" की तरह उस के शरीर के बाह्यावरण को भेदकर उस के मर्म का अणु-अणु देख लेगी ।"[4] "प्रेत और छाया" के पारसनाथ के मन में उठनेवाले

---

1. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.75
2. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ.127
3. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.172
4. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.331

क्रोध और हिंसा की तुलन का वर्णन इस प्रकार किया है "रह रह कर कालकूट से भी अधिक तीव्र और उग्र विषयुक्त हाईड्राजन से उस की छाती बैलून की तरह फूल उठती थी - चरम विस्फोट के लिए ।"[1] "जिप्सी" के नृपेन्द्ररंजन के हृदय पर पड़नेवाली आघातो ' की उपमा का एक नमूना है "लोहे की भट्ठी में गर्म किए हुए लाल-लाल हथौडों की निर्मम चोटों से मेरे मन के वर्षों से जंग खाए हुए लोहे के दरवाज़े हिलने लगे थे ।"[2] मुक्तिपथ" में राजीव के मन में उठनेवाली घृणा एवं प्रतिहिंसा को बर्डर से तुलना की है, "राजीव के भीतर बहुत देर से घृणा और प्रति हिंसा की भावनाएँ मुख बंद किए हुए स्टीम बायलर के धुए की तरह पूंजीभूत होती जा रही थी ।"[3] "सुबह के भूले" में हेमकुमार ने गिरिजा के सामने यह रहस्योद्घाटन किया कि वह एक दूध बेचनेवाले की लड़की है, अतएव उच्चसमाज उस से विमुख है । यह सुनकर "उस के मुख का सारा व्यंग्यात्मक भाव, सारी मस्ती, सारा अल्हड़पन, जवानी का संपूर्ण आत्मविश्वास पल में इस तरह गायब हो गए जैसे रंग-बिरंगे बल्बों का "बदनवार" मेन स्विच" के "आफ़" होते ही एक क्षण में सारे का सारा बुझ जाय ।"[4] अज्ञेय ने भी पात्रों के भाव एवं विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति केलिए सादृश्य विधान का प्रयोग किया है । "शेखर : एक जीवनी" में शेखर की स्मृतियों की उपमा अँधियारे में चमकनेवाले जुगुनुओं से की है "उस अँधियारे युग में जुगुनुओं की तरह ये कुछ एक दृश्य चमक जाते हैं, लेकिन सब दृश्य ही हैं, सब आकर चले ही जाते हैं, लेकिन सब दृश्य ही है, सब आकर चले ही जाते हैं, बढता ही जाता है .... ।"[5]

---

1. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ॰34
2. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ॰485
3. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ॰15
4. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले - पृ॰120
5. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ॰112

"शेखर के प्रणय एवं पीडायुक्त मन का चित्रण इस उपमा द्वारा किया गया है "मालती फूल .... उन का मधुर सौरभ ..... लेकिन कहाँ है नीम के बराबर सौरभ - वह सौरभ जिसे मैं भूल नहीं सकता, जो मुझ में परिव्याप्त है । नीम का स्वाद कटु है । गंध मधुर । ऐसा ही प्रेम है, जिस का रंग सुंदर है और स्पर्श कठोर ।"[1] "नदी के द्वीप" की रेखा ने जीवन की अस्थिरता का उपमायुक्त वर्णन यों किया है, "आप ने कभी पानी के फव्वारे टिकी हुई गेंद देखी है ? बस जीवन वैसा ही है, क्षणों की धारा पर उछलता हुआ जब तक धारा है तब तक मत ..... सच कहो, क्या मुझ से भागते हो -

तुम से ? - हाँ -

सुनीता कुछ मुस्कराई "तो मैं भी तुम से भागूँ ? तुम ही कहती हो, भागो मत । मैं तो, हाँ कहता हूँ, भाग जाओ । वक्त रहे, तब तक भाग जाओ । मुझे भी कहो, कि मैं भाग जाऊँ । भाभी नहीं तो - "[2] जैनेन्द्र ने गहन व जटिल मन:स्थितियों के विश्लेषण केलिए ही प्रौढ तथा अर्थपूर्ण भाषा " प्रयोग का सहारा लिया था । डॉ॰देवराज उपाध्याय के शब्दों में, "जैनेन्द्र की भाषा में भावों की ऊंचाई तक उठकर उन्हें अभिव्यक्त करने की गजब की शक्ति है । उन के वाक्य प्राय: छोटे चलते हैं । पर साथ ही साथ मानो, फूल बिखेरते हुए से चलते हैं ।"[3] जैनेन्द्र की भाषा में छोटे छोटे वाक्यों के ज़रिए बहुत कुछ ध्वनित करने की अपूर्व क्षमता है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी (I) - पृ॰126
2. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ॰100
3. डॉ॰देवराज उपाध्याय - जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - पृ॰6।

इलाचन्द्रजोशी के उपन्यासों में भी अधूरे वाक्यों का प्रयोग मिलता है । "जहाज का पंछी" में नायक और धोबी प्यारे की बातचीत देखिए ।

"कितने दिन हो गए तुम्हें यहाँ मरते हुए ?

करीब एक हफ्ता हो गया होगा ।

शिकायत क्या है ?

पता नहीं बाबू कहते हैं कुछ तिल्ली में खराबी आ गई है । पेट के बाई ओर कभी कभी बडे ज़ोर का दर्द उठता है । वैसे मीठा मीठा दर्द हर घडी बना रहा है ।.....

क्या काम करते हो ?

हम धोबी हैं बाबू ।"[1]

"प्रेत और छाया" की नंदिनी पारसनाथ के साथ भाग जाने की तैयारी करती है । उस समय के पारसनाथ का आत्मालाप जोशीजी ने छोटे छोटे वाक्यों द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से किया है "खबरदार ! खबरदार ! सावधान ! सोच लो सोच लो ! फिर से सोच लो ! इतना बडा गजब, ऐसा भयंकर अंधेर न करो ! अपनी पाप - प्रवृत्तियों को सर्वनाश की इस सीमा तक न पहुँचने दो ।"[2] पहाडी अंचल में आकर प्रकृति सौन्दर्य में मग्न होकर दादा मन ही मन कहने लगे -"कैसा अद्भुत, अपूर्व दृश्य था वह ! और कितना प्यारा, कितना सुखकर, कितना घरेलू - " और "घरेलू" कहते कहते रुक गये - हैं । यह सब क्या ! घरेलू ! और यह सारा रूपक ! कैसा अद्भुत और अर्थहीन था वह ! .... "[3]

"सुबह के भूले" में महावीर गुलबिया के पिता की मृत्यु के बाद उस की माँ को छोटे छोटे वाक्यों द्वारा ज़्यादा शक्ति प्रदान करता है "जो गया है वह लौटकर कभी नहीं आयेगा "..... प्राण देकर भी उसे

---

1. इलाचन्द्रजोशी - जहाज का पंछी - पृ.203
2. इलाचन्द्रजोशी - प्रेत और छाया - पृ.291
3. इलाचन्द्रजोशी - ऋतुचक्र - पृ.14

वापस न आ पाओगे । और फिर, अपने लिए न सही, बिटिया के लिए तो तुम्हें जीना ही होगा ।"[1] पर जैनेन्द्र और अज्ञेय की तुलना में जोशीजी के उपन्यासों में यह प्रवृत्ति प्राय: कम मिलती है । "इलाचन्द्रजोशी की भाषा के बारे में जे.हरिकुमार का कहना है "शायद अपने पांडित्य प्रदर्शन के लोभ को संवरण न कर सकने के कारण कहीं-कहीं लंबे और बहुत लंबे वाक्यों का उपयोग भी उन्होंने किया है ।"[2] यह बिलकुल ठीक ही है ।

अज्ञेयजी की भाषा में मानव मन की विश्लेषणात्मकता के आधिक्य के कारण अल्प-विरामों, अंतराल चिन्हों तथा लघु लघु वाक्यों की प्रधानता मिलती है। "शेखर : एक जीवनी" में भाषा के मौनमय अभिव्यक्ति के लिए अज्ञेय ने रिक्तस्थान का प्रयोग किया है । "नदी के द्वीप" में भी यह विशेषता दृष्टव्य है । अज्ञेय ने अपूर्ण वाक्य या वाक्यांश को सूचित करने के लिए बिंदुत्रयों और अपसारकों (डैशों) का प्रयोग भी किया है । उदाहरण के लिए शेखर अपने बारे में सोचता है "अगर बडा होने पर ही सोचना होता है, तो मैं आज ही सोचकर बड़ा क्यों न हो जाऊँ ..... ।"[3] शेखर एक बार निम्न जाति के एक व्यक्ति से पानी पी गई घटना की याद करता है "उस के बहुत दिन बाद की - बीस वर्ष बाद की - एक बात मुझे याद आती है ।"[4] सरस्वती विवाह के बाद उस से विदा लेकर चलने लगती है । तब "शेखर ने मानो पलकों से हाथ को पकडने की चेष्ट करते हुए कहा "मुझे कुछ नहीं है । "फिर थोडी बाद, "तुम चली जाओगी -

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले - पृ 27
2. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ.147 भाग - I
3. वही - पृ.176 भाग - II
4. वही - पृ.246 भाग - II

G8221

तब भी कुछ नहीं होगा । ..... सब लोग और शादी के बाद रमा अपने पति के घर चली गयी - रमा नहीं, सरस्वती ..... और सब लौट आये ..... ।"[1] पति से परित्यक्ता होकर शशि जब शेखर के पास आती है तब वह उस से कहती है "हां, मैं कहती हूं । सोच लो, शेखर अभी समय है । कोई कारण नहीं है कि तुम मुझे भीतर बुलाओ या आने दो । मैं सकने नहीं आई - किसी को संकट में डालना मुझ से नहीं होगा - और - तुम्हें - तो - कभी नहीं .... ।"[2] उस का स्वर टूट गया, आयासपूर्वक उस ने कहा "तुम ने आगे ही जो दिया है - " यहां अपूर्ण वाक्यों में शशि का मानसिक संघर्ष प्रतिबिंबित होता है ।

शशि के अंतिम दिनों में वह शेखर से कहती है "तुम नहीं हारोगे - कभी नहीं हारोगे - मेरे लिए, शेखर, मेरे लिए .... " "मैं जानता हूं, शशि ..... सकना मेरे लिए नहीं है - तुम ने मुझे दिया नहीं । पर चलूंगा कैसे, मैं नहीं जानता - मुझे नहीं दीखता - किस के लिए ..... या कि तुम्हारे ही लिए होना - मेरे बिना देखे, बिना जाने किसी तरह तुम्हारे लिए, तुम्हारे ही लिए शशि ..... ।"[3] यहां बिंदुत्रयों और डैशों में भाव को सुरक्षित रखने का कार्य किया गया है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ.147
2. वही - पृ.176 भाग-II
3. वही - (प्र) पृ.246

मुहावरे और लोकोक्ति

जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय आदि के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रेमचंदकालीन उपन्यासों का थोड-सा प्रभाव मिलता है । उन्होंने बहुत कम मात्रा में ही सही अपने उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है ।

जैनेन्द्र की भाषा मुहावरेदार तो नहीं है, फिर भी उस का प्रयोग हुआ है । उन के "परख" से लेकर लगभग सभी उपन्यासों में "बीडा उठाना"[1] "पानी-पानी होना"[2], "खटाई में पड़ना"[3] "एक पन्थ दो काज"[4], "फूट-फूट कर रोना"[5], "खटिया से लगना"[6], "तीन तेरह होना"[8], "साख जमाना"[7] जैसे मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग देख सकते हैं । उसी प्रकार इन के उपन्यासो की भाषा में सूक्तियों के प्रयोग भी मिलते हैं ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ·39
2. वही - पृ·123
3. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ·11
4. वही - पृ·87
5. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ·18
6. वही - पृ·95
7. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ·42
8. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ·126

"शेखर : एक एक जीवनी" के पहले भाग में काली छाया मंडराना, कानाफूसी करना, ठौर न रहना, पौ फटना, चौकन्ना रहना, चक्कर काटना, सिर खाना, मिट्टी में मिल जाना, तनकर बोलना, मातम छा जाना जैसे प्रयोग मिलते हैं । "नदी के द्वीप" और "अपने अपने अजनबी" में भी इस तरह के भाषा प्रयोग देख सकते हैं । डॉ॰ सत्यपालचुंघ का कथन है, "पात्र प्राय: अधूरे खुलते हैं और खुलते भी हैं तो प्राय: थोडे ही शब्दों में खुलते हैं । उन की असमाजिक स्थितियों का दुराव छिपाव कहीं शब्दों वाक्यों की आवृत्ति करता, कहीं बिन बोले बात करता, कहीं अंतरालों में लडखडाता, कहीं अधूरे-टूटे वाक्यों में खुलता और प्राय: व्याकरण विपर्यस्त वाक्य विन्यास में अभिव्यक्ति पाता है ।"[1]

भाषा प्रयोग और जैनेन्द्र

जैनेन्द्र के पात्र आन्तरिक संघर्ष के कारण चिंताग्रस्त हैं । इसलिए उन की भाषा में दार्शनिकता का प्रभाव है । त्यागपत्र, सुनीता जैसे उपन्यासों में इस केलिए अनेक उदाहरण मिलते हैं । 'जैनेन्द्र की भाषा के बारे में डॉ॰ सत्यपालचुंघ का कथन है "उन्होंने अपनी दार्शनिक रुचि, चिन्तन रस मानस प्रधान पात्रों तथा मनोवैज्ञानिक विषय के निर्वहण के लिए एक विशिष्ट शैली निर्मित की है । सरल भाषा में लाक्षणिक वक्रता तथा व्यंजकता लाना: सरल वक्रता जैनेन्द्रीय शैली का वैशिष्ट्य है । बात असाधारण हो चाहे गंभीर व्यावहारिक हो चाहे दार्शनिक, वे शब्द चयन की दृष्टि से सरल भाषा की ही प्रयोग करते हैं ।"[2] दार्शनिकता के कारण उन की भाषा में

---

1. डॉ॰सत्यपालचुंघ - अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि - पृ॰178
2. डॉ॰सत्यपालचुंघ - प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - पृ॰113

सूक्तियों का प्रयोग भी मिलता है । उदाहरण केलिए "जीवन दायित्व का खेल है, पग-पग पर समझौता है ।"[1] "निष्फलता ही जगत का निष्कर्ष नहीं है, नकार सार नहीं है ।"[2] "श्रद्धा के साथ मरना भी सार्थक है ।"[3] "विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है ।"[4] "संस्कृति या तो आदमी-आदमी के बीच में स्वार्थ का संबंध बनाकर हथियार की ज़रूरत पैदा कर देगी, नहीं तो उन के दर्मियान एक खाई बनी रहने देगी । इस संस्कृति में हृदय नहीं है, हिसाब है । यह संस्कृति ही नहीं है । यह तो बढा बढी का जुआ है । एक घुड दौड है ।"[5]

जैनेन्द्र के पात्र दार्शनिक एवं प्रतिभासंपन्न होने के कारण, वे अपनी अनुभूतियों एवं मन की जटिल गतिविधियों को प्रकाश में लाते समय इसी तरह दार्शनिक एवं प्रौढ भाषा का प्रयोग करते हैं ।

जैनेन्द्र भाषा के शिकंजे को अस्वीकार करनेवाला लेखक है । "परख" की भूमिका में वे लिखते हैं - न भाषा का शिकंजा है, न भाव का । दोनों किसी कोड के नियमों में बंध कर नहीं रह सकती । इसलिए वे कभी कभी भाषा में विशेष प्रयोग करते हैं । जैनेन्द्र वाक्य में भाव अधिक तीव्र बनाने के लिए विपरीतार्थवाले शब्दों का प्रयोग साथ साथ करते हैं । उदाहरण "पतन कोई नहीं चाहता, सब उत्थान चाहते हैं ।"[6] "मुक्तिबोध" में नीलिमा कहती है "हो दुर्बल मानती हूँ ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - परख - पृ.89
2. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.16
3. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ.16
4. वही - पृ.74
5. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.70
6. जैनेन्द्रकुमार - अनंतर - पृ.109

लेकिन इतने दुर्बल नहीं कि बल तुम्हें राम का ही रह जाए ।"[1]
"व्यतीत" में जयंत अनीता से कहता है "युद्ध में जाता हूँ, पर शांति के लिए जाता हूँ, अनीता ।"[2] "कल्याणी" में कल्याणी वकील साहब से कहती है "आप लोग जानते हैं, बिना पैसे हम सभ्यतापूर्वक उठ बैठ भी नहीं सकते । इसलिए एक घंटे के लिए इस जगह फीसवाले रोगियों के लिए भी मैं अदृश्य सुलभ रहूँगी । सुलभ का मतलब आप जानते ही हैं, दुर्लभ ।"[3]

कभी कभी जैनेन्द्र वाक्यों में शब्दों का दोहराव करते हैं । यह प्रयोग भाषा को विकृत बनाती है । "व्यतीत" में जयंत चन्द्री को विलायत जाने से रोकने की कोशिश करते समय वह बोली "मैं ने कहा था नहीं जाऊँगी । अब कहती हूँ, जाऊँगी, जाऊँगी, जाऊँगी ।"[4]
अन्य एक वाक्य देखिए - "मुझे नहीं चलना है । चलना, चलना, चलना से तंग आ गया, सुनती हो, मैं नहीं चलूँगा ।"[5] "सुनीता" में भी इस तरह के वाक्य मिलते हैं । श्रीकांत स्वयं अपने बारे में सोचता है "फिर भी मानो अपने से पूछता है, हाँ ? पूछता है और .... ।"[6]
"सुनीता अपना काम करती रही, करती रही ।"[7] जैनेन्द्र के "हो आई" विशिष्ट प्रयोग भी भाषा का सौन्दर्य नष्ट करता है । "कल्याणी" में भाषा के इस विशिष्ट प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - मुक्तिबोध - पृ.104
2. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.37-38
3. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ.38
4. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ.35
5. वही - पृ.83
6. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.12
7. वही - पृ.18

"याद हो आई ।"[1]

"दीवानी तो नहीं हो गई ।"[2]

"वह उठ आई ।"[3]

"त्यागपत्र" में भी इस तरह के भाषा प्रयोग मिलते हैं ।

"कहते कहते आँखें उन की जाने कैसी "हो आई" थीं और वाणी काँपकर रुकना चाहती थी ।"[4]

संक्षेप में कहें तो जैनेन्द्र की भाषा में न संबद्धता है और न तार्किकता । उन के उपन्यासों की चिंतनपरक भाषा उन के विषय के अनुरूप है । उनकी भाषा में पात्र के मन की जटिल ग्रंथियों एवं भीतरी प्रतिक्रियाओं को उजागर करनेवाली सतर्कता है । फिर भी उस भाषा में लापरवाही भी जुरूर है ।

डा॰ (श्रीमती) ओमशुक्ल जैनेन्द्र की भाषा के बारे में कहती है "गहन व जटिल मन:स्थितियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का भार वहन करने का लक्ष्य सम्मुख रखकर उन्होंने जिस भाषा को जन्म दिया है वह सर्वथा प्रौढ, अर्थपूर्ण और मंजी हुई है ।"[5] मतलब कि जैनेन्द्रने भाषा को अधिक प्रौढ और प्रभावपूर्ण बना दिया ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ॰97
2. वही - पृ॰92
3. वही - पृ॰120
4. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ॰25
5. डा॰ (श्रीमती) ओमशुक्ल - हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास - पृ॰254

इलाचन्द्रजोशी की भाषा

जोशी ने फ्रायड, एडलर और युंग को गंभीरता तथा व्यवस्थित ढंग से पढ़ा और उन्हें अपने सृजनात्मक साहित्य में उतारने का कार्य भी किया है । इस तरह के सैद्धांतिक उपयोग के कारण उन की भाषा में सैद्धान्ति जड़ता और जकड़बंदी का आभास मिलता है । उन के विवेचन और विश्लेषण की प्रकृतिवाली भाषा के कारण ही उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यास-साहित्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र का जैसा स्थान प्राप्त नहीं हो पाया ।

जोशीजी के उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक शब्दों की लंबी कतार ही खड़ी है । "निर्वासित" में महीप की मानसिक अवस्था का वर्णन यों किया गया है, "बहुत दिनों की पुंजीभूत, रुद्ध भावनाओं से आच्छन्न महीप का अर्द्धचेतन मन अपने ही अन्तर्मन द्वारा अज्ञात में रची गई रहस्यात्मकता में डूबने से बचने की प्रबल चेष्टा करता हुआ छटपटा रहा था । पर जिस प्रकार लगातर कई दिनों के रात्रि-जागरण से थका हुआ व्यक्ति न चाहने पर भी बार-बार ऊंघने और झूमने लगता है, उसी प्रकार महीप भी उस मोहाच्छन्न मनोभावना में बरबस डूबने के लिए उन्मुख-सा हुआ चला जाता था ।"[1] "ऋतुचक्र" में मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का उल्लेख भी है । दादा प्रतिमा से कहता है "मेरे मन में यह विश्वास जमने लगा है कि मनुष्य जन्म से लेकर आगे बढ़ता हुआ हर उम्र में जिन अनुभूतियों से होकर गुज़रता है और फिर उन्हें भी पार करता चला जाता है, वे बाद में दूसरी उम्र की दूसरी अनुभूतियों के बीच - कहीं खो नहीं जाती । वे हमारे भीतर के किसी अनजाने कोष में उसी रूप में सुरक्षित रहती हैं, उनमें तनिक भी विकार नहीं आता ।"[2]

---

1. इलाचन्द्रजोशी - निर्वासित - पृ.84
2. इलाचन्द्रजोशी - ऋतुचक्र - पृ.100

जोशीजी वाक्यों के बीच कोष्ठकों का प्रयोग भी करते हैं । वाक्यों के बीच इस तरह का विशिष्ट प्रयोग वास्तव में भाषा को विकृत बनाता है । "लज्जा" में लज्जा अपने नाम के बारे में सोचती है "मेरा नाम काका ने बडे लाड से लज्जावती रखा था । (हाय ! तब उन्हें क्या खबर थी कि उन की लाडली लड़की ऐसा बेहया निकलेगी ।)"[1] "पर्दे की रानी" में निरंजना के कमरे की सजावट के बारे में शीला कहती है "एक कोने में कुछ बक्स सजाकर रखे हुए थे और एक चमडे का बक्स (जिस की आवश्यकता संभवत: सब समय पड़ती होगी ।)"[2]

"निदर्शित" में कोष्ठकों के अधिक तथा अनुचित प्रयोग मिलते हैं । उपन्यास के प्रारंभ में महीप और नीलिमा का प्रथम परिचय जोशीजी इस प्रकार देते हैं "दर्शकों की पहली कतार में एक गोरे रंग का, दुबला पतला नाटा सा युवक (जो आकृति-प्रकृति और कद में एक कालेजी लड़के से बड़ा नहीं दिखाई देता था, पर उम्र के हिसाब से था पूर्ण युवक ही) बडी देर से एक विशेष स्वयं सेविका की गति विधि पर गौर कर रहा था ।"[3] "मुक्तिपथ" में राजीव अपने पिछले जीवन के विचित्र मनोभाव तथा कल्पना का स्मरण यों करता है "एक जमाना था (तब उस की अवस्था पन्द्रह वर्ष के करीब रही होगी), जब उस के अज्ञात मन में यह आशा हास्यास्पद रूप से वर्तमान थी कि उस का विवाह किसी राजकुमारी के साथ होगा ।"[4]

"कवि की प्रेयसी" में घर में इज्जा या कनिपठा माता आती तो सौमित्र अन्य सभी माताओं से विरक्त हो जाता है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ. 8
2. इलाचन्द्रजोशी - पर्दे की रानी - पृ.112
3. इलाचन्द्रजोशी - निदर्शित - पृ.2
4. इलाचन्द्रजोशी - मुक्तिपथ - पृ.7

वह कहता है "मुझे अपने घर में अपनी सभी माताओं के प्रति (अपनी सगी माता के प्रति भी) तब से विरक्ति सी हो गई ।"[1]

जोशीजी के "प्रेत और छाया", "भूत का भविष्य", "ऋतुचक्र", जहाज का पंछी, जिप्सी, सुबह के भूले आदि उपन्यासों में भी यह विशेष प्रवृत्ति विद्यमान है । उपन्यास पढ़ते समय बार बार आते ये कोष्ठक भाषा प्रवाह में बाधा अवश्य उपस्थित करते हैं और पाठक ऊब जाते हैं ।

भाषा का बादशाह अज्ञेय

अज्ञेय ने अपने सृजन कार्य में मनोवैज्ञानिक एवं अस्तित्ववादी सिद्धान्तों को अपनाया है । इसलिए उन की भाषा सूक्ष्म है पर उन में सैद्धांतिक बोझ नहीं है । भाषा के संबंध में लेखक ने अपने "आत्मनेपद" में कहा है "मैं उन व्यक्तियों में से हूँ ..... और ऐसे व्यक्तियों की संख्या शायद दिन प्रतिदिन घटती जा रही है जो भाषा का सम्मान करते हैं और अच्छी भाषा को अपने आप में एक सिद्ध मानते हैं ।"[2]

अज्ञेय के पात्र उच्चवर्गीय और शिक्षित है । इसलिए अन्य उपन्यासकारों की अपेक्षा अज्ञेय की भाषा में अंग्रेज़ी तथा बंगला के प्रयोग ज़्यादा मिलते हैं । इसीलिए साधारण जनता के लिए अज्ञेय की भाषा अज्ञेय ही रह जाती है । अज्ञेय नए शब्दों के सृजन में समर्थ है और वे शब्दों के अद्वितीय संयोजनकर्ता भी है. । अज्ञेय की भाषा के बारे में

---

1. इलाचन्द्रजोशी - कवि की प्रेयसी - पृ.19

2. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.240

डा॰ देवकृष्ण मौर्य कहते हैं "अज्ञेयजी की भाषा पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भी है । उस में अलंकारों, मुहावरों, सूक्तियों आदि का प्रयोग भी हुआ है । जैसा कि मैं ने पहले भी कहा है कि वे शब्दों के प्रयोग में माहिर हैं । कौन-सा शब्द कहाँ और किस रूप में प्रयुक्त होना चाहिए, उन्हें भली भाँति ज्ञात है । शब्दों के नवीन प्रयोग से भी वे चूकते नहीं ।"[1]

अज्ञेय की भाषा में शब्दों की आवृत्ति देख सकते हैं । बहुत अधिक फैलाव दिखाने के लिए, निरंतरता की ओर संकेत करने केलिए और निरर्थकता दिखाने के लिए आवृत्ति मूलक शब्दों का प्रयोग करते हैं । कभी कभी ध्वनिगत तथा अर्थगत आवृत्ति भी मिलती है । उदाहरण के रूप में "शेखर : एक जीवनी" के पहले भाग में गाती जाती, देश-विदेश, फूल-पत्तों, देख-रेख, गर्जन-तर्जन, दाल-रोटी आदि प्रयोग हुए हैं । उपन्यास के दूसरे भाग में भाई-बन्द, चेहरे-मोहरे, रंग-ढंग, प्रेम-चेम, मौके-बे मौके, सफाई-उफाई, बोलती-बोलती जैसे प्रयोग हैं ।

अज्ञेय कवि, दार्शनिक एवं चिंतक होने के कारण हिन्दी साहित्य जगत में उन की भाषा अद्वितीय है "अज्ञेय की भाषा अपूर्व शिल्पित है । उस में स्वाभाविक परिष्कृति, अभिजात सादगी, मंजी कांति तथा सुंदर-सधे वाक्यों के संतुलित प्रवाह का सम्मोहन है ।"[2] अत: आधुनिक हिन्दी साहित्य में वे भाषा का बादशाह बन गए है।

भाषा की भावानुगामिनी और काव्यमयी प्रकृति मनोवैज्ञानिक उपन्यास और साधारण उपन्यास के बीच लकीर खींचती है । जैनेन्द्र और इलाचन्द्रजोशी की भाषा से अज्ञेय की भाषा अधिक काव्यमय है ।

---

1. डा॰देवकृष्ण मौर्य - अज्ञेय का कथा साहित्य - पृ॰166
2. डा॰सत्यपालचुघ - अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्प-विधि - पृ॰18।

"हिन्दी गद्य को एक साथ अर्थ - प्रवण, परिष्कृत तथा सुन्दर बनाकर प्रोन्नत करने में उन का आधुनिक कथाकारों में सर्वोपरि स्थान है ।"[1]

ये तीनों उपन्यासकार भावानुगामिनी भाषा के प्रयोग करने के कारण इन के उपन्यासों की भाषा अधिक सूक्ष्म बन गई है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मानव के संकीर्ण भावों और विचारों के विश्लेषण में अधिक संलग्न हैं । इसलिए उनकी भाषा अधिक जटिल एवं प्रतीकात्मक है । फिर भी इन की भाषा जीवंत है । इस की भाषा में अपूर्ण-वाक्य, वाक्यांश, अंतराल आदि साधारणत: दिखाई देते हैं । मानसिक संघर्ष, द्वन्द्व, मानसिक विभ्रांति आदि के चित्रण में इस तरह की भाषा का प्रयोग प्रभावशाली है । कभी कभी इन्हें, भाषा अपर्याप्त भी लगती है । इस की भाषा में अभिधार्थ से अधिक ध्वनित करने की शक्ति है । भाषा की यह अपूर्व क्षमता एवं चारुता सराहनीय है । जाहिर है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा अपने कथ्य के अनुरूप सूक्ष्म एवं जटिल है तथा कथ्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों एवं सन्दर्भों को अपने में वहन करने की क्षमता रखनेवाली भी है ।

****

---

1. डॉ॰सत्यपालचुघ - अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्प-विधि - पृ॰182

पाँचवाँ अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शैली

पांचवां अध्याय

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शैली

शैली

शिल्प रचना का ढाँचा है तो शैली उस ढांचे को भरने की रीति है । इसलिए शिल्प-विधि का क्षेत्र व्यापक है तो शैली का क्षेत्र सीमित ।

"शैली" अंग्रेज़ी के "स्टाइल" का पर्यायवाची शब्द है । हिन्दी कोश में शैली की परिभाषा यों दी गई है, "शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं ।"[1]

साहित्य में "शैली" शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत आधुनिक है । शैली का संबंध शील से अर्थात् व्यक्ति के स्वभाव से मानने के कारण उस के अंतर्गत रचयिता के व्यक्तित्व का समादेश हो गया है । शैली में लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार करने के साथ ही

---

1. हिन्दी साहित्यकोश : भाग-1 - पृ.773

उसे अभिव्यक्ति की विशेष तरीका भी माना गया है । इस प्रकार शैली का संबंध रचना के बाह्य परिधान से है । इस का निर्वहण भाषा एवं शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा होता है ।

शैली विषयवस्तु को प्रस्तुत करनेवाली प्रणालियों एवं साधनों का समावेश है । शैली से लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है । जार्ज बर्नाड शा शैली को प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति मानते हैं ।

शैली लेखक के हृदय की अनुभूति से लेकर पाठक की अनुभूति तक की प्रक्रिया से संबन्धित है । किसी भी साहित्यिक विधा की सफलता उस की शैली पर निर्भर रहती है । उपन्यास भी इस से विच्छिन्न नहीं । क्योंकि उपन्यास की शैली के अन्तर्गत कथावस्तु नियोजन तथा पात्र संरचना भी आते हैं । कथ्य के सही संप्रेषण के लिए शैली सशक्त माध्यम है । शैली तो साधन है न कि साध्य । इसके द्वारा उपन्यासकार अपने मन के भावों तथा कल्पनाओं को साकार कर देते हैं । सामाजिक, आंचलिक मनोवैज्ञानिक या किसी भी प्रकार के उपन्यास हो उन के लिए उपयुक्त एवं प्रभावशाली शैली का होना ज़रूरी है ।

प्रेमचंद और उन के युग के उपन्यासकारों ने कथा को विवरणात्मक शैली में ही प्रस्तुत किया था । वे वातावरण रंगमंच और उस के परिवेश का परिचय वर्णन द्वारा देते थे । वास्तव में इन्होंने अनावश्यक विवरणों से उपन्यास को कभी कभी बोझिल भी बना दिया था ।

जैनेन्द्र, जोशी तथा अज्ञेय के उपन्यासों की शैली

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आगमन के पहले तक सभी उपन्यास अन्य पुरुष में वर्णनात्मक शैली में लिखे गये थे । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रथम पुरुष का प्रयोग ज़्यादा हुआ है । इसलिए इन उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली, फ्लाशबैक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, चेतनाप्रवाह शैली जैसी नयी नयी शैलियों के प्रयोग हुए हैं । विषयवस्तु को अधिक रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाने में उपर्युक्त शैलियाँ अधिक उपयोगी रही हैं ।

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में उपन्यासकार प्रमुख पात्र या किसी अन्य पात्र का स्थान ग्रहण कर के प्रथम पुरुष में कथा का वर्णन करता है । इससे कथा अधिक वास्तविक प्रतीत होती है । आत्मकथात्मक उपन्यास में जीवन का आंतरिक पक्ष अधिक प्रबल रहता है । रचनाकार स्वयं को उपन्यास के किसी पात्र के साथ एकरूप कर लेता है । कभी कभी वह खुद को एक पात्र बना लेता है । एक पात्र के रूप में वह उन्हीं बातों एवं घटनाओं की जानकारी प्रस्तुत करता है जिन्हें उसने जान लिया है । इस शैली में प्राय: अन्य पात्र एवं घटनाएँ तो नाममात्र के लिए होते हैं और वास्तविक कहानी तो खुद की होती है ।

व्यक्ति के अन्तर्मन की सही पहचान इस शैली से संभव हो जाती है । इस प्रकार प्रथम पुरुष की तरफ से प्रस्तुत की जानेवाली सभी प्रकार की कथाओं को आत्मकथात्मक शैली के अंतर्गत रख सकते हैं ।

मनुष्य की निजी भावनाओं को व्यक्त करनेवाली संस्मरण, डायरी, पत्र आदि शैलियाँ इसके अंतर्गत आती हैं ।

आत्मकथात्मक शैली और संस्मरणात्मक शैली में अंतर यह है कि संस्मरण व्यक्ति के बाह्य अनुभवों पर अधिक ज़ोर देते हैं तो आत्मकथात्मक शैली चरित्र पर । संस्मरण में लेखक के अतिरिक्त कोई भी पात्र मुख्य हो सकता है । लेकिन आत्मकथात्मक शैली में लेखक के अपने विचार, अनुभव तथा पृष्ठभूमि का ही विश्लेषण किया जाता है । डायरी शैली की स्वच्छंदता भी इस में आ नहीं पाती ।

जैनेन्द्र के " त्यागपत्र" में आत्मकथात्मक शैली का प्रत्यक्ष रूप मिलता है । इस का प्रमुख पात्र प्रमोद आत्मकथा द्वारा बुआ मृणाल के दुखपूर्ण और दयनीय जीवन का पर्दाफाश करता है । आत्मविश्लेषण पर विकसित इस शैली में त्यागपत्र निखर उठा है । "कल्याणी" उपन्यास की कथा मिसेज़ असरानी की है पर वकील साहब के द्वारा ही कथा प्रस्तुत की गयी है । "जयवर्धन" में आत्मकथात्मक और डायरी शैली का मिश्रण है । इस उपन्यास की शैली के बारे में डॉ॰ प्रेमभट्टनागर का कथन है "शैली की दृष्टि से उपन्यास के शिल्प में नया प्रयोग हुआ है । हूस्टन की डायरी तो कथावर्णित हुई ही कथाकार ने प्रसिद्ध पात्रों में से दो से अधिक पात्रों की भेंट और वार्ता कराकर राज - नीति पर विचार-विमर्श तथा घटनाओं के विकास का दिशान्यास किया है ।"[1]

---

1. डॉ॰प्रेमभट्टनागर - हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य पृ॰44

आत्मकथात्मक शैली में लिखे "मुक्तिबोध" की विशेषता यह है कि कथा नायक "मैं" के मानसिक विश्लेषण से प्रारंभ होती है । लेकिन उपन्यास के कुछ पन्ने पढ़ने के बाद ठाकुर महादेवसिंह के फोन से पाठकों को पता चलता है कि नायक का नाम "सहाय" है । "त्यागपत्र" का दूसरा भाग "अनामस्वामी" में भी "त्यागपत्र" का ही रचना विधान है । इस उपन्यास में रिटयार्ड जज पी॰ दयाल आत्मकथा सुनाता है । दास्तव में यहाँ दयाल की कहानी से अधिक अनामस्वामी, दसुंधरा और शंकर उपाध्याय की कहानी प्रमुख है । "अनंतर" शीर्षक उपन्यास में इस शैली का सरल रूप दिखाई पड़ता है । कहने का मतलब यह हुआ कि आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग जैनेन्द्र ने बहुत ही सफलता के साथ किया है ।

आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए उपन्यासों केलिए यह ज़रूरी नहीं कि इसमें वे अपनी पूरी जीवनी प्रस्तुत करें । आधुनिक उपन्यासों के अधिकतर नायक "मैं" के रूप में आकर अपने जीवन की घटनाओं की झाँकियाँ दिखाकर कथा समाप्त कर देते हैं । इलाचन्द्र जोशी का जहाज का पंछी ऐसा एक उपन्यास है । इस उपन्यास में नायक "मैं" है । लगता है कि कथा कहनेवाला नायक न होकर स्वयं उपन्यासकार ही है । आत्मकथात्मक शैली का यह नवीन रूप ओजपूर्ण तथा प्रवाहमय है । "जिप्सी" में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । यह उपन्यासकार के दोस्त की आत्मकथा है । उपन्यास शुरू करने के पहले उपन्यासकार कहता है "उन के उस लंबे दास्तान को मैं भरसक उन्हीं के शब्दों में अगले परिच्छेदों में लिपिबद्ध कर रहा हूँ ।"[1]

1॰ इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ॰6

जोशीजी ने "कवि की प्रेयसी" शीर्षक उपन्यास संस्कृत कवि सौमिल्लक की आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया है । लेकिन "पर्दे की रानी" में आत्मकथात्मक शैली का सीमित रूप दिखाई पड़ता है । इस उपन्यास की प्रमुख पात्राएं शीला और निरंजना दो दो अध्यायों में अपनी अपनी कहानी सुनाती हैं ।

आत्मकथात्मक शैली में उपन्यासकार पाठक के साथ आत्मीयता स्थापित करता है । पाठकों को कथा सत्य प्रतीत होती है । इसलिए यह शैली पाठकों को अधिक प्रभावित करती है । लेकिन यह शैली सर्वश्रेष्ठ भी नहीं हैं । इस शैली के उपन्यासों में विषय-विस्तार की अपनी सीमा होती है । क्योंकि उपन्यासकार स्वयं कुछ कहे बिना पात्रों के मुख से सब कुछ कह डालते हैं । लेकिन इस शैली में लिखे गये उपन्यासों में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कुछ अपूर्णताएँ भी पायी जाती हैं । क्योंकि ये पात्र हर गौण पात्र के साथ हमेशा रह नहीं पाते ।

आत्मकथात्मक शैली का प्रौढतम रूप है स्मृतिपरक आत्म कथात्मक शैली । अज्ञेय के "शेखर : एक जीवनी" में प्रयुक्त यह शैली हिन्दी उपन्यास साहित्य में बेमिसाल की है । इस उपन्यास के प्रारंभ में ही नायक शेखर कहता है "मैं अपने जीवन का प्रत्यवलोकन कर रहा हूँ ... ।"[1] अपनी आत्मकथा की सच्चाई का प्रभाव डालने के लिए ही शेखर कहीं "झूठ मैं ने नहीं लिखा"[2] का विश्वास दिलाता है । कल्याणी, त्यागपत्र, शेखर : एक जीवनी, परख, व्यतीत, सुखदा, लज्जा, सन्यासी आदि उपन्यासों में आत्मकथात्मक और फ्लाशबैक शैली का समन्वित रूप मिलता है । अज्ञेय और जैनेन्द्र की अपेक्षा जोशी में फ्लैशबाक या पूर्वदीप्ति शैली का प्रभाव कम है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी (भाग-I) - पृ.15
2. वही - (भाग-II) - पृ.204

फ्लैशबाक या पूर्वदीप्ति शैली

घटनाओं की वर्णनात्मकता, एकरसता एवं नीरसता को तोडने के लिए यह शैली सक्षम है । फ्लैशबाक शैली उपन्यास की अपेक्षा सिनेमा में ज़्यादतर प्रयुक्त है । इस से पात्र की यादों को ताज़ा कर के उसके मनोभावों को सरलता के साथ दिखाया जा सकता है । उपन्यास में इस शैली का प्रयोग दो प्रकार से होता है । "एक तो पूर्ण रूप में, दूसरा आंशिक रूप में । पूर्ण रूप में शैली कथा के प्रारंभ में प्रस्तुत की जाती है और अन्त तक वह मूल कथा के विकास के साथ बनी रहती है । इस प्रकार के उपन्यासों में कथा के प्रारंभ में ही किसी पात्र की स्मृतियाँ अचानक जागृत हो उठती है और वह पात्र कुछ समय के लिए अतीत में खोने लगता है । शेखर : एक जीवनी, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, व्यतीत, लज्जा, सन्यासी आदि में इस शैली का प्रयोग हुआ है ।

"शेखर : एक जीवनी" उपन्यास का पहला शब्द "फाँसी" पढते ही पाठक एक विचित्र स्थिति में स्वयं को पाते हैं । नायक भी "फाँसी" की भयानकता से एक रात में अपने अतीत को दुबारा जी लेता है । अज्ञेय ने यहाँ पूर्वदीप्ति शैली का सुंदर प्रयोग किया है । उपन्यास के पहले भाग में शेखर कहता है "जैसे मोतियों की माला टूट गई हो और बिखरे मोतियों को फिर एक बेतरतीब लडी में पिरो दिया जाय, उसी तरह मेरी स्मृतियों की तरतीब उलझ सी गई है ।"[1] शेखर स्मृति की मोतियों को चुन चुन कर एक सुंदर उपन्यास के

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी भाग-1 - पृ.22

रूप में उन्हें पिरो लेता है ।

जैनेन्द्र के "कल्याणी" शीर्षक उपन्यास में एक गौण पात्र वकील साहब "हालहीकी तो बात है । ऐसा लगता है जैसे कल की हो - न सही कल की, पर दो ढाई बरस से अधिक नहीं हुए"[1] - ऐसा कहकर कल्याणी की कहानी सुनाता है । उपन्यास के अंत तक कहानी फ्लाशबैक शैली में ही चलती है । "सुखदा" की नायिका सुखदा रोगिणी बन कर अस्पताल में लेटते समय अपनी कहानी सुनाती है । अंत में सुखदा कहती है "मेरे कृपालु पाठक, माफ करना, कहानी बीच में ही छूट रही है । लेकिन देखते हो मैं कैसी अबस हूँ, अच्छा, हो तो याद रखना । विदा !"[2] इस तरह पूरा उपन्यास फ्लाश बैक शैली में ही लिखा गया है । जैनेन्द्र ने "त्यागपत्र" में "कल्याणी" की रचना शैली ही अपनायी । मृणाल की बुआ की मृत्यु के बाद उस की यादों में बुआ के दुरितपूर्ण जीवन-कथा स्पष्ट हो उठती है । कहानी समाप्त कर के मृणाल कहती है "बहुत हो गया । अब समाप्त करूँ । ज़िन्दगी कहानी है और बुआ की कहानी में भी अब सार नहीं बचा है ।"[3] "व्यतीत" शीर्षक उपन्यास में भी फ्लाशबैक शैली में कथा प्रस्तुत की गई है । पैंतालीसवीं वर्षगाँठ के दिन नायक जयंत बीते हुए दिनों की याद करता हूँ । जयंत के स्मृतिपट में उभरी प्रत्येक घटना से कथानक विकसित होता है । उदाहरण केलिए "कल की सी बात लगती है । मेरा इक्कीसवाँ वर्ष होगा । बी·ए· में पोज़ीशन आ गई थी और सब खुश थे । ऐसे ही में एकांत में खोजकर आई अन्नी फूलों की माला मेरे गले में डालकर बोली, "लाओ, मेरा इनाम लाओ ।"[4]

---

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी - पृ·11
2. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ·202
3. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र - पृ·87
4. जैनेन्द्रकुमार - व्यतीत - पृ·18

इसी तरह एक एक पात्र रंगमंच पर आकर कथा को आगे बढाती है ।

जोशीजी के "लज्जा" में आत्मकथात्मक और फ्लैशबैक दोनों शैलियों का प्रयोगहुआ है । "घृणा ! घृणा ! मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओतप्रोत है ।"[1] इस वाक्य के साथ लज्जा अपनी कहानी का ताला खोलती है । नायिका लज्जा अपने जीवन की सारी घटनाएँ याद कर के पाठकों को सुनाती है । कथा शुरू करने के पहले ही लज्जा पाठक से पूछती है "दुख की ज्वाला से तप्त और पाप की यातनाओं से उत्तेजित इस पापिनी की रामकहानी को धैर्यपूर्वक सुननेवाले सहृदय पाठक कितने मिलेंगे ?"[2] पाठक को अधिक निकट लाने के लिए और कहानी को ज़्यादा विश्वसनीय बनाने के लिए यह प्रयोग अधिक उपयुक्त निकला है । "सन्यासी" में नायक नंदकिशोर "आज एक एक कर के अपने जीवन की सभी पुरानी बातें याद आ रही है ।"[3] इस वाक्य से अपने विगत जीवन की कहानी शुरू करता है । यहाँ से नंदकिशोर जयंती और शांति के त्रिकोणात्मक संबंध की कहानी विकसित होती है । जोशीजी ने इस उपन्यास में फ्लैशबाक रचना विधान का प्रौढतम रूप दिखाया है । "जिप्सी" में लेखक का दोस्त अपने अतीत जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ उस को सुनाता है । वह मनिया की कहानी के रूप में विकसित होती है । कथा की समाप्त पर वह उससे कहता है "मैं ने आप को एक योग्य श्रोता पाकर मनिया से पहली बार मिलने से लेकर आज तक की अपनी कथा सुना डाली ।"[4]
"नदी के द्वीप" में अज्ञेय ने अधिकत: फ्लैशबाक शैली का ही प्रयोग किया है । इस में चार-पाँच सन्दर्भों में कुछ पात्रों ने स्मृतियों के ज़रिए अपने

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ·5
2. वही - पृ·6
3. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ·8
4. इलाचन्द्रजोशी - जिप्सी - पृ·624

अतीत जीवन के किसी न किसी खण्ड को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । उपन्यास का आरंभ नायक भुवन के प्रत्यवलोकन से है । इस में उस की स्मृति चन्द्रमाधव और रेखा के साथ बिताए गत सप्ताह के जीवन का अवलोकन कर लेती है । दूसरा प्रत्यवलोकन रेखा का है । रेखा और भुवन कुंदसिया बाग में सैर करते समय एक विशेष स्थान के दर्शन मात्र से सहसा रेखा अपने पूर्वपति हेमेन्द्र के साथ बिताए जीवन की स्मृतियों में डूब जाती है । रेखा भुवन से कहती है "अच्छा लीजिए, सुनिए, सुन लीजिए - हेमेन्द्र - हेमेन्द्र का नाम आप जानते हैं न, मेरा पति - अपने एक युवा बंधु को लेकर यहाँ आया था - यहाँ तारे को देखकर दोनों ने बफा की कसमें खायी थीं - हेमेन्द्र ने मुझे बताया था"[1] यहाँ अज्ञेय ने इस फ्लैशबैक द्वारा रेखा के अतीत जीवन को मुख्य कथा के साथ कुशलतापूर्वक जोड दिया है । एक और स्थान पर रेखा का प्रत्यवलोकन अधूरा रह जाता है । डा॰ भुवन के भीतर कौतुक प्रिय शिशु हृदय को देखकर रेखा के जीवन का पूर्ववृत्त संक्षेप में आ जाता है ।

श्रीनगर से पहलगाँव की यात्रा के पथ में भुवन अतीत की कुछ घटनाओं की याद करता है "ज्यों ज्यों बस आगे जाती थी, त्यों-त्यों भुवन का मन अधिकाधिक तीखे झटकों के साथ पीछे जाता था ।"[2] रेखा की कापी पढने पर उसके वाक्य और स्पष्ट होकर उस के आगे दौडने लगते हैं "एक के बाद एक पंक्ति, जैसे सिनेमा की पंक्तियाँ मानो बेलन पर चढ़ी हुई घूमती जाती हैं और एक एक पंक्ति आलोकित होती जाती है ।"[3] इस से भुवन की तत्कालीन मनोदशा पर प्रकाश पड़ता है । भीतर ही भीतर रेखा से उस की बढती हुई घनिष्टता भी स्पष्ट होने लगती है ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ॰112
2. वही - पृ॰137
3. वही - पृ॰139

फ्लैशबाक या पूर्वदीप्ति शैली अन्य शैलियों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है । क्योंकि यह अधिक प्रभावशाली तथा चमत्कारपूर्ण शैली है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इस शैली के उपासक ही है । डॉ॰ धनराजमानधाने के अनुसार "वर्तमान में चलती हुई कथा को झट से अतीत की ओर मोड कर तथा महत्वपूर्ण संदर्भों में उसे क्रमबद्ध कर, उपन्यासकार अपने शिल्प में पाठकों के लिए बडे आकर्षण का निर्माण करते हैं ।"[1] मानव मन की सूक्ष्माभिव्यक्ति के लिए यह शैली अधिक प्रभावशाली ही है । फिर भी इस शैली का आंशिक प्रयोग ही उपन्यास में उचित है । संपूर्ण रूप में फ्लाशबैक शैली का प्रयोग करें तो उपन्यास अस्वाभाविक बन जाएगा ।

डायरी शैली

व्यक्ति का वैयक्तिक दस्तावेज़ है डायरी । डायरी में निजी बातों का खुलासा है । यह शैली आत्मपरकता का ही एक प्रकार है । कुशल कलाकार इस शैली के ज़रिए पात्रों के बहाने अपनी अनुभूतियों एवं प्रतिक्रियाओं को पाठकों तक सफलतापूर्वक पहुँचाते हैं । इससे विषयवस्तु में रोचकता, संक्षिप्तता, स्पष्टता और सुसंगठितता आ जाती है । यह एक नवीन शैली है । इस में वर्णनात्मक शैली की सरलता एवं सुविधा नहीं है । इसलिए पूर्ववर्ती उपन्यासों में इस का विकास नहीं हो पाया । इस प्रकार के उपन्यासों की कथा एक व्यक्ति की डायरी हो सकती है या एक से अधिक व्यक्तियों की ।

व्यक्ति के आन्तरिक रहस्य तथा कुंठाग्रस्त मानसिकता की अभिव्यक्ति के लिए डायरी शैली बहुत सहायक है । इसलिए मनोवैज्ञानिक

---

1. डॉ॰ धनराजमानधाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - पृ॰422

उपन्यासों ने प्रथम पुरुष में उपन्यास के किसी पात्र की निजी डायरी के द्वारा कथा को प्रस्तुत करने के नए ढंग को स्वीकार किया है । इलाचन्द्रजोशी की "लज्जा" में एक स्थान पर डायरी शैली का प्रयोग हुआ है । उपन्यास की नायिका लज्जा डा॰कन्हैयालाल से प्रेम करती है । परिणामत: अपने भाई राजू के प्रति उसका स्नेह कम हो जाता है । फ्रॉयडीयन सिद्धांत के अनुसार राजू बहन के प्रेमी को प्रतियोगी समझता है । घृणा, निराशा, विषाद, प्रतिहिंसा जैसे भावों से पीड़ित होकर राजू आखिर गोली मारकार मृत्यु का वरण करता है । राजू की यह असंतुलित एवं विकृत मानसिक स्थिति उस की डायरी के पन्नों से लज्जा तथा पाठक जान लेते हैं । उस ने लिखा है "अपनी वैयक्तिक आत्मा के अनंत रहस्य की उलझन से ही मुझे छुटकारा नहीं मिलता । एक बिंदु आत्मा के भीतर अज्ञात अतृप्त आकांक्षाओं की कैसी कैसी भयंकर लहरें प्रबल वेग से प्रवाहित होती हुई, क्षुब्ध गर्जन से उद्दाम क्रीडा करती जाती हैं । प्रकृति की यह कैसी आश्चर्यमयी लीला है । घृणा, प्रेम, आनंद, विषाद, प्रतिहिंसा, करुणा, धैर्य और उत्तेजना का संघर्ष प्रतिक्षण कैसी विचित्रता के साथ मनुष्य के भीतर चला करता है । इन सब विकारों से मुक्त होने के लिए मैं दिन-रात छटपटाया करता हूँ । ..... ।"[1]

जैनेन्द्र का "जयवर्धन" डायरी शैली में लिखा गया "हिन्दी का पहला उपन्यास"[2] है । डा॰प्रेमभट्टनागर के शब्दों में "जयवर्धन हिन्दी का ही नहीं प्रत्युत भारतीय साहित्य का प्रथम उपन्यास है, जो डायरी शैली में वर्णनात्मक शिल्पविधि में कला कौशल ला सका है ।"[3] आत्मकथा की भावभूमि पर डायरी शैली में लिखे गए इस उपन्यास में

---

1. इलाचन्द्रजोशी - लज्जा - पृ॰15।
2. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास - पृ॰365
3. डा॰प्रेमभट्टनागर - हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य - पृ॰46

अमरिका से आए पत्रकार श्री·विल्वरहूस्टन की डायरी के पन्नों से कथावस्तु का विकास होता है । हूस्टन की डायरी के पन्नों में सामान्य वर्णन से अतिरिक्त जयवर्धन और आचार्य, जय और स्वामी, लिज़ा तथा इला तथा स्वामी, नाथ जय और एलिज़बेथ आदि को अलग अलग तथा एक साथ चित्रित किया गया है । हूस्टन की डायरी में 2। फरवरी से लेकर ।0 अप्रैल तक की घटनाओं का चित्रण है । इस अवधि के बीच भारतीय राजनीति का इतिहास तो इस में स्पष्ट हुआ ही है, साथ ही शासन के भविष्य की भी झाँकी प्रस्तुत की गई है । यह भी नहीं पात्रों के परस्पर संवाद के द्वारा अनेक बौद्धिक तथा दार्शनिक विचारों को भी व्यक्त किया है ।

डायरी शैली में लिखा गया उपन्यास है अज्ञेय का "अपने अपने अजनबी" । इस के प्रमुख पात्र है सेल्मा और योके । उनके चारित्रिक संघर्ष की कहानी है यह उपन्यास । योके की डायरी के ।5 दिसंबर से लेकर ।4 जनवरी तक के पन्नों से कथा विकसित होती है । 30 दिसंबर के पन्ने में योके ने लिखा "अब मुझ से और नहीं सहा जाता । सोचती हूँ कि यह कैसी परिस्थिति आ गयी है कि मुझे सब ओर बर्फ का भी ध्यान नहीं रहा है - कि मैं यह भी भूल गयी हूँ कि हम दोनों एक ही कब्र के साझीदार हैं । ... ।"[1] 3। दिसंबर का पन्ना यों शुरू होता है । "उस के सामने ही नहीं, अपने सामने भी कभी मेरा मन होता है कि चीख पड़ूँ, कि अपने बाल नोच लूँ, कि आईने के सामने खड़ी होकर अपने को मारूँ, छोटी कैंची उठाकर अपने गालों में चुभा लूँ ..... ।"[2] मृत्यु का साक्षात्कार करते हुए काठघर में दबी योके के मन में अपने को तथा सेल्मा को लेकर जो विचित्र

1· अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ·29

2· वही - पृ·31

विचार उठे हैं, उन का स्वाभाविक और प्रभावमयी अंकन डायरी शैली के माध्यम से हुआ है ।

पात्रों के सही चारित्रिक विश्लेषण के लिए यह शैली काफ़ी प्रभावशाली है । इस के प्रयोग में लेखक जितना तटस्थ रहेगा उतना उपन्यास सफल निकलेगा । पर यह मानना चाहिए कि डायरी शैली व्यक्ति की वैयक्तिक अनुभूतियों एवं संस्कारों से बंधी हुई है । अत: इस का क्षेत्र संकुचित होता है । लेकिन कथा के मुख्य पात्र के बहाने लेखक अपने ही दृष्टकोण को प्रस्तुत कर रहे हैं ।

उपन्यासकार अगर किसी पात्र की नियमित रूप से लिखी गई डायरी प्रस्तुत करें तो वह अरोचक एवं कृत्रिम या बनावटी बन जाएगी । अत: डायरी शैली में उपन्यास लिखते समय पात्र के अनियमित तथा चुने गए प्रसंगों पर लिखी हुई डायरी को ही प्रस्तूत करना प्रभावपूर्ण तथा स्वाभाविक होगा ।

पत्रात्मक शैली

पत्र आत्माभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष माध्यम है । इस को आत्मकथा का उपरूप भी मान सकते हैं । इस प्रकार लिखे गए उपन्यासों की कथा योजना का आधार विविध पात्रों द्वारा लिखे गये पत्र होते हैं । इस शैली में कथा अपने वास्तविक रूप में उभर कर आती है और अप्रासंगिक सन्दर्भों को स्थान भी नहीं मिलता । इसलिए पत्रात्मक शैली अधिक विश्वसनीय है । यह शैली हिन्दी के बहुत सारे उपन्यासों में आंशिक रूप में समादिष्ट है । लेकिन पूर्ण रूप से इस का प्रयोग कम उपन्यासों में ही हुआ है । आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के क्षेत्र में

इस शैली को विशेष स्थान है । यदि किसी विकृत मनस्थितिवाले पात्र का चित्रण करना है जो सिर्फ पत्र ही लिखता रहता है तो इस शैली के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है । कुछ ऐसी बातें होती हैं जो दूसरे के सामने कह पाना मुश्किल है उन्हें हम लिख देते हैं । ऐसे सन्दर्भों में पत्रात्मक शैली ही उचित है ।

पत्रात्मक शैली में लिखे गए उपन्यासों के लिए सुन्दर तथा प्रौढतम नमूना है अज्ञेय का "नदी के द्वरप" । इस की कथा रेखा, भुवन, गौरा और चन्द्रमाधव के द्वारा विकसित होती है । "नदी के द्वीप" के दो अंतराल उसके पात्रों के एक दूसरे को लिखे पत्रों के संकलन मात्र हैं । ये पत्र पाठकों को पत्र-रस प्रदान करने के साथ पात्रों की भावाभिव्यक्ति का माध्यम भी बनते हैं । भुवन, गौरा जैसे अंतर्मुखी पात्र पत्रों में ही अपने को पूर्णत: खोल देते हैं । पत्रों के आशय से ही नहीं पत्रों के प्रारंभिक संबोधन तथा पत्रांत के स्वरूप से भी पात्रों के मनोभावों को जान सकते हैं । इस उपन्यास के आरंभ से अंत तक गौरा द्वारा भुवन को लिखे पत्र हैं । इन के ज़रिए उन के बीच धीरे धीरे विकसित होकर चरमस्थिति को पाने वाले प्रेम का सुन्दर चित्र भी स्पष्ट हो उठा है । यह संबंध आप की गौरा"[1] एवं "आप की कृतज्ञ गौरा"[2] से लेकर "आप की गौरा"[3] तथा "आप ही की गौरा"[4] तक पहुंच जाता है ।

अज्ञेय के पात्र पत्रों के ज़रिए स्वयं को तथा औरों को भी अभिव्यक्त करते हैं । पात्रों के आत्मगत तथा बाह्यगत सत्य का

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.72
2. वही - पृ.77
3. वही - पृ.267
4. वही - पृ.283

उद्घाटन हो जाता है । उदाहरण के लिए भुवन द्वारा गौरा को लिखे पत्र के कुछ अंश देखिए "चन्द्रमाधव के यहाँ एक और रिमार्कबल व्यक्ति से परिचय हुआ - एक श्रीमती रेखा देवी से । तुम उन्हें देखती तो अवश्य प्रभावित होती एक स्वाधीन व्यक्ति, जिस का व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज तेज़ से नहीं, दु:ख की आँच से निखरा है । दु:ख तोड़ता भी है, पर जब नहीं तोड़ता या तोड़ पाता, तत्व व्यक्ति को मुक्त करता है । ऐसा ही कुछ मुझे उन में लगा । .... ।"[1] यहाँ भुवन रेखा के संबंध में अपना मत खुलकर गौरा को लिखता है । अज्ञेय के इस प्रयोग के बारे में डा॰ धनराज मानधाने का कहना है "इस शैली द्वारा अज्ञेयजी कथानक की स्थूल कड़ियाँ मिलने का अधिकांश भार पाठकों पर डालकर स्थूल वर्णनात्मकता से बच निकलते हैं । इतना ही नहीं लेखक ने मित-व्ययता, घनता, वक्रता, निपुणता, भावमयता तथा सजीवता की सिद्धि इसी शैली द्वारा प्राप्त की है ।"[2]

जैनेन्द्र के "सुखदा" की नायिका सुखदा अपने पति के सामने क्रांतिकारी लाल का पत्र पढ़ती है । उस समय सुखदा की चमकती आँखों से और खिले हुए मुख से उस के पति के साथ पाठक भी समझ लेते हैं कि उस के मन में लाल के प्रति प्रेम और आकर्षण है । इस प्रकार पत्रात्मक शैली प्रभावपूर्ण निकलती है ।

मन की बातों को प्रकट करने केलिए पत्र के अलावा कोई दूसरा उत्तम तथा उचित माध्यम नहीं है । "अन्तर" उपन्यास में अपरा द्वारा प्रसाद को लिखे पत्र से चार्ली के साथ के उस के जीवन तथा बाद की तलाक की सही जानकारी मिल जाती है ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ॰90
2. डा॰ धनराजमानधाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - पृ॰420

वही अपरा आदित्य के साथ के उस के प्रेम के बारे में चारू से पत्र द्वारा खुलकर कहने का साहस दिखाती है "···· चारू, बुरा न मानना अगर कहूँ कि तुम्हारे आदित्य को मैं प्यार करती हूँ ।···· ।" इस प्रकार पत्रात्मक शैली उपन्यास के कथा-विकास के लिए उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होती है ।

लेकिन इस की कुछ कमियाँ भी हैं । इस में पात्रों का पूर्ण विकास, घटनाओं का समग्र वर्णन, अज्ञात तत्वों का विश्लेषण आदि आसान नहीं हो पाते । वातावरण सृष्टि भी कठिन काम है । इस शैली में एक ही घटना पर विभिन्न पात्रों द्वारा विभिन्न दृष्टकोण प्रस्तुत करने से कथानक के उचित विकास में बाधा उत्पन्न होती है । इसलिए पाठकों को कथा के प्रति जिज्ञासा भी नष्ट हो जाती है । इस शैली में सारी कहानी कुछ पात्रों द्वारा बताई जाती है, जिस में भिन्न भिन्न दृष्टकोण तो मिल सकते हैं, किंतु कथा की एकसूत्रात्मकता की रक्षा संभव नहीं हो पाती । इसलिए उपन्यासों में पत्रात्मक शैली का आंशिक प्रयोग ही समीचीन और प्रभावशाली होगा ।

चेतनाप्रवाह शैली

1890 में प्रसिद्ध दार्शनिक विलियम जेम्स के "दि प्रिन्सिपिल्स आफ साइकोलजी" के प्रकाशन के साथ "चेतनाप्रवाह शब्द" लोकप्रिय बन गया । उपन्यास के क्षेत्र में चेतना प्रवाह शैली का विकास मनोविज्ञान के प्रभाव से ही हुआ । इस शैली का सब से पहला प्रयोग पाश्चात्य उपन्यासकार मिस·डोरोथी रिचर्डसन ने अपने उपन्यासों में किया ।

1· जैनेन्द्र कुमार - अनंतर - पृ·138

व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं बाह्य परिस्थितियों को प्रभावित करनेवाली असंबद्ध भावना एं तथा चेतनाएं एक निरंतर प्रवाह रूप में मनुष्य के मन में सदा बहती रहती हैं । इन को बिना किसी परिवर्तन के ज्यों का त्यों उतरना ही चेतना प्रवाह शैली का उद्देश्य है । इसलिए इस शैली का प्रयोग मुख्यत: मनोविश्लेषणात्मक तथा आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए उपन्यासों में होता है । चेतना प्रवाह शैली मे लिखे गए उपन्यासों में मानसिक क्रिया-कलाप का चित्रण साधन के रूप में न होकर महत्वपूर्ण साध्य के रूप में हुआ है । लेकिन यह मानसिक विश्लेषण भी नहीं है । विश्लेषणात्मक शैली की तरह चेतनाप्रवाह शैली में लेखकीय हस्तक्षेप नहीं है । इस में हम स्वयं अपनी आंखों से पात्र के मन में होनेवाली घटनाओं को उस की चेतना के प्रवाह को देख लेते हैं ।

चेतनाप्रवाह शैली पूर्वदीप्ति शैली का विकसित रूप है । पूर्वदीप्ति में उपन्यासकार चरित्र से संबंधित उन घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं जिन के बारे में वह संदर्भ-विशेष या घटना-विशेष के कारण सोचने लग जाता है । प्रत्येक पूर्वदीप्ति चेतनाप्रवाह हो या प्रत्येक चेतना प्रवाह पूर्वदीप्ति हो यह आवश्यक नहीं । चेतनाप्रवाह में भविष्य संबंधी कल्पनाएँ, अनुमान, विगत की स्मृतियाँ, वर्तमान की चिंताएं आदि एक साथ चलती हैं । पूर्वदीप्ति में चिंतन का एक क्रम है । लेकिन चेतनाप्रवाह में वह क्रम नहीं है । चेतनाप्रवाह में लेखक के लिए भूतकाल नहीं सिर्फ विकासमान वर्तमान ही होता है ।

जैनेन्द्र के "त्यागपत्र" में चेतना प्रवाह शैली का हल्का सा स्पर्श हुआ है । मृणाल के बारे में ज़्यादा कुछ कहने के उपरान्त अचानक प्रमोद की चिंताएं बिखर जाती हैं । उस के मन में लहराते सागर का चित्र है । प्रमोद की बुआ मृणाल समुद्र की गहराइयों की ओर उतर

जाती है । प्रमोद में उसे बचाने की तीव्र इच्छा है । इसलिए वह बुआ केलिए रस्सी फेंकता है। लेकिन मृणाल उसको पकड़ना नहीं चाहती । वह समुद्र में विलीन हो जाने के लिए आगे बढ़ती है । यहाँ प्रमोद की विचित्र भावनाएं उस के अचेतन के आत्मीय भावों से संबंधित हैं । प्रमोद के मन में एक ओर उस के प्रति प्रेम तथा उसे बचाने की प्रबल इच्छा है तो दूसरी ओर सामाजिक मान्यताओं की जटिलता से उत्पन्न निस्सहायता है । ऐसी स्थिति में उसके मन में विचित्र विचारों का प्रवाह शुरू होता है ।

पूर्णत: चेतना प्रवाह पद्धति में लिखे गये उपन्यासों में एक या एकाधिक पात्रों की चेतना को केन्द्र बनाकर कथा उस के चारों ओर घूमती रहती है । उदाहरण के लिए अज्ञेय के "शेखर : एक जीवनी" में शेखर की चेतना का चित्रण एक आधार फलक के रूप में होता है । उपन्यास के प्रवेश खंड में फाँसी की कोठरी में बैठा हुआ शेखर अपने विचार प्रवाह द्वारा अतीत की स्मृतियों में खो जाता है । विगत जीवन के सूत्र उस की चेतना-तरंगों में तरंगायित होते हैं । फाँसी के औचित्य-अनौचित्य सम्मोहन एवं मृत्यु की सिद्धि संबंधी विचारो ' का प्रवाह इस तथ्य का द्योतक है कि यह उस के जीवन का अन्तिम पड़ाव है । "फाँसी, क्यों ? अपराधी को दण्ड देने के लिए । पर इससे क्या वह सुधर जाएगा ? + + +, इस से भी कभी कोई सीखा है ..... मुझे तो फाँसी की कल्पना सदा मुग्ध ही करती रही है - उस में साँप की आँखों - सा एक अत्यंत तुषारमय, किंतु अमोघ सम्मोहन होता है ..... एक सम्मोहन, एक निमंत्रण, जो कि प्रतिहिंसा के इस यंत्र को भी कवितामय बना देता है, जो कि उस पर बलिदान होते हुए अभागे - या अतिशय भाग्यशाली ! को जीवन की एक सिद्धि दे देता है, और उस के असमय अवसान को भी संपूर्ण कर देता है .....

फांसी !

यौवन के ज्वार में समुद्र-शोषण । सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुन्तल । शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला बरसाती बादल । इस विरोध में, अवानक खंडन में निहित अपूर्व भैरव कविता ही में इस की सिद्धि है ....

सिद्धि कैसी - काहे की ? मेरी मृत्यु की क्या सिद्धि होगी-मेरे जीवन की क्या थी ?" प्रस्तुत चेतना प्रवाहात्मक अंश में उपन्यास का एक प्रमुख कथा-सूत्र पाठक के सामने उभरता है । लेकिन फांसी का कारण या उससे संबंधित अन्य घटनाओं का विवरण उपन्यासकार नहीं देता । सिर्फ इतना ही स्पष्ट है कि फांसी की सजा की चोट से उस का मन दीप्त हो उठता है और वह अपने विचार प्रवाह में बह जाता है । उपन्यास भर इस तरह के विचार प्रवाह के कारण कथावस्तु सुगठित और क्रमबद्ध नहीं है ।

शेखर के जीवन का पहला प्रेरणा स्रोत शशी के बारे में पाठक उस के चेतना प्रवाह से ही समझ लेते हैं "तुम जीवित नहीं हो । मेरे शेखर के बनने में ही तुम टूट गयी हो - शायद स्वयं शेखर के हाथों ही टूट गयी हो । और मैं अपने मन में बार-बार यह दुहराकर भी कि "शशि नहीं है, शशि मर गई है, शशि नहीं है, यह समझ नहीं पाता कि क्या हुआ - अपनी क्षति का कोई अनुभव नहीं लगा सकता, कोई अनुभव नहीं कर पाता । क्यों ? क्यों ..... तेज़ तलवार कैसे यह जान पाए कि सान अब टूट गई है, जब तक कि वह स्वयं भोंडी न हो जाय, या टूट न जाय .... और मैं अभी जीता हूँ । अभी जल रहा हूँ, अभी "हूँ" - पर, तब मैं क्यों कहूँ कि तुम नहीं हो ? जो सान

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ.15

तलवार को बनाती है, वह तब तक नहीं टूटती, जब तक कि तलवार नहीं टूटती । मुझे मरना है, फांसी पर झूलकर मरना है, पर अभी मैं जीता हूँ ।"[1]

प्रस्तुत भाग से बंदी शेखर के जीवन में शशि की भूमिका स्पष्ट हो जाती है । साथ ही यह भी पता चलता है कि वह अब नहीं है और शेखर अब भी जीवित है जिसे फांसी पर झूलकर मरना है । विचार प्रवाह में बहते शेखर की भावधारा में सुदूर बचपन की एक घटना उभर आती है । "बजरे का मानसबल, झील में प्रवेश, झील की निर्मलता द्वारा आकाश की अभ्रता का प्रतिबिंब होना, झील के अन्दर उगती हुई लंबी घास द्वारा सूर्य की ज्योति को प्रतिबिंबित कर अनेक रंग प्रदान करना, बालक द्वारा फूल तोड, माला तैयार कर बहन को पहनाना, बहन का गाना, कोमल स्पर्श से बहन के कपोल छूना, बहन का लजाना ।"[2]

लेकिन शेखर के विचार प्रवाह में स्मृतियाँ काल-क्रमानुसार नहीं आतीं । इसलिए उपन्यास के कथा सूत्र में परंपरागत क्रमबद्धता और सामंजस्यता नहीं है । इस उपन्यास के दूसरे भाग में बन्दी शेखर के चेतना-प्रवाह द्वारा कुछ कथा सूत्र विवृत होते हैं, परंतु ये प्रत्यक्ष अन्तरंग एकालाप की अपेक्षा परोक्ष एकालाप के माध्यम से पाठक के समक्ष उभर आते हैं । उदाहरण केलिए सप्तपर्णी की छाँह में बिताई पुनीत रात्रि के बाद के भोर को शेखर राशि से गाने का आग्रह करता है । शशि के गाने को सुनते हुए और उस सधी हुई पीठ के तरंगायित आरोह अवरोह को देखते हुए शेखर का मन बहुत दूर चला जाता है "कितनी दूर लगता था वह समय, जब वह छिपकर, शशि की उत्फुल्ल गीत लहरी सुनने का यत्न

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ. 15 (I)
2. वही - पृ.21

किया करता था, जब वह स्तब्ध होकर उस का गाना सुना करता था, उसी से नहीं शशि से भी कितनी दूर ..... तब वह सुखी थी .... उस रंध्रहीन सुख से सुखी जो स्वयं अपने अस्तित्व को नहीं जानता, और आज वह जानती है कि सुख में भी वह सुखी नहीं है केवल संतुष्ट है + + + उसे याद आया कि रात ही एक अजनबी स्त्री द्वारा बचा लिए जाने पर वह झल्लाया था और सोचते हुए लौटा था कि किसी को क्या ..... किसी को क्या ..... आज ..... आज किसी को कुछ है ..... और वह जानता था कि किसी को कुछ ..... तब जो कल वह करने जा रहा था, क्या उस का उचित समय आज नहीं है - इस क्षण नहीं है ? सिद्धि और संतोष के दिए हुए और पाए हुए सुख में बुझ जाना कितनी बडी सिद्धि ..... अगर वह चुपचाप खिसक जाए, कानों में शशि के गाने की चिरंतन गूंज लेकर लुप्त हो जाए ।"[1] यहाँ शशि का गीत सुनते ही शेखर का विचार प्रवाह काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ अतीत की एक घटना की ओर उन्मुख हो उठता है ।

अज्ञेय के "नदी के द्वीप" में भी चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग हुआ है । इस में रेखा और भुवन एक बार यमुना के किनारे घूमने जाते हैं और वहीं भुवन बालू का घर बनाने बैठ जाता है । पैर पर बालू थोपकर घरौंदा बनानेवाले डाक्टर भुवन की आंतरिक सरलता रेखा को छू लेती है और वह उसे अपने शैशव के क्रीडा-स्थल की याद दिला देती है "रेखा मुग्ध दृष्टि से देख रही थी । सचमुच इस भुवन को उस ने देखा नहीं था, जाना नहीं था अनुमान से भी नहीं । वैज्ञानिक डाक्टर भुवन के अंदर एक गंभीर, संवेदनशील और खरा मानव छिपा है यह तो उसने जाना था लेकिन उस निश्चल ऋजुता के नीचे इतना भोला, इतना

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी - पृ.32

कौतुक प्रिय शिशु हृदय भी है, यह उसकी सजग दृष्टि भी न देख पाई थी ····· उसे अपना बचपन याद आया । कलकत्ते के उस घिरे हुए हरे-भरे उद्यान में खेलते हुए उसने माता-पिता का स्नेह पाया था, अगाध स्नेह और ····· बड़ों के स्नेह से घिरी हुई यह अकेली ही रह गई थी ····· पर बचपन में अगर उसे दो-एक वर्ष ही ऐसा कोई बाल साथी मिल गया होता - तो कम से कम आज उस के पीछे ऐसा कुछ नहीं होता जिस में वह संपूर्णता देख सकती अपने जीवन की निष्पत्ति देख सकती ····· और भुवन डाक्टरेट कर चुका है, वैज्ञानिक रिसर्च में नाम पर रहा है, वय में उस से बड़ा है, और यहाँ बैठकर बालू के घर बना रहा है और मुग्ध हो सकता है ····· ।"[1]

रेखा के प्रस्तुत चेतना-प्रवाह से ही डॉ॰ भुवन के सरल, कौतुक प्रिय, ऋजु और खरा मानवीय व्यक्तित्व पाठक के समक्ष स्पष्ट हो उठता है ।

एक बार रेखा, भुवन और चन्द्रमाधव एकसाथ बैठकर बातें करते समय भुवन रेखा के विचार-प्रवाह में डूब जाता है "मन ही मन उस ने सहमत होते हुए कहा "पीटर चेनी के लायक तो कदापि नहीं । पर किस के ? हाडों के ? हाँ, ऐसी कठपुतली पाकर भाग्य भी अपना भाग्य सराहेगा । पर रेखा उतनी भोली नहीं है : उस में एक बुनियादी दृढ़ता है जो - दोस्तोव्स्की ? लेकिन क्या उस की चेतना वैसी विभाजित है - क्या उस में वह अतिमानवी तर्क-संगति है जो दास्तव में पागलपन का ही एक रूप है ? प्राचीन ग्रीक ट्रैजेडीकार - एक बनाम समूचा देव वर्ग - लेकिन रेखा में उतना अहं क्या है कि देवता उसे चुने - कि वह चुनी जाकर कष्ट पावें ? तब सार्त्र क्षण की अस्मिता, यातना के

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ॰2।

क्षण की असीमिता - निस्सन्देह असीम सहिष्णुता उस में है - व्यथा पाने की असीम अन्त:सामर्थ्य, लेकिन वह इसलिए कि आनन्द की असीम क्षमता उसी में है - आनंद की परासीमा, यातना की परासीमा - चुन सकते हैं उसे देवता, क्योंकि परासीमाएं उस में सोती हैं, नभकांक्षी मानव, मृतत्कामी देवता - ट्रेजेडी के सहजयान - इकसार के "पंख, प्रमथ्यु की आग ..... ग्रीक ट्रेजेडी केवल अहं की ट्रेजेडी तो नहीं है, वह मानव की संभावनाओं की ट्रेजेडी है ।"[1]

भुवन के प्रस्तुत चेतना-प्रवाह से स्पष्ट हो जाता है कि रेखा के व्यक्तित्व से अनजाने ही वह कितना प्रभावित हो गया है । चेतना प्रवाह के उपन्यासों में इस तरह का एकालाप साधारण है । पात्र की तत्कालीन मन:स्थिति प्रकट करने के लिए या एक पात्र के प्रति दूसरे पात्र की भावनाओं के उद्घाटन केलिए चेतना प्रवाह उपन्यासों में एकालाप उचित तथा प्रभावपूर्ण तकनीक है ।

नौकुछिया में समर्पण के भाव से भरी हुई रेखा जब भुवन के पास आती है तब उस की मनोजगत की अभिव्यक्त परोक्ष अंतरंग एकालाप द्वारा होती है । भुवन का चित्त उद्वेलित है कि कहीं सुंदर के प्रति उस के इस भय को रेखा इनकार न समझ ले, "लेकिन प्रत्याख्यान की बात वह क्यों सोचता है ? केवल सुंदर, सुन्दर से सुन्दरता वह चाहता है, और लोभ से सुंदर को जोखम में नहीं डालना चाहता .....सहसा रेखा के प्रति एक गहरे कृतज्ञ भाव ने उसे द्रवित कर दिया, कैसे यह स्त्री सब कुछ इस तरह उत्सर्ग कर सकती है, बिना कुछ प्रतिदान मांगे बिना कुछ सूक्षा चाहे ..... क्योंकि वह भुवन को प्यार करती है, उसे कुछ देना

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.25

चाहती है ? कुछ नहीं, सब कुछ अपना आप । ..... क्यों वह रेखा की ओर से सोच रहा है, क्यों नहीं अपनी ओर से सोचता ? वह - वह क्या चाहता है, क्या देना चाहता है, क्या वह रेखा को चाहता है ? प्यार करता है ?"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में भुवन के व्यक्तित्व की गहराई उभर कर सामने आती है । रेखा के उत्सर्ग एवं समर्पण के भाव ने उसे कृतज्ञता से द्रवित कर दिया है । वह सोचता है कि क्यों उसने रेखा के उन्मुक्त समर्पण को सहज भाव से स्वीकार नहीं पाया ? क्या वह उससे प्यार नहीं करता । इस तरह उपन्यास के अंत तक कहीं कहीं उपन्यासकार अप्रत्यक्ष रहता है । और कहानी पात्रों के चेतना-प्रवाह से विकसित होती है । लज्जा, सन्यासी, सुखदा, व्यतीत, जयवर्धन आदि उपन्यासों में भी चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग हुआ है ।

आधुनिक उपन्यासकार उपन्यास को अधिक यथार्थोन्मुख बनाने के लिए और मानव जीवन की सूक्ष्मता को पूर्ण रूप में ध्वनित करने के लिए नयी नयी शिल्पविधियों का प्रयोग करते हैं । इसका सफल परिणाम है चेतना-प्रवाह शैली । उपन्यास में यह शैली मनुष्य के आभ्यंतर का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है ।

इस शैली में लिखे गये उपन्यासों का विषय अचेतन के निकटतम आत्मीय भावों से संबद्ध होता है । पाठक को पात्र से अपूर्व आत्मीयता एवं गहन संबंध स्थापित करने में सफलता मिलती है ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ·38

चेतना प्रवाह शैली में उपन्यासकार भावों को उसी क्रम और रूप में उपस्थित करता है, जिस क्रम में वे मन में अंकुरित होते हैं । इन उपन्यासों के वाक्य छोटे छोटे होते हैं और भाषा अधिक काव्यमय होती है ।

विश्लेषणात्मक शैली

मनोवैज्ञानिकता युक्त विश्लेषणात्मक शैली प्रेमचंद युग से ही प्रचलित थी । लेकिन इस में सैद्धांतिक मनोविज्ञान नहीं है । प्रेमचंदोत्तर काल में इस का विकास अद्भुत ढंग से हुआ । हिन्दी के अधिकांश मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है । इन उपन्यासों में परिस्थिति एवं पात्र की मनोदशा का संक्षिप्त विवरण देकर उन की व्याख्या की जाती है । यह व्याख्या कभी स्वयं पात्र करता है और कभी लेखक ।

विश्लेषणात्मक शैली में लिखे गए उपन्यासों में बौद्धिक या शिक्षित पात्रों का समावेश अधिक होता है । कभी कभी विचारों का खोखलापन दिखाने केलिए उपन्यासकार दुर्बल चरित्रवाले और विकृत मस्तिष्कवाले पात्रों को भी चुन लेता है । इलाचन्द्रजोशी के उपन्यासों में इस तरह के पात्र अधिक मिलते हैं ।

साधारण बातों पर भी जैनेन्द्र के पात्र महान दार्शनिक की तरह अपने विचार प्रस्तुत करते हैं । "सुनीता" में "राजा रानी मीरा" पर टिप्पणि करते हुए सुनीता कहती है - "अलौकिक ही कुछ हो सकता है, जो अलौकिक का आधिपत्य अस्वीकार कर दे ।

बुद्धि अतीत जो है, उसे चलने के लिए बुद्धि के पैर और तर्क के स्टेप्स नहीं काम देंगे । इस से मैं सहमत हूँ कि लौकिक तो अलौकिक का बहिष्कार ही करे । पर अलौकिक इस से असत् न हो जाएगा । मीरा दस-बीस नहीं हुई हैं, इस से लौकिक को निश्चिन्त रहना चाहिए कि अलौकिक की लौकिक पर हावी होने की स्कीम नहीं है । मैं समझती हूँ, लौकिक के दिशा दर्शन, मार्ग-दर्शन के हेतु से अलौकिक यदा-कदा घटित होता है । बहिष्कृत तो उसे करना ही होगा, पर उस से चेतावनी भी लेनी होगी ।"[1]

"सुखदा" में रोगिणी सुखदा की मनःस्थिति का विश्लेषण जैनेन्द्र यों करते हैं "जान गई हूँ कि मैं धीरे धीरे किनारे लग रही हूँ । किनारे के आगे क्या है, पार क्या है ? कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है । अनुमान इतने हैं जितनी बुद्धियाँ हैं । पर इस में अनुमान भर हैं । झूठ किस को कहूँ, सच किस को कहूँ ? पर इस में झूठ नहीं हो सकता कि उस किनारे पर होने की समाप्ति नहीं है । समाप्त हम हों तो हों, दिशाएँ कहीं समाप्त नहीं हैं । मृत्यु के बाद भी अस्ति है, बाद भी गति है । जीवन निरंतर परिभ्रमण है । कर्म फल योग की परंपरा में आदि नहीं, अन्त नहीं, मध्य ही है । पर नहीं और बात नहीं सोचूँगी । मुझे ख्याल रखना चाहिए कि मेरा ख्याल खराब है । ..... ।"[2] यहाँ सुखदा अपनी रोगिणी अवस्था के अनुरूप मृत्यु का विश्लेषण करती है ।

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता - पृ.165
2. जैनेन्द्रकुमार - सुखदा - पृ.199

जैनेन्द्र की विश्लेषणात्मक शैली में दार्शनिकता अधिक है तो अज्ञेय की विश्लेषणात्मक शैली में बौद्धिकता । मृत्यु के विषय में अज्ञेय की विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग "अपने अपने अजनबी" में मिलता है । "मुझे इतना अकेला कर ····· अकेला होना - मृत्यु के साथ अकेला होना - मृत्यु के सम्मुख अकेला होना- मृत्यु में अकेला होना । इस चरम अकेलापन और स्वयं मृत्यु में क्या अंतर है ? क्या हुआ अगर ईश्वर चोरी से देख रहा है, उस अकेली मृत्यु को - क्या ईश्वर भी मरा हुआ नहीं है ?"[1]

शेखर : एक जीवनी और नदी के द्वीप में भी विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग विद्यमान है । अज्ञेय ने "नदी के द्वीप" में अपने पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति करने के लिए (पृष्ठ 314) इस शैली को अपनाया है । मनोविज्ञान के व्यावहारिक रूप को प्रधानता देने के कारण अज्ञेय की विश्लेषणात्मक शैली पाठकों में नीरसता उत्पन्न नहीं करती ।

लेकिन जोशीजी की विश्लेषणात्मक शैली में सजीवता नहीं है । क्योंकि उन्होंने व्यक्ति की मानसिक ग्रंथियों एवं कुंठाओं का विश्लेषण मनोविज्ञान के सैद्धांतिक धरातल पर किया है । यहाँ व्यावहारिक पक्ष फीका है ।

"प्रेत और छाया" की मंजरी के सम्मुख पारसनाथ जब अपने किये काले करतूतों की सफाई देने लगता है तब मंजरी ने जिन शब्दों में उसे फटकारा था उस को जोशीजी ने (पृष्ठ 406) विश्लेषणात्मक शैली द्वारा प्रस्तुत किया है । "भूत का भविष्य" में जोशी नन्दा के मन की उलझनों को बडी जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया है ।

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.165

"सन्यासी" के आरंभ में नायक का मानसिक विश्लेषण स्वयं उसी के शब्दों में यों प्रस्तुत किया है "मैं ने सन्यासी का वेश धारण किया है, संदेह नहीं। पर सन्यासी मैं न कभी था और न हूँ। तब दुनिया को और अपने आप को क्यों मैं ने ठगा है ? जीवन के अनेक कडवे अनुभव भी हुए, देश-सेवा भी की और जेल भी गया। पर फिर भी इस सूखे हृदय में इस समय भी जब दो-चार बूंदें आंसू की किसी समय पड जाती हैं, तो इस में तत्काल हरियाली छाने लग जाती है। यह क्यों ? मैं चाहता हूँ कि शुष्क बालू की तरह इस हृदय का कण कण, जर्रा-जर्रा निखिल शून्य में बिखर जाय, राख की तरह यह जड और निर्जीव बन जाय, पर - उफ़ ! अनन्तकाल तक सुख-दुख की अनुभूति का यह निष्ठुर चक्र मेरा पीछा नहीं छोड़ने का।"[1] प्रस्तुत विश्लेषण में उपन्यासकार लुप्त हो जाता है। इसलिए पाठक पात्रों के साथ अधिक आत्मीय बन सकते हैं। "पर्दे की रानी" में भी नायिका स्वयं अपने चेतन एवं अचेतन की व्याख्या करती है। इसकी निरंजना एक विशेष प्रकार की मनोग्रंथि के कारण अपने सौन्दर्य तथा सम्मोहन शक्ति के द्वारा पुरुष को विनाश के गर्त में ढकेल देती है और नारी जाति को प्रतिहिंसा की लपेट में ले लेती है। अपनी सखी शीला की हत्या के पीछे वही क्रियाशील रही है। अपने प्रेमी इन्द्रमोहन को ट्रेन से कूद कर आत्महत्या करने के लिए वही बाध्य करती है। इन समस्त घटनाओं का उद्देश्य पात्र की कुंठाग्रस्त मनोवृत्ति को विश्लेषित करना है। अचेतन मन की चीर-फाड जोशी के उपन्यासों को अधिक मनोविश्लेषणात्मक बना देती है।

इन सारी शैलियों के अलावा परंपरागत एवं बहु प्रचलित वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में देख सकते हैं। विश्व की अधिकतर भाषाओं में बहुत सारे उपन्यास इस शैली में लिखे

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सन्यासी - पृ.7-8

गए हैं । वर्णनात्मक शैली के उपन्यासों में वर्णन की पद्धति सीधी भी हो सकती है और विवरणात्मक भी । आलोच्य उपन्यासों में विवरणात्मक शैली ही द्रष्टव्य है । विवरणात्मक वर्णन में उपन्यास के सभी प्रसंगों, कथ्यों तथा विचारों को प्रस्तुत कर के विस्तार से उन के पपर्त दर पर्त खोल सकते हैं । "नदी के द्वीप", "प्रेत और छाया", "पर्दे की रानी" आदि उपन्यासों में विवरणात्मक वर्णन शैली का प्रयोग हुआ है ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि शैली उपन्यास की सफलता के निर्णायक तत्वों में से हैं । क्योंकि उपन्यास को सरसता, रोचकता एवं भावुकता युक्त बनाने केलिए उचित शैली अनिवार्य है । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में शैली का महत्वपूर्ण स्थान है । इस के बहुमुखी प्रयोगों के बीज जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में द्रष्टव्य हैं ।

जैनेन्द्रकुमार ने ही सर्वप्रथम औपन्यासिक शिल्प में परिवर्तन किया था । शिल्प के परंपरागत तत्वों को उन्होंने पूर्णत: ग्रहण नहीं किया। चरित्र ही उन के उपन्यासों में प्रमुख हैं । उपन्यास के प्रचलित रूप को उन्होंने बदल दिया । उपन्यास का "मैं" स्वयं की कथा न कहकर अन्य व्यक्ति की कथा प्रस्तुत करने लगा । फलत: उस का प्रस्तुतीकरण शिल्प या शैली सहज, स्वाभाविक तथा विश्वसनीय बन गयी ।

प्रत्यावलोकन शैली या पूर्वदीप्ति शैली में रचित "शेखर : एक जीवनी" के द्वारा अज्ञेय ने प्रस्तुतीकरण शिल्प में ज़ादूगरी की । "नदी के द्वीप" का प्रस्तुतीकरण शिल्प भी नवीन है । अज्ञेय ने "अपने अपने अजनबी" में डायरी शैली का प्रयोग कर के उपन्यास को अधिक आकर्षक बनाया ।

इलाचन्द्रजोशी ने विश्लेषणात्मक शैली का पूरा लाभ उठाया । प्रस्तुतीकरण शिल्प की दृष्टि से "पर्दे की रानी" एक सफल उपन्यास है । आत्मकथात्मक शैली का एक नवीन रूप इस में मिलता है । शैली-मोह के कारण जोशी के उपन्यासों की कथा पाठकों केलिए जटिल तथा ऊबानेवाली लगती है ।

आज के उपन्यास विषय की अपेक्षा शैली पर अधिक ज़ोर देनेवाले हैं । इस शैली वैचित्र्य के नवीन रूप मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सब से पहले परिलक्षित होने लगे हैं । हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की शैलियाँ अपने आप में नवीन एवं प्रासंगिक हैं ।

●●●●●●●●●●●●●●●

उ प सं हा र

जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के उपन्यासों के शैल्पिक अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि इन की कथा-शिल्प अधिक सूक्ष्म एवं विश्रृंखलित है । क्योंकि ये व्यक्ति के अन्तर्मन के सूक्ष्म भावों का चित्रण करते हैं । पात्रों की विशिष्ट मनोवृत्तियों के विश्लेषण द्वारा व्यक्ति को पहचानने का प्रयास इन उपन्यासों को व्यक्तिकेन्द्रित बनाता है । घटनाओं की अपेक्षा व्यक्ति को प्रधानता देने के कारण इन उपन्यासों की कथा में आदि मध्यांत की क्रमबद्धता नहीं होती । इन के कथा शिल्प में अन्यपुरुष प्रतिपादन गौण पात्रों द्वारा प्रस्तुत कथा शिल्प, आत्मकथात्मक कथा शिल्प, दृष्टिकेन्द्र शिल्प जैसे चार रूप मिलते हैं । पात्र के सूक्ष्मतम मानसिक हलचलों को आसानी से पाठकों तक पहुँचाने के लिए आत्मकथात्मक विधि अधिक प्रभावपूर्ण है । गौणपात्रों द्वारा कथा शिल्प प्रस्तुत करने की विधि आत्मकथात्मक विधि का परोक्ष रूप है । उपन्यास के क्षेत्र में यह विधि सर्वथा नवीन है । कथा शिल्प के दृष्टि केन्द्र विधि में उपन्यासकार उपन्यास की कथा को विभिन्न पात्रों के नाम पर छोटे-छोटे खंडों में प्रस्तुत करते हैं । प्रत्येक खंड में एक विशेष पात्र अपनी कथा कहता है और अपने दृष्टिकोण के द्वारा दूसरे पात्रों को प्रकाशित करता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथा को उपन्यासकार द्वारा सुनाने या अन्यपुरुष में चित्रित करने का जो तरीका प्रेमचंद युग में ज़ारी रहा वह यहाँ काफ़ी विकसित हो गया है ।

कथा कहीं से भी प्रारंभ होकर किसी भी बिंदु पर समाप्त होने के कारण इन उपन्यासों की कथावस्तु में साफ़ सुथरा प्रवाह नहीं होता ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार दो या तीन पात्रों से कथा का विकास करते हैं । ये पात्र बाहर से थोपी गई मर्यादाओं की अपेक्षा, भीतर की ईमानदारी को अधिक महत्व देते हैं । इन के पात्र व्यक्ति सत्ता को सामाजिक बंधनों में बांध रखने के खिलाफ़ है । इसलिए ये असाधारण व्यवहार करनेवाले पात्र हैं । इस के अधिकांश पात्र अपने विचारों में तल्लीन एवं अन्तर्मुखी हैं । इन्हें अहंग्रस्त पात्र, हीनताग्रस्त पात्र, कुंठाग्रस्त पात्र, वासना परिचालित पात्र, आत्मसमर्पित पात्र, आत्मपीड़क साधिकाएं, विद्रोही पात्र, मनोरोगग्रस्त पात्र, पत्नीत्व प्रेयसीत्व साथ-साथ निभानेवाले पात्र जैसी विभिन्न श्रेणियों में रख. सकते हैं ।

मनोविज्ञान के प्रदेश ने उपन्यासों के चरित्र चित्रण प्रणाली को ही बदल दिया है । फ्रायडीयन सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति जो कुछ करता है उसके पीछे उस का अचेतन वर्तमान रहता है । इसलिए मनो-वैज्ञानिक उपन्यासकार चरित्र चित्रण के लिए बहिरंग प्रणाली की अपेक्षा अंतरंग प्रणाली को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं । अंतरंग चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व, हैल्यूसिनेशन, मुक्त आसंग प्रणाली, शब्द-सहस्मृति परीक्षण, सम्मोह विश्लेषण, केस हिस्टरी मैथेड जैसे अनेक नये प्रयोगों को अपनाया गया है ।

इन उपन्यासों के पात्र जीवन भर संघर्ष की चक्की में पिसनेवाले हैं । लेकिन इन का संघर्ष बाहर की शक्तियों से नहीं, अपने भीतर की वृत्तियों से है । ये उपन्यासकार अपने पात्रों की असंगत प्रतीत होनेवाली

चेष्टाओं के कारणों को व्यक्त करने के लिए उन का स्वप्न विश्लेषण भी करते हैं । इसी तरह चरित्रोद्घाटन केलिए उपन्यासकारों ने नई नई रीतियाँ अपनाई हैं । लेकिन इन उपन्यासों की कमी यह है कि इस के पाठक कुछ विशेष वर्ग के होते हैं । आम जनता के लिए ये उपन्यास पसंद की चीज़ नहीं है । क्योंकि उस की अभिव्यक्ति प्रणाली, पात्र एवं संदर्भ उन केलिए बिलकुल अपरिचित है ।

उपन्यास चाहे सामाजिक हो, ऐतिहासिक या मनोवैज्ञानिक उस में विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग अनिवार्य है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा एवं शैली भी पूर्ववर्ती औपन्यासिक भाषा एवं शैली से नितांत भिन्न एवं शक्तिशाली है । इन की भाषा में काव्यात्मकता का पुट ज़्यादा है । कम शब्दों में बहुत कुछ कह पाने की क्षमता इन [redacted] उपन्यासों [redacted] तथा अस्पष्ट संकेतों द्वारा घटना-चित्रण करने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है । अनुभूतियों की गहराइयों में खोकर जब पात्र परस्पर संवाद की स्थिति में पहुंच जाते हैं तो वे कुछ कहे बिना ही बहुत संप्रेषित करने की स्थिति में आ जाते हैं । ऐसी स्थिति में चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता लाने के लिए उपन्यासकार अस्पष्ट ध्वनियों एवं अधूरे वाक्यों का प्रयोग करते हैं । लेकिन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा प्रेमचंदयुगीन भाषा के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त नहीं हैं । क्योंकि इन में भी मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग देख सकते हैं ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आगमन के पूर्व हिन्दी में लगभग सभी उपन्यास तृतीय पुरुष में वर्णनात्मक शैली में या विश्लेषणात्मक शैली में लिखे गये थे । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उत्तम पुरुष में कथा प्रस्तुत की गयी है तथा विश्लेषणात्मक शैली का सार्थक प्रयोग भी किया गया है । कथावस्तु को अधिक वास्तविक बनाने के लिए अधिकांश मनोवैज्ञानिक उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये हैं ।

फ्लेशबेक शैली भी इन उपन्यासकारों की प्रिय शैली है । यह शैली पात्र की स्मृति तथा उस की याद को ताज़ा करने के लिए प्रयुक्त की जाती है । व्यक्ति के अन्तर्मन की गोपनीयता एवं कुंठा की अभिव्यक्ति के लिए डायरी शैली बहुत सहायक है । इसलिए इन उपन्यासकारों ने प्रथम पुरुष में उपन्यास के किसी पात्र की डायरी द्वारा कथा को प्रस्तुत करने की नयी प्रथा को अपनाया है ।

कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण पत्र शैली का प्रयोग भी मिलता है । ये पत्र पाठकों को पत्र-रस प्रदान करने के साथ ही पात्रों की मन:स्थिति को अभिव्यक्त करने का माध्यम भी हैं । उपन्यास में चेतनाप्रवाह शैली का प्रयोग मनोविज्ञान के प्रभाव से हुआ है । चेतनाप्रवाह में भविष्य संबंधी कल्पनाएँ अनुमान, विगत की स्मृतियां, वर्तमान की चिंताएं आदि एक साथ आती हैं । इसलिए इस में चिंतन का क्रम नहीं है । उपर्युक्त सभी शैलियों के साथ वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शैली भी इन उपन्यासों में देख सकते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने अपने विषय के सार्थक एवं जीवंत प्रस्तुतीकरण के लिए नई नई शैलियों का प्रयोग भी किया है जिन्होंने परवर्ती हिन्दी उपन्यास के शिल्पपरक संभावनाओं को काफी संपुष्ट किया है ।

संक्षेप में हिन्दी उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प को आमूल बदलने में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भूमिका निर्विवाद की है । उसने परवर्ती उपन्यास लेखन की संभावनाओं को काफी बढाया भी है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

संदर्भ ग्रंथसूची

शोध प्रबंध में चर्चित उपन्यास

जैनेन्द्रकुमार

1. परख — पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली (प्र.सं.) 1929
2. सुनीता — वही 1935
3. त्यागपत्र — वही 1937
4. कल्याणी — वही 1939
5. सुखदा — वही 1952
6. विवर्त — वही 1952
7. व्यतीत — वही 1953
8. जयवर्धन — वही 1956
9. मुक्तिबोध — वही 1965
10. अनंतर — वही 1968
11. अनामस्वामी — वही 1974
12. दशार्क — वही 1985
13. तपोभूमि — ऋषभचरण जैन एंड संतति, दिल्ली (प.सं.) 1985

इलाचन्द्रजोशी

14. सन्यासी — भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, 1941
15. पर्दे की रानी — वही 1942
16. प्रेत और छाया — वही 1945
17. लज्जा — वही 1946
18. निर्वासित — वही 1946
19. मुक्तिपथ — हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1950
20. सुबह के भूले — वही 1951

21. जिप्सी नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1952
22. जहाज का पंछी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1955
23. ऋतुचक्र लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, 1969
24. भूत का भविष्य नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973
25. कवि की प्रेयसी राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1976

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

26. शेखर : एक जीवनी (भाग-I, II) सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (प्र.सं.) 1941, 1944
27. नदी के द्वीप वही - 1952
28. अपने अपने अजनबी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1961

अन्य संदर्भ ग्रंथ

1. अज्ञेय और उसका उपन्यास संसार - डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982
2. अज्ञेय की उपन्यास यात्रा - डॉ. ए. अरविन्दाक्षन
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982
3. अज्ञेय - गद्य में डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर, 1981
4. अज्ञेय का अन्त : प्रक्रिया साहित्य - डा. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ
ब्रजकिशोर कुलश्रेष्ठ प्रकाशन,
जयपुर, 1984
5. अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ - श्रीमती कुसुम त्रिवेदी
साहित्य संस्थान, गांधी नगर, कानपुर,
1976
6. अज्ञेय की औपन्यासिक संवेदना - डॉ. नन्दकुमार राय
शारदा प्रकाशन, दिल्ली
7. अज्ञेय और उन के उपन्यास डा. गोपालराय
मैकमिलन कंपनी, दिल्ली, 1975

8. अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि - डॉ.सत्यपालचुघ
दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली, 1965

9. अज्ञेय का कथा साहित्य डॉ. देवकृष्ण मौर्य
अतुल प्रकाशन, ब्रह्मनगर, कानपुर, 1994

10. अज्ञेय : कथाकार और विचारक - प्रो.विजयमोहनसिंह
पारिजात प्रकाशन, पाटना

11. अज्ञेय का कथा-साहित्य ओमप्रभाकर
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,
1966

12. उपन्यासकार अज्ञेय डॉ. केदार शर्मा
जंबु प्रकाशन, जयपुर, 1966

13. अज्ञेय साहित्य : प्रयोग और मूल्यांकन - डा.केदारशर्मा
अनुपम प्रकाशन, जयपूर, 1969

14. आधुनिक हिन्दी साहित्य डा.वार्ष्णेय
हिन्दी परिषद्, प्रयाग, 1954

15. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान - देवराज उपाध्याय
साहित्य भवन प्र.लि. इलाहाबाद,
(दूसरा सं.) 1963

16. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास - डॉ.सरोजिनी त्रिपाठी
ग्रंथम, कालपूर, 1973

17. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास -
डॉ. बेचन
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1965

18. आत्मनेपद — अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1960

19. इलाचन्द्रजोशी के उपन्यास — बालभद्र तिवारी
रणजीत प्रिंटेर्स एंड पब्लिशर्स,
दिल्ली, 1958

20. इलाचन्द्रजोशी के उपन्यासों में मनोविज्ञान -
डा.यासमीन सुलताना नकबी
किताब महल एजेन्सीस, इलाहाबाद,
1994

21. इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व -
राजेन्द्रजैन
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 1988

22. इलाचन्द्रजोशी साहित्य और समीक्षा - प्रेमभटनागर
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1959

23. इलाचन्द्रजोशी का कथा साहित्य - डा.जे.हरिकुमार
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

24. उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प - डॉ.शांतिस्वरूपगुप्त
लोधी ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, 1980

25. उपन्यासकार अज्ञेय — डा. केदारशर्मा
जैन प्रकाशन, जयपुर, 1966

26. उपन्यास का शिल्प — डा.गोपालराय
बीहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी,
पाटना, 1973

27. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान - डा.दंगल झाल्टे
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1987

28. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ - डा.सुरेश सिन्हा
रमा प्रकाशन, लखनऊ, 1965

29. कर्मभूमि — प्रेमचंद
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

30. काव्य के रूप — डा.गुलाबराय
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,
(चतुर्थ सं.) 1958

31. कुछ विचार — प्रेमचंद
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1985

32. गोदान — प्रेमचंद
अनीता प्रकाशन, दिल्ली, 1988

33. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक शैली - तात्त्विक अध्ययन -
डा.लक्ष्मीकांत शर्मा
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1975

34. जैनेन्द्र और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित नर-नारी संबंध - डा.सत्याजैन
शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

35. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डा.देवराज उपाध्याय
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1968

36. जैनेन्द्र और उन के उपन्यास डा. परमानंद श्रीवास्तव
माकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि.
दिल्ली, 1982

37. जैनेन्द्रकुमार चिंतन और सृजन - मधुरिमा कोहली
पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली,
1975

38. जैनेन्द्र की जीवनदर्शन डा.कुसुम कक्कड
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1975

39. जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प- ओमप्रकाश शर्मा
पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1975

40. जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिंतक - (सं) बोके बिहारी
भटनागर
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1965

41. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल -
बिजली प्रभादमा
क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली,
1991

42. परीक्षागुरु — लालाश्रीनिवासदास
ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली, 1958

43. प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - डा.सत्यपालचुघ
इकाई प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968

44. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास - नए नैतिक मूल्य - शशिगुप्ता
नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999

45. प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान - डा.कमलकिशोर गोयनका
सरस्वती प्रेस, दिल्ली, 1973

46. बृहद् हिन्दी कोश — ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस

47. मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की बृहत्त्रयी - डा.रणवीररांग्रा
कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 1976

48. रंगभूमि — प्रेमचंद
भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1987

49. विचार और विश्लेषण — डा.नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1974

50. विवेचना — इलाचन्द्रजोशी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(दूसरा सं.) 1950

51. साहित्यालोचना — श्यामसुंदरदास
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1975

52. साहित्य का श्रेय और प्रेय जैनेन्द्रकुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1953

53. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में शिल्पविधि का विकास -
डॉ॰तहसीलदारदूबे
नटराज पब्लिशिंग हाउस, हरियाना

54. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में पुरुष पात्र - दुर्गेशनंदिनी प्रसाद
गीता प्रकाशन, हैदराबाद, 1993

55. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - डॉ॰त्रिभुवनसिंह
हिन्दी प्रचारक संस्थान,
वाराणसी, 1973

56. हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास -
डॉ॰श्रीमती॰ओमशुक्ल
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1964

57. हिन्दी उपन्यास-सिद्धांत और समीक्षा - डॉ॰ माखनलाल शर्मा
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1966

58. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डा॰त्रिभुवनसिंह
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1965

59. हिन्दी उपन्यास कला डा॰प्रतापनारायण टंडन
हिन्दी समिती सूचना विभाग,
लखनऊ, 1975

60. हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास - डा.प्रतापनारायण टंडन
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ. 1964

61. हिन्दी उपन्यासों में असामान्य चरित्र - डा.सुजाता
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1971

62. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरशमिश्र
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
(द्वि.सं.) 1982

63. हिन्दी उपन्यास : अछेते संदर्भ - डा.रणवीर रांग्रा
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1970

64. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास - डा.रणवीररांग्रा
भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली,
1961

65. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - डा.शशिभूषण सिंहल
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1988

66. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास - डा.प्रतापनारायण अंडन
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1960

67. हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य - डा.प्रेमभट्टनागर
अर्चना प्रकाशन, जयपुर, 1968

68. हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान - डा.प्रदीपकुमार शर्मा
अभय प्रकाशन, कानपूर, 1990

69. हिन्दी उपन्यासों में चेतना प्रवाह पद्धति - डॉ. मोहनलाल कपूर
साकेत समीर प्रकाशन, दिल्ली, 1988

70. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास - डा.धनराजमानधाने
ग्रंथम, रामबाग, कानपूर, 197।

71. हिन्दी साहित्य कोश भाग-। - ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,
(दूसरा सं.) 1963

72. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
नागरीप्रचारिणी सभा,
(बीसवीं संस्करण) 1988

73. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चनसिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2000

पत्र - पत्रिकाएँ

1. आजकल (सं) मन्मथनाथ गुप्त, 1965 फरवरी
2. आलोचना त्रैमासिक (सं) नामवरसिंह, 1968 सितंबर
3. कलाकौमुदी मलयालम पत्रिका-2000 जुलाई 23
4. भाषा त्रैमासिक 1982 सितंबर
5. मधुमती 1992 नवंबर
6. साहित्य सन्देश 1956 जुलाई-अगस्त
(उपन्यास विशेषांक)

G8221

अंग्रेज़ी संदर्भ ग्रंथ

1. Aspects of Novel — E.M. Froster
   Edward Arnold, London

2. Beyond the Pleasure principles - Freud
   International Psychological
   Press, London.

3. Forms of modern Fiction - Mark Shore
   O'Conner William Van

4. Introduction, Basic Writings of Sigmund Freud -
   A.A. Brill

5. Modern Fiction — Harbert J.Muller
   Funk and Wagnalls, New York
   1937

6. Modern Psychological Novel - Edel Leon
   Rupert Hart Davis 36,
   Soho square, London, 1955

7. Structure of the Novel — Edwin Muir, The Hogarth Press,
   London, 1960

8. The Art of Fiction — Henary James
   New York, 1918

9. The Craft of Fiction — Percy Lubbock
   Jonathan Cape Ltd, London,
   1932

****